गया
आसाढ सुदी १२' २

प्रिय भाई पांडे जी,

आपने मुझे 'एकाकी' के लिए भूमिका लिखने का आदेश दिया है। पैंवद लगा हुआ कपड़ा रद्दी समझा जाता है, पैसे वाले ऐसे कपडे को पहनते हुये लज्जा का अनुभव करते हैं किन्तु शायद यह बात साहित्य में नहीं है। भूमिका तो एक प्रकार से पेवंद का ही साहित्यिकरूप है। जो हो, परम्परा के प्रवाह को न रोकना ही भावुक हृदय का तकाजा है। मैं नहीं रोकूँगा, किन्तु मैं सोच नहीं पाता कि इस उपन्यास के लिए क्या लिखूँ। पूरा उपन्यास ही जब आपके सामने इस विराट् सत्य की भूमिका के रूप में उपस्थित है तो फिर भूमिका पर भूमिका क्या लिखी जाय।

मानव प्रकृति में यह विशेषता सदा से पाई जाती है कि वह किस्से कहानियों को अधिक पसन्द करता है। वर्षा की धुँधली संध्या को, झिलमिलाते हुये प्रदीप की मन्द रोशनी में बैठ कर जब हम नानी के मुँह से उस "दैत्य" की कहानी सुना करते थे, जिसने एक अनिन्द्य सुन्दरी को मक्खी बनाकर छिपा रक्खा था तो मन न जाने कैसा हो जाता था। यद्यपि आज न नानी हैं और न अपना वह बचपन, किन्तु वर्षा और धुँधली संध्या तो आज भी है तथा प्रदीप के धुँधले प्रकाश में बैठ कर हम अपने रुग्न बच्चे को उदास दृष्टि से देखा करते हैं और उसके पीले चेहरे पर खेलने वाली पीड़ा की गहरी छाया से पूछते हैं—"तुमने आज तक सब को रुलाया ही, विधाता से केवल रुलाने का ही काम तुम्हें मिला—छि !"

न दवा और न चिकित्सा! बेहद बढ़ी हुई गरीबी का ओर-छोर नहीं सूझता तो ऐसा जान पड़ता है कि उस दैत्य वाली कहानियों मे भी दैत्य था वह गरजता हुआ आज भी हमारे जीवन को रौंद रहा है। बचपन का साथ छूटा, नानी स्वर्ग सिधारीं, समझदारी में बाढ आई किन्तु किस्से वाला दुष्ट दैत्य शायद मरने दिन तक पिंड नहीं छोडेगा। वह कहानी से निकल कर हाहाकार करता है। ऊब कर, घबरा कर मन ही मन हम स्वय एक पुरानी कहानी गढने लगते है। उस कहानी के प्रधान पात्र की जगह पर हम होते हैं, अनिन्द्य सुन्दरी राजकुमारी के जगह पर फटे कपड़ों वाली, जिसकी लाचार आँखों से करुणा की मनोवेधक झलक सदा आती रहती है और जिसकी हँसी जब कभी [illegible] फूट भी पडती है तो आँसू बनकर। ऐसी अपनी जीवन सहचरी होती है। इतना ही नहीं हम 'दैत्य' को भी नहीं भूलते। वह भी अपना गदा तथा [illegible] आतिथ्य के साथ हमारी कहानी में अनाहूत घुस पड़ता है और अपने भारी गदा को घुमाता हुआ गर्जन-तर्जन करने लगता है वह है कौन [illegible] क्या बतलाऊँ, आप नाराज होंगे! यहीं पर पाठकों से और [illegible] से सम्मुख हो जाना है। पाठक—कोमल मति वे पाठक जो अपने पेट में ठूँसे हुये अन्न को पचाने के लिए बेहद विकल रहते हैं, मखमली गद्दे पर लेटकर किसी तरह बादाम मक्खन आदि जो उनके पेट मे 'समुद्र मन्थन' सा द्वन्द्व उपस्थित किये रहते हैं उनसे त्राण पाने के लिए आतुर रहते हैं, बड़े जोर से चिल्लाकर कहते हैं—"यह लेखक बड़ा बदतमीज है भाई! इसने अपने उपन्यास में [illegible] और दैत्यों का क्या वर्णन कर दिया [illegible] सुन्दरी होती जो 'कार' चलाने में होती न बेजोड़ होती। सलवों [illegible] सलवों का वर्णन होता [illegible] आदि, आदि!

ठीक है, एक दैत्य को दैत्य के वर्णन से झुँझलाहट तो होगी ही, वह अपना सत्यरूप देखना कब पसन्द करेगा। लेखक डर कर कहता है—हैं हैं श्रीमान्! दूसरी पुस्तक भी लिख रहा हूँ, जिसमें स्थान स्थान पर "ग्रालडास" का वर्णन है—रोमास है और खूब है। आपके पेट के उस अन्न को पचाने में वह उपन्यास सहायक होगा जिसे आपने ठूँसा है।" इस स्थिति में, जब कि लेखक और पाठक में प्रत्येक दिन हाथापाई होती रहे तो साहित्य का उद्देश्य कैसे पूरा होगा, यह वर्णन करना मैं नहीं चाहता। मैं तो अपनी कहानी के दैत्य को ही लेकर व्यग्र हूँ, जो मेरी सारी कल्पना को घेर कर चिल्लाता फिरता है। चलते-फिरते, हँसते-रोते, सभाओं और सिनेमाघरों में सर्वत्र मैं अपने दैत्य को देखता हूँ—वह दहाड़ता है और जो सामने पड़ जाता है उसे ही चबा जाता है। मैं जब जब कुछ लिखने बैठता हूँ, उस वर्षा की धुँधली सन्ध्या को नहीं भूलता और न प्रदीप के के मन्द प्रकाश में बैठकर कहानी कहने वाली अपनी नानी के झुर्रियों से भरे हुये चेहरे को ही भूलता हूँ। इसके बाद न जाने किधर से सहसा उछलता-कूदता वह अभागा दैत्य सामने आ जाता है। मेरी क़लम रुकती नहीं, किन्तु किसी न किसी रूप में दैत्य मेरी कहानियों मे आ ही जाता है। म उससे इतना ऊब उठा हूँ कि उसे भुलाना अब असम्भव हो गया है। अतीत ने जो कहानी मुझे सुनाई है, वर्तमान के धुँधले प्रकाश में बैठकर मेरा चिरतन शैशव जिसे चिरकाल से सुनता आ रहा है उसके संस्कार को मैं कैसे भूलूँ। मैं देख रहा हूँ कि उस अतीत के कल्पना सम्भूत दैत्य ने आज इस स्थूल जगत् को ही अपने पैरो से रौंदना आरम्भ ही नहीं किया बल्कि रौंद डाला है। "महाभारत" में युधिष्ठिर से जिस "जलचर" ने चार प्रश्न किये थे, उनमें पहला प्रश्न था—"क वार्ता।" युधिष्ठिर ने

चाहे कुछ भी उत्तर दिया हो किन्तु मैं तो आज कहूँगा कि—इस विश्वव्यापक "दैत्य" के अतिरिक्त और कोई वार्ता नहीं है जो नानी की कहानी से अचानक कूद कर हमारे "जीवन मरण की कहानी" में घुस पड़ा है ।"

"एकाकी" मे भी इसी दैत्य का चीत्कार आप सुनेंगे। इसे आप भूमिका न समझे । मै अपनी बात लिख रहा हूँ। आप मुझे क्षमा करें । प० जवाहरलाल जी का रत्नों से तौले जाने योग्य एक वाक्य मैं उद्धृत करता हुआ आपसे क्षमा याचना करता हूँ। मै भूमिका नहीं लिखूँगा, यदि चाहूँ भी तो मुझसे लिखते नहीं बनेगा। नेहरु जी ने लिखा है—

"जीवन की कठिनाइयाँ और कड़वे अनुभव ही हमें नये रास्तों में चलने को बाध्य करते हैं और अन्त में •हमारा दृष्टिकोण बदल देते हैं।"

इस "एकाकी" उपन्यास की पृष्ठि भूमि के रूप मे नेहरू जी का यही वाक्य है, यही वाक्य इस उपन्यास का आधार है, जीवन है, और जीवन तत्व है। बस ! वन्दे ।

विनीत—

वियोगी

(१)

राम जाने, सन-संवत की बात, पर मुझे याद है कि मैं सदा अपने गाँव की गलियों मे खेला करता था। उन दिनो मै छोटा-सा बच्चा था क्योंकि मेरे पिता जी, जो बहुत ही सज्जन और सीधे-सादे एक काश्तकार मात्र थे, मुझे गोद मे उठाकर प्राय. खेतों पर ले जाया करते थे जहाँ गेहूँ की कटाई होती रहती थी। मैं अपने पिता की गोद मे चढ़कर ही गाँव के मन्दिर पर भी जाता था। वह मन्दिर आज भी है और मन्दिर के भीतर की देवप्रतिमा भी है पर गाँव की दशा बिगड़ जाने के कारण मन्दिर और मन्दिर के देवता की दशा भी अच्छी नहीं रही। सर्वत्र एक प्रकार की गहरी उदासी-सी छाई रहती है और मन्दिर के विशाल चौतरे पर दोपहर को बकरियों का झुण्ड इधर-उधर दौडता नजर आता है। पक्का फर्श स्थान-स्थान पर फट गया है, जिस तरह जल के सूख जाने से कीचड मे दरारें पड जाती है। फर्श की दरारों मे अनेक जाति के पौदे बरसात मे उग आते है और जहाँ पर पहिले पुजारी जी बैठकर सध्या समय भङ्ग घोंटा करते थे, वहाँ पर तो एक पीपल का वृक्ष जम गया है, जो बकरियों और गर्मी की लू-लपट का निरादर करता हुआ लगातार बढता चला जा रहा है। मन्दिर के शिखर पर जो ध्वजा पहराती थी, वह महाशून्य में विलीन हो

चुकी है। गाँव की कीर्ति के साथ, ध्वजदण्ड जो एक टेढ़ा-सा भूरे रङ्ग का बाँस है, एक ओर झुका हुआ है, जिस पर सन्ध्या समय एकाध कौआ या कोई दूसरी चिड़िया बैठी हुई दूर से नजर आती है। इस मन्दिर का बगीचा भी उजड़ गया है तथा वह आज गाँव के जमीदार का छोटा-सा खेत बन चुका है। कोई तीस-वर्ष पहिले मैं अपने पिता जी के साथ और कभी प्राय चाचा के साथ इस मन्दिर पर प्राय सन्ध्या समय आता था और पुजारी जी छुहारे का एक छोटा-सा टुकडा देकर मुझे प्राय विदा किया करते थे। गाँव के बहुत से बूढ़े युवक यहाँ सन्ध्या समय एकत्रित होकर तुलसी दास की रामायण-ढोल-झाँझ के सहयोग से नाना प्रकार की तान-लय से पढते थे। वे दिन दूर चले गये—स्मृतियो के देश मे।

यदि मै चाहूँ तो कह सकता हूँ कि मेरे पिता जी अपने प्रान्त भर के धनियों के मुकुटमणि थे तथा बड़े बडे-बडे अधिकारी उनका नाम सुनते ही अदब से सिर झुका लेते थे, पर मुझे भय है कि इस प्रकार अपने वंश की मर्यादा घोषित करने के फेर मे पडकर मैं सत्य से दूर पहुँच जाऊँगा। मुझे अपने विषय मे वही बाते कहना चाहिये जो सत्य की सीमा के भीतर हो। तो मैं कहूँगा कि मेरा परिवार एक मध्यवित्त गृहस्थ का परिवार था। मेरे पिता जी, जो एक मेहनती और ईमानदार किसान थे, मन लगाकर खेती का काम करते थे, तथा मेरी माता जिसका अधिक समय रोगों से युद्ध करने मे व्यतीत होता था और जिसकी दुबली और पीली देह से अब कार्य करने का उत्साह तथा बल नही बचा था, यथाशक्ति मेरे पिता जी की सहायता किया करती थी, साथ ही मेरा तथा मेरी एक छोटी बहिन का लालन पालन का भार था। हम (भाई बहन) कभी

माता के प्यार और पिता के आशीर्वाद से वञ्चित नहीं हुए—यह मैं अपने बचपन की बात कह रहा हूँ, अब तो युग का नक्शा—हुलिया—ही बदल गया है।

हमारे घर के सामने ईदनमियाँ का घर था और बीच मे थी गाँव की गली। 'गाँव की गली' का सच्चा रूप बनारसी-गलियों को देख कर या कलकत्ते की "चौरङ्गी" को देखकर आप अपनी मानसिक आँखों से नहीं देख सकते। 'गाँव की गली' का ध्यान करने के पहले आप को "दान्ते" द्वारा वर्णित नरक के वर्णन को एक बार मन लगाकर पढ़ना पड़ेगा। मेरे घर के सामने जो गली जग्गन साईं के दरगाह के पास से आती थी, गाँव की दूसरी गलियो की अपेक्षा कुछ अच्छी दशा में थी, क्योंकि मेरी गली पतली थी—और उस पर बैलगाड़ी का चलना असम्भव था, फिर भी दोनों ओर के कच्चे घरों की मोरियाँ इसी गली मे बहा करती थीं। गली के दोनों छोर पर छोटे छोटे गढे बना दिये गये थे, जिन गढ़ों मे घरों से निकलकर बहने वाली गन्दगी एकत्रित हो जाती थी और उन गड्ढों मे मोटे-मोटे सुअर आराम की नींद लेते रहते थे या थुथना डाल कर कुछ भोज्य वस्तु की खोज किया करते थे।

ईदन मियाँ की मुर्गियाँ भी मोरियों मे पख फड़फड़ा कर कीडे खोजा करती थीं और कुछ प्राप्ति हो जाने पर आनन्द-विभोर चित्त से बोल उठती थीं। इस तरह के गड्ढों की कमी न थी। प्रत्येक घर का एक अपना निजी गड्ढा होता था जिसमे उस घर की गन्दगी आकर जमा होती थी। बरसात के दिनों मे मोरी की गन्दगी और गली की कीचड का महामिलन होता था और मुझे याद है कि मै अपने साथियों के साथ इसी गली मे ऊधम मचाया करता था। मेरा एक बाल्य-बन्धु

था दिनेश—आह, आज वह कहाँ है—खैर, दिनेश और गोविन्द—जिसका पिता "खान" मे काम करते-करते थाइसिस लेकर घर लौटा था और रात-दिन खाँसा करता था तथा न तो वह रोग-मुक्त होता था और न मरता था—के साथ मेरी गहरी मित्रता थी। जब दोपहर मे अवसर मिल जाता तो हम गाँव की गलियो मे मटरगश्ती किया करते। कही से एक टीन का टुकडा उठाकर—एक दिन—मैंने उसे बजाना आरम्भ किया और दिनेश तथा गोविन्द होली के दिनों की सुनी-सुनाई गालियाँ, जिनका अर्थ हम नही जानते थे तथा उनके मानी की भयकरता का भी हमे कतई ज्ञान न था, जोर-जोर से गाने लगे। दोपहरी थी—पतझड का मौसम था—सर्वत्र निर्जनता सी फैली हुई थी। गाँव के निवासी अपने खेतो पर गये थे—पेट के लिये काम करने। गाँव की गलियो मे धूल उड़ रही थी। धूप मे और हवा मे गर्मी आ गयी थी। हम तीनो मित्र बडे आराम से—उच्च स्वर से—कबीर पढते हुए समय व्यतीत कर रहे थे। हमारे दुर्भाग्य वश उस कबीर मे, जिसे मैं गाता था, मुलई गोड के पूर्व पुरुषो का नाम आगया था, जिनसे मुलई का एक अनभव नाता का होना बतलाया गया था। फागुन के मस्ती से भरे दिनो मे गालियाँ देना और सुनना कोई उतनी चिन्तनीय बात नही मानी जाती, पर दूसरे दिनो मे—मन पहुँचे, लाठियाँ निकल पडती है और मामला जनाब डिप्टी साहब बहादुर के खुले कोर्ट तक पहुँच कर रुकता है।

हम बच्चो को क्या मालूम कि इस कबीर से मुलई के मान-सम्मान पर आघात पहुँचता है या उसके पूर्व पुरुषो का मुलई से जो मान-सम्मान नाता था, उससे वशजो मे किसी नये तथा [illegible] सम्बन्ध का होना घोषित होता है। हम मौज मे [illegible] टीन का टुकडा बजा-बजा कर मुलई का जयघोष

उच्च स्वर से कर रहे थे। गाँव के और भी दो चार बच्चे हमारे साथ हो लिये थे। हम गालियाँ ही जानते थे और उनका प्रयोग भी एक दूसरे पर खूब करते थे, पर उनके माने नहीं जानते थे—क्रोध के समय हमारे मुँह से स्वभावत जो उद्‌गार निकलते थे, वे गदी गालियो के रूप मे। गालियों का अभ्यास हमने अपने-अपने घर पर ही किया था—घर के बड़े-बूढे प्राय' गालियो मे ही वर्तालाप किया करते थे। हवा, बदली, खटमल, मच्छर, भूक, ज्वर और जमीन-आसमान को भी गालियों से अक्सर सम्मानित किया जाता था। उदाहरणार्थ—मच्छरों ने सताया। हवा भी बन्द हो गयी तो ऐसे अवसर पर गदी गदी गालियाँ बक कर मन का असफल क्रोध मिटाया जाता। ये गालियाँ हवा और मच्छरों को लक्ष्य करके दी जातीं। हमने गालियाँ तो काफी मुखस्थ कर रक्खी थीं, पर उनके माने नहीं जानते थे और यही कारण है कि भुलई के द्वार पर पहुँच कर हमारे दल ने गर्मी के दिनों मे कबीर गाना शुरू कर दिया।

मैं तो जानता था कि भुलई अपने खेतो पर काम करने गया होगा, पर वह मूजी तेज ज्वर लेकर घर लौट आया था। वह खाट पर पडा कराह रहा था। कुछ देर तक तो उसने अपने क्रोध को गालियाँ सुनकर भी रोका, पर अन्त मे उससे न रहा गया। वह दौडकर बाहर निकला और कोने से एक लकड़ी का छोटा-सा टुकडा लेकर ठेठ हमारे सामने पहुँच गया।

क्या आपने रामायण में 'कुम्भकरण' और श्रीराम का युद्ध वर्णन पढा है? बस, यही अनुमान कर लीजिये। हम ६।७ बच्चों के सामने वह ६ फीट का लम्बा मजदूर कुंभकरण-सा दिखलाई पडता था। उसकी सूरत से ही गाँव के बच्चे डरते थे। वह बच्चों की शरारत बर्दाश्त नहीं करता था। जहाँ किसी

था दिनेश—आह, आज वह कहाँ है—खैर, दिनेश और गोविन्द—जिसका पिता "खान" मे काम करते-करते थाइसिस लेकर घर लौटा था और रात-दिन खाँसा करता था तथा न तो वह रोग-मुक्त होता था और न मरता था—के साथ मेरी गहरी मित्रता थी। जब दोपहर मे अवसर मिल जाता तो हम गाँव की गलियों मे मटरगश्ती किया करते। कहीं से एक टीन का टुकड़ा उठाकर—एक दिन—मैंने उसे बजाना आरम्भ किया और दिनेश तथा गोविन्द होली के दिनों की सुनी-सुनाई गालियाँ, जिनका अर्थ हम नहीं जानते थे तथा उनके मानी की भयकरता का भी हमे कतई ज्ञान न था, जोर-जोर से गाने लगे। दोपहरी थी—पतझड़ का मौसम था—सर्वत्र निर्जनता सी फैली हुई थी। गाँव के निवासी अपने खेतो पर गये थे—पेट के लिये काम करने। गाँव की गलियों मे धूल उड़ रही थी। धूप मे और हवा मे गर्मी आ गयी थी। हम तीनों मित्र बडे आराम से—उच्च स्वर से—कबीर पढ़ते हुए समय व्यतीत कर रहे थे। हमारे दुर्भाग्य वश उस कबीर मे, जिसे मैं गारहा था, भुलई गोंड के पूर्व पुरुषो का नाम आगया था, जिनसे भुलई का एक असभव नाता का होना बतलाया गया था। फागुन के मस्ती से भरे दिनों मे गालियाँ देना और सुनना कोई उतनी चिन्तनीय बात नहीं मानी जाती, पर दूसरे दिनो मे—मत पूछिये, लाठियाँ निकल पड़ती है और मामला जनाब डिप्टी साहब बहादुर के खुले कोर्ट तक पहुँच कर रुकता है।

हम बच्चों को क्या मालूम कि इस कबीर से भुलई के मान-सम्मान पर आघात पहुँचता है या उसके पूर्व पुरुषो का भुलई से जो शास्त्र-सम्मत नाता था, उसके बदले मे किसी नये तथा लज्जाजनक सम्बन्ध का होना घोषित होता है। हम मौज मे फिर टीन का टुकड़ा बजा-बजा कर भुलाई का जयघोष

उच्च स्वर से कर रहे थे। गाँव के और भी दो चार बच्चे हमारे साथ हो लिये थे। हम गालियाँ ही जानते थे और उनका प्रयोग भी एक दूसरे पर खूब करते थे, पर उनके माने नहीं जानते थे—क्रोध के समय हमारे मुँह से स्वभावत जो उद्गार निकलते थे, वे गदी गालियो के रूप मे। गालियों का अभ्यास हमने अपने-अपने घर पर ही किया था—घर के बड़े-बूढे प्राय गालियों मे ही वर्तालाप किया करते थे। हवा, बदली, खटमल, मच्छर, भूक, ज्वर और जमीन-आसमान को भी गालियों से अक्सर सम्मानित किया जाता था। उदाहरणार्थ—मच्छरों ने सताया। हवा भी बन्द हो गयी तो ऐसे अवसर पर गदी गदी गालियाँ बक कर मन का असफल क्रोध मिटाया जाता। ये गालियाँ हवा और मच्छरों को लक्ष्य करके दी जातीं। हमने गालियाँ तो काफी मुखस्थ कर रक्खी थीं, पर उनके माने नहीं जानते थे और यही कारण है कि भुलई के द्वार पर पहुँच कर हमारे दल ने गर्मी के दिनों मे कबीर गाना शुरू कर दिया।

मैं तो जानता था कि भुलई अपने खेतो पर काम करने गया होगा, पर वह मूजी तेज ज्वर लेकर घर लौट आया था। वह खाट पर पड़ा कराह रहा था। कुछ देर तक तो उसने अपने क्रोध को गालियाँ सुनकर भी रोका, पर अन्त मे उससे न रहा गया। वह दौडकर बाहर निकला और कोने से एक लकडी का छोटा-सा टुकडा लेकर ठेठ हमारे सामने पहुँच गया।

क्या आपने रामायण में 'कुम्भकरण' और श्रीराम का युद्ध वर्णन पढा है? बस, यही अनुमान कर लीजिये। हम ६।७ बच्चों के सामने वह ६ फीट का लम्बा मजदूर कुंभकरण-सा दिखलाई पडता था। उसकी सूरत से ही गाँव के बच्चे डरते थे। वह बच्चों की शरारत बर्दाश्त नहीं करता था। जहाँ किसी

बाहर बहुत देर तक शोर-गुल मचता रहा। एक साथ बहुत से स्वर सुन पडते थे, जिनमे मेरे पिता का स्वर भी सुनाई पड़ता था। दमा के कारण आप खॉस-खॉस कर भर्राये हुए गले से भुलई को बेतहाशा गालियॉ दे रहे थे। भुलई भी चुप नहीं था।

इसी तरह के शोर-गुल मे मेरे बाल्य जीवन का आरम्भ हुआ।

देहाती बच्चों का जीवन इससे बेहतर हो भी नहीं सकता। मैं गलियों और खेतों पर धूल उड़ाता चलता था और दिनेश जो एक सम्पन्न परिवार का लाड़ला था, सदा मेरे उपद्रवों मे सहयोग देता था। वह अपनी जेब मे चिउड़ा तो भर कर लाता ही था, पर गुड़ का बड़ा-सा टुकड़ा भी वह अपने घर से उड़ा लाता था। गरीब किसानो के बच्चे प्राय नगे या एक मैली-सी लॅगोटी लगाये रहते थे, पर दिनेश धोती और कभी-कभी छींट या लट्ठे का कुर्ता भी पहना करता था, जिसमे टीन के बटन टॅके रहते थे। उसका कुर्त्ता घर का सिला होता था और रग-बिरगे डोरे से उसकी सिलाई की जाती थी। दिनेश एक निरोग और सुन्दर लड़का था तथा वह साहसी भी था। बदमाश से बदमाश कुत्ते को वह पत्थरों से मार-मार कर बेदम कर देता था—हम डर जाते थे और भाग कर किसी सुरक्षित स्थान पर पहुॅच जाते थे, पर दिनेश पत्थरों की ऐसी वर्षा करता कि बेचारा कुत्ता मैदान छोड़कर और अपनी दोनो पिछली टॉगों के बीच मे पूॅछ घुसेड कर आर्तनाद करता हुआ भाग खड़ा होता था। मुझे दिनेश की साहसिकता बहुत रुचती थी और मैं सदा उसका अनुकरण करना चाहता था। इधर-उधर घूमने वाले गधों को, जिनकी पीठ पर बड़े-बड़े घाव होते थे उन पर कौवे प्राय बैठे नजर आते, दिनेश जी भर कर

पीटता था। पशुओं मे गदहा एक गम्भीर तथा भय क्रोध मानापमान को ध्यान मे न लाने वाला, धीर-गम्भीर जीव है। यदि इन गुणों का विकास किसी मनुष्य मे हो जाय तो वह एक स्तुत्य और पूजनीय नर-रत्न समझा जागया, पर वेचारा गधा दिनेश के डडों के कारण अपने स्वाभाविक सद्‌गुणों को भूलकर दुलत्तियाँ झारना आरम्भ करता। मैं भी गदहों के पीछे पजा झाडकर पड जाता था।

वैसाख की दोपहरी मे जव आम की वारी अपने मीठे फलों से अतिथियों का सत्कार करने के लिये उत्सुक रहती थी, हमारा दल विशेष वीरता का प्रदर्शन करता था। सोये हुए वाग के रक्षकों की आँखें वचा कर पके आमों की लूट करना हमारा प्रधान कर्तव्य होता था। पकडे जाकर प्राय पिटे भी जाते थे।

हमारे शैशवकाल का आदि भाग एक प्रकार से सुखमय कहा जा सकता है। मैं सुख-दुख से दूर, वर्षण और अवर्षण की प्रसन्नता चिन्ता से परे एक प्रकार से आनन्दमय जीवन व्यतीत करता था। देहात की शान्त शोभा के भीतर विषाद का जो रूप छिपा हुआ है और देहाती जीवन की ओट मे, जो प्रत्यक्षत मधुर और कवित्वमय जान पड़ता है, हाहाकार छिपा हुआ है, उसका पता उस समय तक मुझे न था। मैं नहीं जानता था कि आज से कल का रूप भिन्न प्रकार का हो सकता है। मुझे तो वर्तमान से नाता था।

मुझे याद है कि मेरी माता की गम्भीर वीमारी के अवसर पर मैं थोडा-सा उदास रहता था। मेरी उदासी मेरे घर के उदास वातावरण के कारण थी—क्योंकि मैं जानता हूँ कि उस समय मैं ६-७ साल का निरा ज्ञानशून्य वच्चा था। ऐसी अवस्था में सुख-दु ख की छाया मेरे हृदय को न तो रङ्गीन वना सकी

की छाती पर छनभर सिर रखने से मुझे ऐसा जान पड़ता था मानो मैंने जलती हुई भट्ठी पर सिर रख दिया हो। मेरी छोटी बहन, जो महज तीन साल की एक मोटी-सी सुन्दर बच्ची थी, बराबर माँ के पास खेला करती थी—माँ चुपचाप अपने इस अन्तिम खिलौने का खेल देख-देख कर जीवन की उदास और कष्टमयी घड़ियों को सरस बनाने की चेष्टा करती थी।

कभी-कभी पिता जी भी माँ के निकट बैठा करते थे—उनकी कोटरगत् लाचार आँखे मानो भावी-भयकर दृश्य देखने की कल्पना से ही घबराई-सी लगती थीं। कभी-कभी माता को दवा पिलाते और चुपचाप रोते भी, मैंने उन्हें देखा था। मेरी चाची यदाकदा अम्मा के निकट आती थीं—और फिर क्षण भर बैठ कर वह चली जाती, यद्यपि वे भी उसी घर मे रहती थीं, जिसमे हम रहते थे। माँ की बीमारी के कारण मेरी चाची पर गृहस्थी का भार विशेष रूप से आ पड़ा था। वह इस भार को वहन करती हुई थकावट के स्थान पर एक ऐसे गुप्त आनन्द का अनुभव कर रही थी, जिसे कोई भी समझदार व्यक्ति अपने हृदय के भीतर दबा कर रखना ही उचित समझेगा।

(२)

एक दिन मैं देवनारायण की दो दुधार बकरियों को पकड़ कर खेत की ओर ले गया। दिनेश भी पीछे से आकर साथ हो गया। मैं बकरियों का दूध दूहना और पीना चाहता था। दिनेश न जाने कहाँ से एक फूटा हुआ ठीकरा उठा लाया। दूध दूह कर हमने उसे पी लिया और बकरियों को एक रस्सी के सहारे बाँध दिया। सोचता था कि एक घण्टे में फिर दूध जमा हो जाने पर दूहा जायगा। दिनेश ने कहा—"दूध से भी

की छाती पर छनभर सिर रखने से मुझे ऐसा जान पड़ता था मानो मैंने जलती हुई भट्ठी पर सिर रख दिया हो। मेरी छोटी बहन, जो महज तीन साल की एक मोटी-सी सुन्दर बच्ची थी, बराबर माँ के पास खेला करती थी—माँ चुपचाप अपने इस अन्तिम खिलौने का खेल देख-देख कर जीवन की उदास और कष्टमयी घड़ियों को सरस बनाने की चेष्टा करती थी।

कभी-कभी पिता जी भी माँ के निकट बैठा करते थे—उनकी कोटरगत् लाचार आँखे मानो भावी-भयकर दृश्य देखने की कल्पना से ही घबराई-सी लगती थीं। कभी-कभी माता को दवा पिलाते और चुपचाप रोते भी, मैंने उन्हें देखा था। मेरी चाची यदाकदा अम्मा के निकट आती थीं—और फिर क्षण भर बैठ कर वह चली जाती, यद्यपि वे भी उसी घर मे रहती थीं, जिसमे हम रहते थे। माँ की बीमारी के कारण मेरी चाची पर गृहस्थी का भार विशेष रूप से आ पड़ा था। वह इस भार को वहन करती हुई थकावट के स्थान पर एक ऐसे गुप्त आनन्द का अनुभव कर रही थी, जिसे कोई भी समझदार व्यक्ति अपने हृदय के भीतर दबा कर रखना ही उचित समझेगा।

(२)

एक दिन मैं देवनारायण की दो दुधार बकरियों को पकड़ कर खेत की ओर ले गया। दिनेश भी पीछे से आकर साथ हो गया। मैं बकरियों का दूध दूहना और पीना चाहता था। दिनेश न जाने कहाँ से एक फूटा हुआ ठीकरा उठा लाया। दूध दूह कर हमने उसे पी लिया और बकरियों को एक रस्सी के सहारे बाँध दिया। सोचता था कि एक घण्टे में फिर दूध जमा हो जाने पर दूहा जायगा। दिनेश ने कहा—"दूध से भी

और न उसे धुँधला रूप ही प्रदान कर सकी। मेरी माता का स्वास्थ्य यों तो सदा खराब रहता ही था पर इस बार वह जो खाट पर गिरीं सो बहुत दिनों तक नहीं उठी। मेरी माता को अपने टूटे हुए स्वास्थ्य पर कभी-कभी पिता जी के लात-जूतों का व्यवहार भी सहना पड़ता था। सच्ची बात तो यह है कि मेरे पिता जी थोडी-थोडी-सी भूल को भी क्षमा नहीं करते थे थे और अम्मा को बुरी तरह पीट देते थे। मार खाकर वह बेचारी रोती भी तो ऐसे दबे स्वर में कि जिससे घर के बाहर आवाज न निकल जाय। चिल्ला कर रोने से मेरे उच्च कुल के मान पर आघात पहुँचने का भय था। मेरे पिताकुल की मर्यादा और मेरे मातमह-कुल की मर्यादा के बीच मे मेरी माता खडी थीं—दोनों उज्वल कुलों की मानरक्षा का ध्यान उन्हें बराबर बना रहता था और इसीलिये अनगिनत थप्पड़ और जूते वह मुँह मूँद कर और आँसू पीकर—साल मे २४ बार बर्दाश्त कर लेती थी। उसके अस्थिचर्मावशिष्ट शरीर पर पिता जी का कोपानल रह-रह कर भड़क उठता था। इस बार बीमार पडने पर माता जी ने अपने स्वास्थ्य की काफी उपेक्षा की—नित्य स्नान, भोजन बनाना और बर्तन मॉजना आदि कामों को पूरा करती रहीं। परिणाम हुआ कि एकाध बार बीच मे भी उन्हें पिट जाना पडा। टूटे हुए शरीर ने मार सहने से साफ अनिच्छा जाहिर की और वह खाट पर पड़ गया। एक प्रकार से माता जी ने यमराज के विरुद्ध 'हत्याग्रह' छोड दिया। कभी कभी अम्मा मुझे अपनी रोगशैया के निकट बुलाकर मेरे सिर पर हाथ फेर दिया करती थी। मैं देखता था कि उसकी ऑखों से ऑसुओं की धारा छलक पड़ती थी। वह अपने सूखे हुए हाथों से मेरी बॉह पकड कर मुझे अपनी तरफ खींच लेती थी। मॉ की छाती से मुँह छिपा कर मैं भी रो उठता था। मॉ

की छाती पर छनभर सिर रखने से मुझे ऐसा जान पड़ता था मानो मैंने जलती हुई भट्ठी पर सिर रख दिया हो। मेरी छोटी वहन, जो महज तीन साल की एक मोटी-सी सुन्दर बच्ची थी, बराबर माँ के पास खेला करती थी—माँ चुपचाप अपने इस अन्तिम खिलौने का खेल देख-देख कर जीवन की उदास और कष्टमयी घड़ियों को सरस बनाने की चेष्टा करती थी।

कभी-कभी पिता जी भी माँ के निकट बैठा करते थे—उनकी कोटरगत् लाचार आँखे मानो भावी-भयकर दृश्य देखने की कल्पना से ही घबराई-सी लगती थीं। कभी-कभी माता को दवा पिलाते और चुपचाप रोते भी, मैंने उन्हें देखा था। मेरी चाची यदाकदा अम्मा के निकट आती थीं—और फिर क्षण भर बैठ कर वह चली जाती, यद्यपि वे भी उसी घर मे रहती थीं, जिसमें हम रहते थे। माँ की बीमारी के कारण मेरी चाची पर गृहस्थी का भार विशेष रूप से आ पड़ा था। वह इस भार को वहन करती हुई थकावट के स्थान पर एक ऐसे गुप्त आनन्द का अनुभव कर रही थी, जिसे कोई भी समझदार व्यक्ति अपने हृदय के भीतर दबा कर रखना ही उचित समझेगा।

(२)

एक दिन मैं देवनारायण की दो दुधार बकरियों को पकड़ कर खेत की ओर ले गया। दिनेश भी पीछे से आकर साथ हो गया। मैं बकरियों का दूध दूहना और पीना चाहता था। दिनेश न जाने कहाँ से एक फूटा हुआ ठीकरा उठा लाया। दूध दूह कर हमने उसे पी लिया और बकरियों को एक रस्सी के सहारे बाँध दिया। सोचता था कि एक घण्टे में फिर दूध जमा हो जाने पर दूहा जायगा। दिनेश ने कहा—"दूध से भी

एक अच्छी चीज बतलाऊँ।" मैंने कहा—"हाँ, चलो वहीं पीयें।" दिनेश ने मुझे इशारा किया और उसके पीछे-पीछे गाँव के दक्षिण छोर की ओर चला। उधर छोटे-बड़े खजूर के अनगिनत पेड़ थे, जिनमे ताडी के बर्तन लटक रहे थे। मैं एक दो बार उस ओर गया था।

वैसाख का महीना था—धूल उड़ रही थी। लू के थपेडों से शरीर का रक्त तक सूखना चाहता था। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, हवा के झोकों से खाली खेतों और ऊसर मैदानों से धूल उठती नजर आती थी। धूप का रङ्ग मटमैला हो रहा था और आकाश भी धूलिधूसरित दिखलाई पड़ता था। वृक्षों के पत्ते मलिन हो गये थे। ऊँचे-ऊँचे 'ताड़' और 'खजूर' के सूखे पत्ते हवा के झोकों से खड़खड़ा रहे थे। अमराई के भीतर की छाया मानों पथिकों को बुला रही थी। ऐसी स्निग्ध छाया पर नजर पड़ती थी तो ऐसा जान पड़ता था कि किसी शीतल होंठो ने आकर आँखों को चूम लिया हो। किसी घने वृक्ष की छाया मे दो-चार गायें आँखे बन्द करके जुगाली करती भी दिखलाई पड़ती थीं। मैं दिनेश के साथ खेत-पर-खेत पार करता हुआ खजूरों के जङ्गल की ओर चला—उसी ओर कब्रों की एक छोटी सी बस्ती भी थी। मिट्टी की और चूने की अनेक टूटी अधटूटी कब्रें इधर उधर फैली हुई थीं। पक्की कब्रो पर काई जम गयी थी और उस पर बैठ कर चरवाहे-छोकड़े प्राय कौडियो से जूआ खेला करते थे।

एक स्थान पर पहुँच कर दिनेश रुका और फौजी अफसर की शान से उँगली उठा कर मुझे पेड़ के नीचे खड़े होकर इधर उधर देखने का आदेश प्रदान किया। मैंने सुन रक्खा था कि दोपहरी को चुड़ैल मैदानों और घने बगीचों मे घूमा करती है। [illegible] न स्थानों मे खास तौर पर चुड़ैलो का बसेरा होता है।

मेरा हृदय भय से धडक रहा था, पर दिनेश देखते-देखते आँखों से ओझल हो गया। हवा से उड़ उड़-कर गरम गरम धूल मेरे अधनगे शरीर पर—रह रह कर—बरस पड़ती थी। मैं हक्का-बक्का-सा खडा खडा इधर-उधर ताक रहा था। मैंने अनुभव किया कि चारों ओर आग बरस रही है। कुछ दूर पर हमारा गॉव धूल के पर्दे के उस पार सपने की तरह दिखलाई पडता था। दूर-दूर पर वृक्ष हवा के झोंक से हिलते दिखलाई पडते थे—मानों सारी सृष्टि हिल रही हो—भयकर भूकम्प हो रहा हो। इसी समय दिनेश एक बड़ा-सा मिट्टी का बर्तन लिये आये। उसने मुझे आँखों के इशारे से बुलाया। मैं एक खूब छायादार बरगद के वृक्ष के नीचे जा कर रुका। दिनेश भी बैठ गया। मिट्टी के मटके से एक प्रकार की महक निकल रही थी, जो तीखी और मीठी थी। फेन से मटका भरा हुआ सा दिखलाई पडता। दिनेश ने कहा—"जल्दी करो। यदि पासी ने देख लिया तो हम पिट जायँगे।" मैं उसकी इस जल्दी का तात्पर्य नहीं समझ सका। 'पासी' शब्द के मानी मैंने 'चुड़ैल' समझा और मेरे रोंगटे खड़े हो गये। बैसाख की निर्झर दोपहरी और चारों ओर लू का ताडव नर्तन। हम दो लड़के गॉव से दूर एक सुनसान बाग मे बैठे थे। लू के थपेड़ों से शरीर और मन विचलित हो रहा था। धूल के मारे शरीर भर गया था। भूत का डर और भी धैर्य को कमजोर कर रहा था। मैं मन ही मन रो उठा—सारा उन्माद गायब हो चुका था। दिनेश बोला—"देखते क्या हो ? जल्दी पी लो।" मैंने कहा—"पहिले तुम शुरू करो।"

दिनेश ने मटके मे मुँह लगा कर दो-तीन घूट पी लेने के बाद कहा—"हूँ—पीओ।" झिझकते हुए मैंने भी एक घूट गले के नीचे उतारने का प्रयत्न किया। जिस पेय वस्तु को मैं पी रहा

था वह मीठा और तीखा था। मैंने पूछा—"यह क्या है दिनेश भैया!" दिनेश ने बड़े इतमिनान से जवाब दिया "ताड़ी! ताड़ी! मेरे मामा नित्य पीते है। दोपहर को वे नित्य ताड़ी पीते है। बड़ी अच्छी चीज है। प्यास नहीं लगती— मामा कभी भी पानी नहीं पीते। बस, ताड़ी पीकर दोपहर भर गीत गाते रहते हैं। देखते नहीं वे कितने मोटे है—ठीक जैसे गन्नू पहलवान। मैं भी अब दुबला नहीं रहूँगा। जी कडा करके मैंने भी ताड़ी पीना आरम्भ कर दिया। आध घटे में हम दोनों ने मटका खाली कर दिया। मैंने अनुभव किया कि मेरा सारा शरीर जैसे शिथिल होता जारहा है और सिर चकरा रहा है। सामने का दृश्य क्रमश. आँखों से ओझल होने लगा और बैठना कठिन होगया। मैं वहीं पर लेट गया और दिनेश बगीचे मे घूम घूम कर पके आम चूसने लगा। वह मेरे सामने आम लाकर रखता और लेटे लेटे मैं खाता जाता। देखते-देखते लू और दोपहरी का रूप उग्र होने लगा। जी चाहता था कि घर की ओर चले पर पैरों मे इतना बल नहीं था कि उठ कर खड़े हों। चलना तो दूर की बात रही। ताडी का नशा सिर पर तूफान की तरह आरहा था और इधर दोप-हरी का रूप अधिकाधिक उग्र होता जाता था। इसी समय मैंने देखा कि मेरे चाचा हाथ मे लाठी लिये मेरी ओर आरहे हैं। बात यह थी कि मैं प्रात काल से ही घर से गैरहाजिर था। सभी चिन्तित थे। दोपहरी होते न होते घर वालो की परेशानी बढ़ी, चिन्ता बढी। पिता जी दमा से परेशान रहते थे इसीलिये चाचा मेरी खोज मे निकल पड़े। तलाश करने पर उन्हें पता चला कि मैं दिनेश के साथ इस ओर आया हूँ— ॥ फिर क्या था, आप बिना छाता लिये ही इस ओर चल । चाचा की सूरत देखते ही मेरे देवता कूच कर गये।

दिनेश ने जब मामला बेढब होते देखा तो वह सदा की तरह इस बार भी छूमन्तर हो गया। मैं चित लेटा था और कै करने की चेष्टा कर रहा था। मेरे पेट मे जैसे समुद्र-मथन हो रहा हो। बार-बार उबकाई आती थी, पर मुझमे इतनी शक्ति नहीं थी मैं उठकर बैठूँ। देखते देखते एक जोर की उबकाई आई और चित्त लेटे ही लेटे मैंने कै कर दी—इसी समय चाचा ने बागीचे मे प्रवेश किया। उनकी व्यग्र आँखे इधर-उधर मुझे ढूँढ़ रही थीं और बार बार कै करने के लिये उबकाई पर उबकाई आ कर मुझे कष्ट दे रही थी। मेरी उबकाई के शब्द ने चाचा का ध्यान मेरी ओर खींचा। वे झपट कर मेरी ओर आये और ताड़ी की गंध से कुछ दूर पर ही ठहर गये। मैंने कै की और मेरे पेट मे ताड़ी दौड़ने लगी। मैं प्रयत्न करता था कि उठ कर भाग जाऊँ पर शरीर की दशा अवर्णनीय थी। नशा आँधी की तरह सिर के भीतर हाहाकार कर रहा था। चाचा क्षण भर रुक कर—डपटते हुए बोले—"अबे साला, यह क्या किया तू ने—राम-राम ताड़ी पीना तू ने किससे सीखा!"

इतना कहकर चाचा थूकते हुए दो कदम पीछे हट गये—इसी समय मैंने फिर कै की। मै चित लेटे लेटे कै करता और सारी बदबूदार कै मेरी छाती पर ही फैली हुई थी। घृणा से चाचा का मुख विवर्ण हो गया था और वे मुझे उस सुनसान बाग में अकेले छोड़ कर लौटना भी नहीं चाहते थे और गोद मे उठा कर ले जाना भी कठिन था, क्योंकि मेरा सारा शरीर कै और ताड़ी से भरा हुआ था। रह-रह कर चाचा बेकली के साथ थूक रहे थे। आस पास मे कहीं पानी का सोता भी नहीं था, जो वे मेरे शरीर को धोकर साफ करते—इस सूनसान दोपहरी मे कोई नजर भी नहीं आता था। मेरा नशा हिरन हो चुका था—पर शरीर ऐसा हो गया था मैं चल फिर नहीं सकता

था। मैं चाचा की परेशानी देख कर मन ही मन डर रहा था कि कहीं अधिक ऊब कर मुझे छोड कर न चले जायँ या यहीं पीटना आरम्भ कर दें।

कुछ देर ठहर कर चाचा ने पहिले अब मन को स्वस्थ बनाया। जब उनका दिमाग ठीक अपनी जगह पर स्थिर हो गया तो वह उच्च स्वर से किसी का नाम लेकर पुकारने लगे। वह नाम मुझे याद नहीं है—सम्भवत शिवनाथ या शिवदास रहा होगा। निश्चय ही वह बाग का पहरेदार रहा होगा। कुछ देर बाद एक ठिगना-सा काला कलूटा बूढ़ा जो सम्भवत. लकवे के कारण या वात व्याधि के चलते चल नहीं सकता—दोनो टाँगे घसीटते हुए पेड़ों के पीछे से निकल पडा। उसके हाथ में एक बड़ी-सी लाठी भी थी। एक फटी-सी लँगोटी लगाये और गन्दा और फटा-सा एक चादर लपेटे, जिससे उसके दोनों कन्धे किसी-किसी तरह ढक जाते थे और इस तरह यह लू से अपने शरीर की रक्षा कर रहा था।

वह नवागन्तुक शिवदास—आप भी इसे शिवदास ही मान ले, जब नाम ही भूल गया हूँ तो क्या उपाय है—आकर सामने खडा होगा। यह लू और धूप से एक थका हुआ मनुष्य दिखलाई पडता था। आधा पेट खाने के कारण शिवदास का पेट पीठ से लगा था और शरीर भी अस्वाभाविक रूप से वृद्ध हो चुका था। धूप और वर्षा मे तथा कडाके की सर्दी के दिनों मे भी अक्लान्तभाव से कठोर परिश्रम करते-करते शिवदास का शरीर ऐसा बन चुका था कि उस पर परिस्थिति के अनगिनत प्रहार होते तो रहते ही थे, पर उन प्रहारो का कोई खास असर स्पष्ट लक्षित नहीं होता था। शिवदास कुछ बहरा भी था, क्योंकि चाचा ने ऊँची आवाज मे जब कहा कि—' एक घडा चाहिये।" तो उसके अत्यन्त इतमीनान से उत्तर दिया

कि—"इस साल आम खूब आये हैं।" मैं सोचता हूँ कि चाचा के पुकारने से शिवदास नहीं आया था वह स्वभाविक रूप में बाग का पहरा देते देते हमारी ओर निकल पड़ा होगा। चाचा जी ने मेरी ओर उँगली उठा कर शिवदास से कहा—अबे, आम नहीं पानी-पानी! देखते नहीं इस पाजी ने क्या कर डाला है। इसे घर ले जाऊँ तो कैसे—।"

इतना कहकर चाचा जी ने फिर थूकना आरम्भ कर दिया। घृणा से उन्होंने मुँह फेर लिया। शिवदास ने मतलब समझ लिया। वह झुककर मेरी दशा की जाँच करने लगा। क्षण भर बाद मुस्करा कर उसने जवाब दिया—"इसने ताड़ी पी ली है—यह आदत कैसे लगी। बड़ी बुरी लत है—घर का घर बर्बाद हो जाता है। आप लोगों के यहाँ ताड़ी चलती भी नहीं; यह तो हम छोटे लोगों की चीज है।"

इस नाटक को मैं पड़ा पड़ा देख रहा था। मध्य दोपहरी थी—लू के झोंकों से हाहाकार मचा हुआ था। हवा वृक्षों को इस तरह झकझोर रही थी कि जैसे किसी नन्हें से वृक्ष की नन्हीं सी डाल को बन्दर झकझोर देता हो। मैं अब पूरी तरह होश मे था, पर डर के मारे आँखें बन्द किये पड़ा रहना चाहता था। इसी में कल्याण भी था—यदि मैं होश मे आकर बैठ जाता तो चाचा निश्चय ही मुझे पीट-पीट कर करनी का फल चखाये बिना न छोड़ते। उनकी बिगड़ी हुई त्योरियों ने मेरी हिम्मत पर वज्रपात कर दिया था। शिवदास लाठी टेकता चला गया और फिर तत्काल एक घड़ा कन्धे पर उठाये लड़-खड़ाता हुआ आया। उसने मेरी कै धोना आरम्भ किया और मैं मुर्दे की तरह आँखें बन्द किये पड़ा रहा। शीतल जल के स्पर्श से मेरी आत्मा को बड़ी शान्ति मिली। मेरी लँगोटी खोल डाली गयी और मैं नगधड़ंग पड़ा रहा।

इसी समय ईदनमियाँ के साथ मेरे पिता जी भी आये—वे हाँफते हुए धीरे-धीरे चल रहे थे। पिता जी की सूरत देखते ही मेरा रहा सहा साहस भी भाग खड़ा हुआ। मैं चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगा। ईदनमियाँ मेरा रक्षक था—घर पर भी जब मैं पीटा जाता था तो दयालु-हृदय वृद्ध ईदनमियाँ मेरी रक्षा करता था। मेरे पिता जी उसे चाचा कहते थे और मैं ईदन-बाबा। इस मुसलमान परिवार से मेरे परिवार की गहरी घनिष्ठता थी—हिन्दू और मुसलमान के बीच का तनाव नहीं था। दोनों परिवार एक दूसरे के सुख-दुख मे सदा हाथ बटाता था।

मेरे ताड़ी पीने का समाचार सुनकर पिता जी ने सिर पीट लिया। वे 'हाय' करके वहीं—जमीन पर—इस तरह बैठ गये मानों उन्हें मूर्छा आगयी हो। हक्का बक्का-सा ईदनमियाँ खड़ा रहा। वे सोच भी नहीं सके कि आखिर मैंने ताड़ी पीने की आदत किससे सीखी।

सिर पर हाहाकार करता हुआ बैसाखी-तांडव हो रहा था और उस एकान्त बाग मे तीन चार मनुष्य मेरा उपचार कर रहे थे। मैं होश मे तो था, पर भय के मारे चुपचाप पड़ा रहना चाहता था।

आखिर सध्या होने तक सभों ने शिवदास के झोपड़े मे रुक जाने का निश्चय किया। मेरी कै धो डाली गयी थी—मैं उठाकर शिवदास की झोपडी मे ले जाया गया—वहीं मेरे पिता जी, चाचा जी और शिवदास के साथ ईदनमियाँ ने आश्रय लिया। कुछ घटों के बाद दिन ढल गया—वृक्षों पर चिड़ियाँ बोलने लगीं और लू के झोंके रुक गये। धूप ठढी पड ... । शिवदास ने पके आमों से अपने अतिथियों का सत्कार ... पर किसी ने उसे छूआ तक नहीं। हाँ, दो चार लोटे

शीतल जल पी-पी कर सभों ने दोपहरी को समाप्त किया। सध्या होते ही मै चाचा की गोद मे चढ़ा हुआ घर पहुँचा। स्नान करा कर मुझे गोमूत्र पिलाया गया।

यह उस समय की कहानी है जब मैं ८, ६ साल का था पर था पूरा शरारती।

(३)

दिनेश के साथ मै लुक-छिप कर प्राय: ताड़ी पी लिया करता था, पर अधिक नहीं पीता था। वह अपने घर से चुराकर पैसे लाता और बीड़ियाँ भी लाया करता। हम ताड़ी पीते और बीडी भी पिआ करते थे। यह सब काम गॉव के बाहर बागीचों मे होता था। दो-चार चरवाहे, जो हमारी ही उम्र के थे, हमारे पक्के साथी बन गये। कभी-कभी दिनेश मुझे भी पैसे चुराकर लाने के लिये उत्साहित किया करता था। मैं डरता था, क्योंकि मेरी प्रकृति उद्धत तो थी, पर झेंप की आदत रहने के कारण दु:साहस मैं नहीं कर सकता था। एकाध बार पिता जी के कुरते की जेब में हाथ भी डाला, पर फिर खटका होते ही अलग हट कर बैठ गया। दिनेश के लगातार उत्तेजित करने पर एक दिन मैंने बडी हिम्मत की—मन कड़ा करके चाचा जी के कुरते की जेब से दो-तीन आने पैसे निकाल लिये और तत्काल घर से निकल भागा। मैं ऐसा भागा जा रहा था कि कोई पीछा कर रहा हो।

वर्षा के दिन थे और आकाश घटाओं से भरा हुआ था। दोपहर से ही सध्या का भ्रम होने लगता था। खेतों मे जल भरा हुआ था और गॉव की गलियॉ कीचड़ से भर गयी थीं। चारों ओर एक धुँधली शोभा दिखलाई पड़ती थी। खेतों मे

एक पथ के भिखारी को चक्रवर्ती सम्राट् के पद पर बैठाना सभव हो सकता है। मैंने एक टुकड़े गुड को पैसे से अधिक मूल्यवान समझा और माता के हाथ मे चुपके से पैसा धर दिया तथा गुड खाता हुए नृत्य-विभोर हो उठा। इसमे सदेह नहीं कि अपनी बुद्धि के साथ उसने सबसे बड़ा विश्वासघात किया था, जिसने सिक्कों की चलन का सबसे पहिले जन्म दिया।

हाँ, तो मैं इठलाता हुआ आगे बढा। चरवाहों के व्यवहार से पता लगता था कि वे मुझे सम्मान की नजरों से देख रहे हैं। इसमे सदेह नहीं कि स्वयम् अपनी दृष्टि मे भी मेरा अपना मूल्य बढ़ गया था। थोडी देर बाद दिनेश आया। पता चला कि उसके मामा जब लोटा लेकर और कान पर यज्ञोपवीत चढ़ाकर, जिसे वे प्राय ताड़ी के झोक मे आकर निकाल कर फेंक देते थे और नशा उतरने पर जल से धोकर तथा गोमूत्र छिडककर पहन लिया करते थे, मैदान की ओर चले तो दिनेश अवसर पाकर निकल भागा। भागते-भागते वह मामा की पीकर फेंकी हुई दो-तीन अधजली बीड़ियाँ उठा लाया था जिसे हम आराम से पीने के लिये व्यग्र हो उठे। एक चरवाहे ने न जाने किधर से थोडी-सी आग की सहायता पहुँचाई। अत एक बीड़ी पारिश्रमिक स्वरूप देकर हम आगे बढ़े। एकान्त पाकर मैंने दिनेश को अपनी सफलता की कहानी सुनाई और उसका हाथ पकडकर अपनी टेंट के पैसे टटोलवा दिये। दिनेश की बाछें खिल गयीं। उसने सोत्साह पूछा—
"कितने पैसे हैं—देखूँ तो।"

मैंने गम्भीरता से उत्तर दिया—"बहुत से—।"

दिनेश का लोभ बढ़ा। उसने देखने का आग्रह प्रकट
। मैंने न दिखलाने का हठ किया। पैसों को टेंट मे

रख लेने के बाद मेरा मन लालची हो गया था। मैं मन ही मन डरता था कि दिनेश पैसे ले लेगा और मैं फिर खाली का खाली रह जाऊँगा। दिनेश पेंच ताव खाकर बोला—"दिखला दो"

"ऊँहुक"

"क्यों ?"

"कल दिखलाऊँगा ?"

"आज क्या पख लग गयी ?"

"नहीं भाई, कल अवश्य दिखला दूँगा।"

"अच्छी बात—कहे देता हूँ, पछताओगे।"

मैंने भी शान के साथ उत्तर दिया—"परवा नहीं।"

नेपोलियन को 'वाटरलू' के मैदान में डराकर विजय प्राप्त करनेवाले 'विलिंगडन' की तरह तन कर मैं खड़ा होगया। दिनेश भी किसी से दबनेवाला थोड़े था। वह भी तनकर खड़ा होगया। "क्यों पैसे नहीं दिखलाओगे ?"—दिनेश ने मानों अन्तिम बार चितावनी देने के स्वर में पूछा। मैंने भी धीर-गम्भीर वाणी में उत्तर दिया—"कभी नहीं।" "तू चोर है, तेरा बाप भी चोर है।"—दिनेश ने चिल्लाकर कहा। अपने पूज्य पितृदेव पर पडनेवाली इस कलंकगलीज की छींटों को मैं भला कैसे सहन करता और विशेष रूप से जब मेरी अंटी में एक-दो नहीं मुट्ठी भर पैसे बँधे हों। पास में पैसे रखने का फल ही क्या हुआ जब सिर झुकाकर गालियाँ सुनने को लाचार होना पडे।

मैंने बुजुर्गों की तरह चितावनी भरे स्वर में कहा—"सुनो दिनेश, तुमने गालियाँ दी हैं तो फिर अपनी खैरियत समझना—हाँ, कहे देता हूँ।"

"चुप रह—चोर साला !"—दिनेश ने तिरस्कार के साथ कहा। मेरे लिये अब अपमान बर्दाश्त करना कठिन हो गया।

मैंने आव न देखा ताव, दिनेश पर एकाएक धावा बोल दिया। गुत्थम-गुत्थी होते देर नहीं लगी।

दिन अस्त हो चुका था। बरसात की सन्ध्या थी और आकाश घटाओं के कारण गहरे भूरे रग का दिखलाई पड़ता था। झिल्ली-रव सुन पड़ता था और मेढ़कों की कर्कश आवाजें सुन पड़ती थीं। बाँस के पत्ते हवा मे खड़खड़ा रहे थे। पहिले तो दिनेश को मैंने उठाकर पटक दिया पर उसने इस जोर से मेरे पेट में दाँत काट लिया कि मैं चिल्लाने लगा। इस धक्का-मुक्की मे टेट से पैसे गिर गये और मैं पेट पकड़ कर रोता-चिल्लाता घर की ओर भागा और पैसो की याद पेट के घायल हो जाने के कारण बिसर गयी। मैं रोता हुआ और दिनेश को गालियाँ देता हुआ सीधे घर की ओर भागा। घर के पास पहुँच कर मैंने सुना कि मेरे चाचा गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रहे हैं और बार-बार मेरा नाम भी ले रहे हैं। परि-स्थिति का ज्ञान होते देर नहीं लगी और मैं अपना रोना-धोना भूलकर गली में ही खड़ा हो गया। सामने ईदनबाबा की चौपाल थी और आठ-दस बैल नाद पर खरी-भूसा खारहे थे और उनके नथनों से 'साँय-साँय' की आवाज निकल रही थी। ईदनबाबा हाथ में मिट्टी के तेल की डिबिया लिये बैलों की देख-रेखकर रहे थे तथा उनके छप्पर से धूएँ की एक नन्हीं-सी घटा निकल रही थी। यह रात्रि का प्रवेश था और दिन की विदाई का अन्तिम चरण। खेतों से किसान अपने-अपने घरों मे लौट आये थे तथा गाँव दिन भर की निर्जनता के बाद एक बार गुलजार हो गया था—चारों ओर एक प्रकार की हलचल मच गयी थी। किसी घर से बच्चे के रोने की आवाज ‸ थी तो किसी घर से गृह-स्वामी का गर्जन-तर्जन सुन

पड़ता था। कीचड़ भरी गलियो में कोई-कोई सँभल-सँभल कर चलता हुआ भी नजर आता था।

मैं खड़ा-खड़ा अपने घर के कोलाहल को मन प्राण-देकर सुन रहा था। थोड़ी देर मे चाचा की आवाज नहीं सुन पड़ने लगी और मेरे पिता जी की थकी हुई आवाज सुन पड़ने लगी। वे कह रहे थे—"केवल तीन आने पैसो के लिये तुमने सिर पर आसमान उठा लिया। मुनुआ चोरी नहीं करता। तुम नाहक उसे दोष दे रहे हो। लो, मै तुम्हारे पैसे दे देता हूँ। तुम्हारे ही मारे वह बेचारा घर पर नहीं टिकता—इधर-उधर दौड़ता-छिपता फिरता है। एक वार ही उसे मार ही क्यों नहीं डालते। जब देखो तब मुनुआ की चर्चा—मेरा तो दिल पक गया।"

चाचा ने दहाड़ते हुए कहा—"मैं कौन होता हूँ तुम्हारे सपूत को मार डालने वाला। परमात्मा ने जब मुझे निर्वंश बनाकर दुनिया मे भेजा है तो मैं तुम्हारे लाड़ले को देखकर क्यों जलूँगा। पर कहे देता हूँ—वह पक्का पाजी है। यह उसी का काम है। मेरी कोठरी मे वही जाता है। क्या मेरे तीन आने पैसे चुराने के लिये कलकत्ते से डकैत आये थे?"

पिता जी ने जरा और गरम होकर कहा—"चोर नहीं आये थे तो तुम्हारे पैसे मुनुआ ने चुरा लिये। आने तो दो उस पाजी को तुम्हारे ही सामने उसे उठाकर पटक देता हूँ। वही घर का कटक है। मर भी नहीं जाता साला कि सब के दिल की आग ठण्डी पडे। मेरा तो जी उकता गया है।"

इस बार चाचा जी ने जरा नरम सुर मे कहा—"भैया, तुम ही भोलेभोले हो। लडका बिगड़ता जा रहा है। आठ-नौ साल का हुआ। पढ़ने-लिखने का कोई प्रबन्ध नहीं, दिन भर आवारा-गर्दी। उस दिन ताडी पी कर बगीचे में पड़ा था—यह भी कोई

प्रशंसा की बात है। क्या मुनुआ मेरा बच्चा नहीं है जो मैं उससे जलता हूँ। तुम तो पागलों की-सी बातें कर रहे हो। मेरे तीन आने पैसे गये तो परवा नहीं पर यह आदत बुरी है।" पिता जी का भी क्रोध शान्त हो गया। वे बोले—"भाई, मैं भी तो यही सोच रहा हूँ कि उसे किसी गुरु के हवाले कर दूँ, पर घर गृहस्थी से छुट्टी मिले तब न! मैं तो पढ़ना-लिखना जानता नहीं। तुम तो कलकत्ते से हो आये हो, सब जानते हो—जा कर स्कूल में नाम लिखवा दो। पढ़-लिख लेगा तो दो पैसे कमा कर गृहस्थी का भार तो हल्का करेगा। ईदन चाचा भी यही कहते थे। सुना है कि जगेश्वर का लड़का (दिनेश) अब पढ़ने जाता है। मैं तो स्वयम् यह सोच रहा था कि मुनुआ को भी पाठशाला में बैठा आऊँ। अच्छा हुआ जो तुमने खुद चर्चा छेड़ दी। गाँव के आवारा लड़कों के साथ वह बिगड़ रहा है। घर पर तो एक क्षण के लिये ठहरता ही नहीं—जब देखो इधर उधर घूम रहा है।"

मैंने अनुकूल वातावरण का अनुमान लगा कर घर की ओर कदम बढ़ाया और चचा जी की आँखें बचा कर चुपचाप अम्मा के पास चला गया जो चूल्हे के पास बैठी रसोई बना रही थीं। मैं चुपके से जाकर उनके पीछे खड़ा हो गया। उन्होंने एक बार सिर घुमा कर मेरी ओर देखा और फिर अपने काम में मानो तल्लीन हो गयीं। कुछ देर खड़ा रह कर मैं डरते डरते बोला—"भूख लगी है।" अम्मा फिर भी चुप रहीं। रसोई घर का वातावरण ऐसा गम्भीर एवं भारी था कि मेरा बाल्य-सुलभ अस्थिर मन भी शान्त हो गया, पर माँ का यह मौनावलम्बन मेरे मन को चुटकियों से मसल रहा था। मैं सहमते हुए फिर बोला—"माँ, भूख लगी है।" इस बार माँ का कण्ठ फूटा। ...ष्परुद्ध कण्ठ से बोली—"अरे पाजी, तू जन्मते ही क्यों

नहीं मर गया, जो मेरी कोख में कलंक लगाता फिर रहा है। मेरा जीवन दूभर हो गया है। अब इस घर में रहना कठिन है। दिन रात लोग बच्चे को कोसते रहते हैं। हाय, मै मर भी नहीं जाती—हाय रे मेरा भाग्य! वे अगर भले होते तो किसका मजाल जो कोई तेरी ओर उँगली भी उठा सकता था, पर उन्हें ही जब शर्म नहीं आती तो मैं क्या करूँ। नहीं—अब सहा नहीं जाता। जी करता है कि कहीं भाग जाऊँ या कूएं में कूद कर जान दे दूँ।"

इसी समय मेरी चाची, जो अपनी कोठरी में पड़ी-पड़ी सब सुन रही थीं, जोर से किवाड खोलकर बाहर निकलीं। वे वाग्युद्ध की पूरी तैयारी कर के बाहर निकली थीं। मेरी माँ चुप हो गई थीं और नि शब्द रो रही थीं। चाची ने आते ही कहा—"क्यों बहिन, कौन तुम्हारे बच्चे को कोसता है। मैं खून का घूँट पी कर चुप रहती हूँ। यह घर तुम्हारा है। हम कौन हैं। खिदमत करते हैं तो दो रूखी-सूखी रोटियाँ मिल जाती हैं। तुम क्यों जान दोगी—बहिन! कहो तो इसी समय तुम्हारा घर खाली कर दूँ।"

एक साँस में इतना कह कर चाची फिर पैर पटकती हुई अपनी कोठरी मे चली गयीं और किवाड़ बन्द करके उन्होंने रोना शुरू किया। बीच-बीच में वह वाग्बाण भी छोडती जाती थीं—"परमात्मा ने मुझे सतानहीन बना कर संसार में इसी लिये भेजा है कि मैं दूसरों के लात-जूते खा कर जीऊँ। हायरे मेरा दग्ध-कपाल! मैं डायन हूँ जो दूसरे के बच्चे को कोसती रहती हूँ। जब ईश्वर ने मेरी कोख में आग लगा दी है तो मैं दूसरे का सुख देख कर क्यों जलूगी। अब इस घर में अन्न खाना क्या है जहर खाना है। हमारे चलते घर की रानी जान देने पर उतारू हैं तो यहाँ रहने के मानी हैं खून करना।

बाप रे ! हम भीख माँग कर अपनी जिन्दगी के दिन पूरे कर लेंगे पर इस राजसुख मे आग लगे। हम दो जीव ठहरे—फिर चिन्ता कैसी।"

मेरी अम्मा ने भर्राये गले से कहा—"बहिन, तुम किसके राजसुख मे आग लगा रही हो। तुम अपनी आग से खुद जलो—मुझ गरीबनी पर रहम करो। लो मुनुआ हाजिर है। जब इसकी जान की भूखी हो तो आकर इसका गला काट डालो।" इतना कह कर अम्मा ने मुझे जोर से चाची की बन्द कोठरी के द्वार पर ढकेल दिया। मैं बड़े जोर से गिरा और कुंडे मे लग कर मेरा सिर फूट गया। मुझे मूर्छा सी आ गयी और मैं चुपचाप जहाँ का तहाँ पड़ा रह गया। मेरी अम्मा ने जब मेरे सिर से खून की धारा बहती देखी तो छाती पीटकर चिल्लाने और कहने लगी—"ले—राक्षसी, आज बेटा का बलिदान दे दिया।"

एक क्षण के बाद होश में आ गया, पर सिर इतने जोर से चकरा रहा था कि मैं उठ नहीं सकता था। मेरे दोनो कान पर बैठकर मानो दो झिल्ली बोल रहे थे। रोने धोने की आवाज से पिता जी—और—चाचा भी दौड़ते हुए भीतर आये। चाची ने भी किवाड़ खोल दिये। माँ मुझे गोद में उठा रही थीं, पर मैं था ९।१० साल का लड़का और उनका शरीर था रोग जर्जरित इतने में चाची ने आकर मुझे गोद मे उठा लिया। पिता जी बाहर ही रुक गये और चाचा जी लालटेन लेकर दौडे। यह एक नया नाटक शुरू हो गया। सिर धोकर पट्टी बाँधी गयी। चाची ने अपनी कोठरी मे ही लेजाकर मुझे सुलाया और मेरे खून की धारा मे पारिवारिक कलह बह गया। प्रत्यक्षत कलह का तो अन्त हो गया, पर मन की गाँठ बनी रही।

---

(४)

कई दिनो तक घर पर ही कैद रहने के बाद एक दिन दोपहर को मैं खेतों की ओर चला। सजल खेतों की हरियाली की शोभा वर्णनातीत थी बरस कर जो घटायें खुल गयी थीं, उनकी छाया भी खेतों में जमे हुए जल मे स्पष्ट और सुन्दर दिखलाई पड़ती थी। मानो ये घटायें थकी हुई-सी दिखलाई पड़ती हों। मेरे हाथ मे बाँस की एक छड़ी थी और कुत्तों को पीटने के लिये मैंने इसे ले लिया। मुझे कुत्तों, गधों और सूअरों को बहुत पीटना बहुत ही प्रिय था। खेतों में या मोरियों मे गलीज खाते समय सूअरों पर प्रहार करना विशेष आनन्द का काम था—क्योंकि भोजन करते समय वे प्राय. आनन्द-विभोर हो जाते और ऐसे अवसर पर मेरा घात सहज ही लग जाता। गाँव की गलियों मे पड़े रहनेवाले कुत्तों को मैं प्रायः रोड़े या पत्थर के टुकड़े से मारा करता। इधर कई दिनों से दिनेश से मेरी मुलाकात नहीं हुई थी और अकेला सूअर और कुत्तों पर धावा बोलने में आनन्द नहीं आता था। खैर, एक दिन मन बहुत ही उदास हो गया। घर पर कोई भी न था। अम्मा का सिर दुख रहा था और चाची पड़ोस की सखी के घर चली गयी थीं। बढ़िया अवसर ताक कर मैंने भी एक ओर राह ली—पर उस दिन पैसे चुराने की हिम्मत नहीं हुई, यद्यपि मैं जानता था कि मेरे पिता जी की जेब में चमचमाती हुई दो इकन्नियाँ पड़ी हुई हैं। पैसों की ओर से मन खींचकर मैं घर से निकला, पर द्वार पर पहुँचकर जरा-सा ठिठक गया—सोचने लगा एक इकन्नी ले लेना कोई उतनी बुरी बात नहीं है। पिता जी तो इसकी खोज भी नहीं करेंगे। हाँ, चाचा जी का पैसा छूना खतरनाक काम है। मैं लौटकर फिर कोठरी मे आया पर मेरे पैर काँप रहे थे, हृदय

धड़क रहा था और—और ऐसा जान पड़ता था कि खाट के नीचे से, कुरते के पीछे से, छप्पर के नीचे से और कोने-कोने से कोई घूर-घूर कर मुझे देख रहा है। दो डरावनी और खूँखार आँखे मानो दुनाली बन्दूक की तरह मेरी ओर निशाना साधे—टकटकी लगाये—घूर रही हैं। मैं क्षण भर रुककर सोच विचार में पड़ा। इसी समय बाहर किसी के चलने फिरने की आहट मिली। मैं उठकर कोठरी के बाहर निकल आया। मुझे जान पड़ा कि मेरे समस्त शरीर का रक्त सिमट कर सिर पर चढ़ गया है और वहाँ जमा होकर वह 'अदहन' की तरह खौल रहा है। मेरे कपाल की नसें फूलकर तन गयीं और दोनों कान गरम हो गये।

हृदय ऐसा धड़क रहा था मानो वह उछलकर मुँह को आना चाहता हो। बाहर निकल कर मैंने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई तो सर्वत्र निर्जनता का उदास साम्राज्य पाया। सामने ईदन दादा के खपरैल पर बैठकर दो कौवे अपने भीगें पङ्खों को सुखा रहे थे, क्योंकि घटाओं के बरस कर खुल जाने के कारण लाल-मृदुल-धूप निकल आई थी जो बहुत ही भली जान पड़ती थी। गली की कीचड़ में एक छोटे से बच्चे को खेलते देखा, जो हाथ में एक सूखी-सी रोटी लिये खा रहा था और पैर पटक-पटक कर कीचड़ उड़ा रहा था, यद्यपि उसकी उड़ाई हुई कीचड़ का बहुत हिस्सा उसकी ही नङ्गी देह पर पड़ता था। थोड़ी देर बाद एक मुरगा आया जो ईदन चाचा की नाली मे कीड़े खोजने लगा। घर के भीतर—जहाँ माँ और चाची रहती थीं—एकदम सन्नाटा था। मेरी बहन जो ज्वर-ग्रस्त थी, चुपचाप पड़ी सो रही थी। मैं एक बार फिर अपने समस्त साहस को पुकार कर कमरे के भीतर घुसा। इस बार कुरते के निकट

और धीरे से इकन्नी निकाल कर घर से बाहर हो गया—

मैं यद्यपि धीरे-धीरे चल रहा था, पर मेरी साँस फूल रही थी। मानों मैं कोसों का चक्कर काटता हुआ आ रहा हूँ। मन भी उमगहीन और थका-सा हो रहा था। थोड़ी देर के संकल्प-विकल्पों की कुश्ती के कारण मन मानों पूरी तरह श्रान्त और निश्चेष्ट हो गया था। दिनेश से उस दिन जो हाथा पाई हो गयी थी, वह कोई नई घटना नहीं कही जा सकती—इसके पहिले भी हम एक दूसरे से लड़ चुके थे। काफी मार-पीट के बाद भी हम मित्र ही बने रहे। मेरे मन में किसी तरह की गाँठ नहीं और मुझे विश्वास है कि दिनेश भी मुझ पर नाराज नहीं हो सकता। पर—पर मन ही मन मैंने मान कर लिया था।

मैं दिनेश के घर की ओर इस तरह चला मानों योंही—सहज स्वभाव से—मैं अपने रास्ते जा रहा हूँ। कुछ दूर जाने के बाद उसके मामा की घिनौनी सूरत याद आयी—मैं उसकी शरारतभरी आँखों को देखना कतई पसन्द नहीं करता था। मैंने दूसरी ओर मुड़ जाने का निश्चय किया, पर 'दिनेश' को एक बार यह दिखला देना चाहता था कि मैं तुम्हारी कतई परवा नहीं करता। निश्चय ही वह मेरी लापरवाही देखकर मन ही मन अपनी करनी पर पछताता और मैं उसे पछताता देखकर प्रसन्न होता। एक कदम आगे बढ़ाते ही फिर उसके मामा की याद आ गयी। इस बार मैंने निश्चय कर लिया कि दिनेश की ओर नहीं जाऊँगा—इसमे भी अपनी हेठी है। दिनेश का घर गाँव के एक किनारे था। उसका घर गाँव से बाहर और खुले मैदान मे था। चारों ओर का दृश्य बहुत ही लुभावना था—जिधर दृष्टि जाती, खेत ही खेत और ऊपर नीला आकाश। उसका घर हमारे घरों की तरह कच्ची दीवारों पर फूस का छप्पर डाल कर नहीं बनाया गया था। पकी ईंटों की सीधी और पुती हुई दीवारें थीं जिन पर लाल खपड़े का सुन्दर

छप्पर था—दरवाजे पर एक पक्का बँधा हुआ कूआँ था और दिनेश के चाचा और मामू खड़ाऊँ पहन कर घर के विशाल चौतरे पर टहलते थे तथा पीतल के बड़े से हुक्के मे तम्बाकू पीते थे—एक नौकर भी था जो उनके कपड़े धो दिया करता था तथा तम्बाकू भर कर दोनों मालिकों को पिलाया करता था। दिनेश के दरवाजे पर कई जाति के फूल लगे थे तथा एक मोटा-सा कुत्ता खाट के नीचे पडा रहता था। गाॅव के सभी बड़े-बूढ़े दिनेश के पिता का सम्मान करते थे अर्थात् उनके सामने बैठकर गाॅजा का दम नहीं लगाते थे—अर्थात् पीठ फेर कर पीते थे। उन्हें सभी जगेश्वर बाबू कहा करते थे। वे धनी थे और सवेरे चौकी पर बैठ कर नीम का दातून किया करते थे। गाँव मे किसी बात का झगड़ा उठ खड़ा होता तो जगेश्वर बाबू का निर्णय अन्तिम निर्णय समझा जाता। परमात्मा की उन पर कृपा थी।

मैं दिनेश के घर की ओर न जाकर नदी की ओर चल पड़ा। नदी का दोनों छोर भरा हुआ था। भरी जवानी की उमङ्ग मे नदी इठलाती हुई बह रही थी। मटमैले जल मे छोटी छोटी तरगे जल-बालिका की तरह मचल मचल-कर खेल रही थीं। पुरवा हवा के झोंके से वृक्षों के पत्ते हिल रहे थे जिन पर सूर्य की कीरणे चमक रह थीं। तट पर पहुॅच कर मैं खड़ा होगया। इतने मे दिनेश आया। आज वह धोती-और कुर्ते से लैस था—बाल सॅवारे हुए थे। मैंने मानो उसे देखा ही नहीं—वह भी एक अपरिचित-सा आगे बढ़ गया। मुझे दिखला कर उसने अपनी जेब से दो चार पैसे निकाले और गिन कर टेट मे रखने का उद्योग करने लगा। इसके बाद दूसरी जेब से एक छोटी सी पुस्तक निकाल कर पढने लगा—

"... का तीन, तीन दुना छ, तीन तिया नौ, तीन चौक

बारह।" मैं मन ही मन—अपने आपको छोटा महसूस कर जैसे लज्जित-सा हो गया। कुछ देर अपनी किताब को इधर' उधर उलट-पलट कर वह बोला—"ओह भूल गया—मेरा जूता घर पर ही छूट गया—अच्छा, कल पहन कर स्कूल जाऊँगा।"

मेरे हृदय पर मानों किसी ने एक घुस्सा कस कर मार दिया। मैं कभी अपनी फटी लँगोटी की ओर देखता और कभी कीचड़ भरे पैरों की ओर। मेरे सिर के बाल भी भेड़ के बालों की तरह बराबर कटे हुए और तैलहीन रुक्ष थे। कुरता—कुरता तो प्राय जाड़े के दिनों मे ही पहना करता था, वह भी फटा हुआ और मैला-कुचैला। मै मर्माहत-सा खड़ा रहा। इसी समय दिनेश जेब से भुना हुआ चिउड़ा निकाल कर—घास पर बैठ कर—खाने लगा और भूखे कुत्ते की तरह टकटकी बाँध कर—उसके सौभाग्य पर खीजता हुआ—मैं देखने लगा। मैंने मन ही मन निश्चय किया, कल मैं भी कुर्ता धोती पहन कर दोनों जेबो मे चिउडा भर कर घर से निकलूँगा और पैसे—सो तो मेरे पास चार पैसे मौजूद ही हैं, फिर पैसों की क्या चिन्ता है। सच पूछिये तो अपने पैसे दिखलाकर मै दिनेश को ललचाने के लिये चला था पर परिणाम उलटा ही हुआ।

मैंने धीरे से पुकारा—'दिनेश!'

'अरे तुम यहाँ कहाँ'—दिनेश ने मानो नींद से चौंक कर उत्तर दिया।

मैंने कहा—कई दिनों पर घर से निकला हूँ। तुम्हारी ओर गया था। तुम्हारे मामा कुत्ते को रोटी खिला रहे थे—वही कुत्ता जो उस दिन मुझे देख कर काटने दौड़ा था। कितना बदमाश है वह दिनेश!"

दिनेश बोला—"मुझसे बहुत डरता है। कहो तो मैं उसे

कान पकड़ कर तुम्हारे घर तक लेता आऊँ। क्या मजाल जो जरा सा गुर्राये भी। मैं उसे नित्य भात खिलाता हूँ।"

मैं बोला—"पर है बड़ा बदमाश—किसी दिन साले को पीटूगा।"

नहीं-नहीं—दिनेश बोला—"बाबू जी नाराज हो जायँगे। हाँ, भाई, मैं अब रोज स्कूल जाता हूँ। स्कूल यहाँ से दूर पर है—सामने मनोहरपुर की ओर—उसी तरफ जिस ओर एक दिन हम अमरूद खाने गये थे—याद है न ? मँगरू भी साथ था और रामलखन भी। खूब आनन्द आया था—उस दिन। कल चलना मेरे साथ। हमलोग पचासों लड़के हैं। दोपहर को जब छुट्टी मिलती है तब 'अंटा' खेलते हैं और पेड़ पर चढ कर जामुन खाते हैं। खूब जामुन के पेड हैं। पके-पके जामुन जमीन मे बिखरे रहते हैं।"

मैंने कहा—"मेरे बाबू जी भी स्कूल मे मेरा नाम लिखवाना चाहते हैं। मैं भी पढूँगा।"

"ऊँह"—तिरस्कार-व्यंजक स्वर मे दिनेश बोला—"तुम्हारे बाबू जी के पास रुपये कहाँ हैं। नाम लिखवाने के लिये एक रुपया मास्टर साहब को इनाम देना पड़ता है और मैले कपडे पहन कर कोई लड़का स्कूल मे जाता है तो मास्टर साहब उसे छड़ी से पीटते हैं। बडी लम्बी छडी है। मास्टर साहब भूत की तरह डरावने हैं। बात-बात मे उनकी छडी चल जाती है। घर पर चलो तो दिखलाऊँ कैसा बढिया स्लेट खरीदी है। मैं कल शहर गया था।"

मैं शहर का नाम सुन कर प्रभावित हो गया। मैंने सुन रक्खा था कि शहर मे जो जाता है उसे दारोगा साहब पकड़ कर थाने मे बन्द कर देते हैं और फिर नाक-कान काट कर

छोड देते है। मैंने अविश्वास भरे स्वर मे पूछा—"शहर गये थे! झूठ बोलते हो। शहर में लडके नहीं घुसने पाते।"

क्यों—दिनेश बोला—"मैं तो शहर मे मामा के साथ खूब घूमता था। सैकड़ो हवागाडी, सैकड़ों घोडागाडी और बडे बडे ऊँचे मकान—पहाड जैसे। बापरे बडा डर लगता था। इतनी भीडभाड कि तुम तो तुरन्त भूल जाओ।"

अपनी बुद्धि पर आक्षेप होते देख कर मैं तिलमिला उठा। मैंने कहा—"तुम क्या कहते हो दिनेश! मैं कभी भी भूल नहीं सकता—मैंने क्या शहर देखा ही नहीं है। गोपाल भैया की बारात मे गया था तो ऊँचा-सा मकान, लोहे का बड़ा-सा फाटक लगा हुआ—धकधक धूआँ ....।"

दिनेश बुद्धिमानों की तरह हँस कर बोला—"अरे पागल, वह रेलगाडी थी! देखो, तुम्हें रेलगाड़ी का चित्र दिखलाता हूँ—ठहरो।"

मैं विस्मय-विमुग्ध दृष्टि से दिनेश की ओर ताकने लगा और सोचने लगा कि फकत बीस-पच्चीस दिनों मे ही वह कितना ऊँचा उठ गया कि मैं उतना ही ऊँचा हूँ जहाँ पर दिनेश खडा है। अपनी दृष्टि मे ही मैं नगण्य प्रमाणित होने लगा और दिनेश के सौभाग्य पर जलता हुआ चुपचाप खडा ताकता रहा। दिनेश जेब से एक पुस्तक निकाल कर मुझे दिखलाने लगा—देखो, यह बिल्ली है। भात खा रही है। यह बन्दर है—तुमने बन्दर देखा है न? ठीक वैसा ही जैसा मदारी उस दिन लेकर आया था। हाँ, यह देखो यह रेलगाड़ी है—धकधक धुआँ निकलता है। तुम जानते हो—जब रेलगाडी चलती है तो "जय-जय काली" की आवाज साफ़ सुन पड़ती है। मेरी बड़ी दादी कहती है कि कालीमाई की महिमा से गाड़ी चलती है। मैं अगले साल दादी के साथ 'जगन्नाथ जी' जाऊँगा।

चोट पर चोट ! कितना बर्दाश्त करूँ। मैंने भी कहा—मेरे चाचा जी भी अगले साल जगन्नाथ जी जायेंगे। मैं तो जरूर चलूंगा—क्यों भया, रेलगाडी पर पुलिस तो नहीं रहती ?

दिनेश ने चिउड़ा फाँकते-फाँकते कहा– "क्यों ? पुलिस तो शहर मे रहती है, उसे रेलगाडी से क्या मतलब ? रेलगाड़ी पर साहब रहते हैं—टोप लगाये।"

मै अपनी झेंप छिपाता हुआ बोला—नहीं– योंही पूछता था। साहब ? साहब तो सुना है बड़े ही डरावने होते है। आदमी की सूरत देखते ही या तो पीटने लगते है या पकड़ कर जेल मे बद कर देते है। साहब बन्दूक रखते हैं और जिस पर जरा भी नाराज होते है, झट से मार देते है। मेरे चाचा कहते थे ..।"

दिनेश बोला—"मैं साहब से नहीं डरता। मुझे किसी से भी डर नहीं लगता। मै अपने कलुआ कुत्ता को जरा-सा सह दे दू तो पचास साहबों को देखते-देखते काट ले। तुम्हें मालूम है—कलुआ का काटा हुआ आदमी बरसात आते-आते कुत्ते की तरह भौंक-भौंक कर मर जाता है। उसने एक गधे को काट लिया था—मामा एक दिन कह रहे थे कि मरते समय गधा एक दम कुत्ते की तरह भौंकने लगा।"

सध्या हो गयी— एक बार घोरे-घोरे घटाये फिर आई। घटाओ की श्यामल छाया नदी पर पड रही थी। नदी के उस पार की वनश्रेणी आँखों से ओझल होने लगी। हम तट पर से भागे। यह तै रहा कि कल दिनेश के साथ मैं भी स्कूल जाऊँगा और लौटते-लौटते यदि वर्षा नहीं हुई तो थोडी-सी ताड़ी पी लूँगा, क्योंकि रास्ते मे खजूर के कई छोटे-बड़े बाग थे और छोटे-छोटे खजूर के वृक्ष पर मटके लटके होते थे, जिनमे मीठी और फेनिल ताडी भरी होती थी।

दिनेश के साथ ताडी पीते-पीते एक प्रकार से मै ताडी का

अभ्यासी हो गया था। वीडी और ताडी—बस, जब पैसे होते तो बैठ कर दो-चार दॉव भी लगा लेता था। धीरे-धीरे मेरी लतें बढीं और घर मे काफी पैसे नहीं मिलने लगे। छोटी-मोटी चोरियाँ से मैंने आवारागर्द जीवन का यद्यपि आरम्भ किया था पर आवश्यकताओ की जब वृद्धि हुई तो फिर पैसे के लिये भी लाले पडने लगे। यदा-कदा दो-चार पैसे मिल जाते तो उससे काम नहीं चलता। दो-चार मित्र और भी हमारे दल मे थे जो अपने घर के निरा दरिद्र थे। चमार या इस तरह की किसी गरीब जाति के लड़के थे, जो हमारी मण्डली के सदस्य थे। दिनेश सब मे धनी था, पर उसकी जेब मे भी उतने पैसे नहीं होते थे, जिससे नित्य वीडी, ताडी और दो-चार दॉव-छक्के के चल सकें। स्कूल जाते समय फकत दो पैसे वह नाश्ता के लिये नित्य पाता था। इतने से हमारा काम चलना कठिन था। दिनेश अपने घर से तिकड़म भिड़ा कर कुछ ले आता—मैं भी अवसर मिलने से आलस्य नहीं करता था। पकड़े जाने पर हम दोनों की मरम्मत भी वीच-वीच में हो जाती थी। पिटते-पिटते हम कुछ ऐसे अभ्यासी हो गये कि दो-चार तमाचे खा जाना एक साधारण-सी घटना हो गयी, जिसे कोई भी महत्व नहीं देता।

---

(५)

देहाती पाठशाला में पहुँच कर मैंने देखा कि यह एक नयी दुनिया है। मास्टरशाही का शासन असह्य था। वात-वात मे मार-पीट और जुल्म। हम पचास लड़के थे जो सभी किसान और मजदूर श्रेणी के थे। कोई-कोई सम्पन्न घर का भी था,

जैसे 'दिनेश' हम मास्टर साहब के घर के सभी काम करते थे। चौका देना, डेरा साफ करना, जूठन साफ करना, पैर दबाना, तेल लगाना और कूएँ से पानी भर कर स्नान करने के बाद धोती छाँट देना। स्कूल के साथ एक छोटा-सा बाग था, जिसकी सिंचाई आदि का काम भी हमे ही करना पडता था। जब कोई आफिसर स्कूल देखने आता तो दो तीन दिन पहिले से हमारे सिर पर सनीचर की दृष्टि पड जाती—काम का अन्त नहीं लगता। स्कूल साफ करना, बाग की क्यारियों पर चूना छिड़कना, फाटक पर "स्वागतम्" लिख कर लटकाना और झडियाँ बनाना। जब आफिसर आता तो हम पालतू पशुओं की तरह कतार बाँधकर उसका स्वागत करते तथा उस दिन घर से अच्छे और साफ कपड़े पहन कर आते। गरीबों के बच्चों के लिये यह काम कठिन होता—बेचारे मजदूर अपने पढनेवाले बच्चों के लिये अच्छी सी पोशाक कहाँ से जुटाते, जब कि घर मे दीया जलाने के लिये फटा हुआ चीथडा भी मोहाल होता।

एक बार ऐसा ही सङ्कट मेरे पिता जी पर पडा। कोई स्कूल-इन्सपेक्टर आनेवाला था। स्कूल का वातावरण उत्तेजना-पूर्ण हो गया था। पुताई और सफाई धूमधाम से जारी थी। मास्टर साहब अपने बाल कटवा रहे थे और दिन मे दो-दो बार दाढ़ी पर उस्तरा फेरवा रहे थे। साफ कपडे पहन कर आने का नियम तो पुराना था, पर इस नये स्कूल-इन्सपेक्टर को हाफपैण्ट और खाकी कमीज, पैरों मे जूते तथा सिर पर पीला साफा बहुत रुचता था। लडकों के लिये भी यही आर्डिनेन्स जारी किया गया—गाँव मे तहलका मच गया। यह एक अनभ्र वज्रपात था। मेरे पिता जी अत्यन्त चिन्तित हो उठे। बहुत परेशानी के बाद वे इन सामानों

को जुटा सके, पर मैंने देखा कि मेरी अम्मा के गले मे चाँदी का जो चन्द्रहार था, हाथो मे कड़े थे वे अचानक गायब हो गये। मेरे दिल मे अचानक वडी ठेस लगी—वाल्यसुलभ चपलता के कारण मेरा यह आघात स्थायी नहीं रह सका, पर न जाने क्यों जब मैं अपनी नयी पोशाक को पहनने लगा तो मेरी आँखों से आँसू की दो बूँदें टपक पड़ीं। दिनेश को मैंने जब यह हाल सुनाया तो उसका चेहरा सहसा गम्भीर हो गया, उसने कहा—"भाई, क्या करोगे। जब हम पढ लिखकर दारोगा होंगे तो इस स्कूल इन्सपेक्टर को काला पानी भेज देंगे। अभी धैर्य्य रक्खो। दो साल की और देरी है।"

इन्सपेक्टर आया और कुछ ऊटपटाग प्रश्न पूछ कर मास्टर तथा विद्यार्थियों पर अपना रोब गाँठकर चलता बना। इन्सपेक्टर के जाने के वाद मास्टर साहब की जान में जान आयी, चेहरा फिर पुरानी शरारतों से भर गया। फिर मार-पीट, अत्याचार उपद्रव की आँधी वहने लगी। मैं भी स्कूली जीवन का अभ्यासी हो गया। समवयस्क लडकों से मार-पीट करना और लुक-छिप कर ताडी, बीड़ी आदि पीना जारी रहा। हमारे मास्टर साहब भी दोपहर को कभी-कभी ताड़ी पी लिया करते थे तथा मौज मे आकर गीत गाया करते थे।

स्कूल के लडकों मे प्राय जुआ भी होता था। छुट्टी के समय हम प्राय घने वागों मे छिप कर कौडियों से जुआ खेला करते थे। घर से चुराकर पैसे लाना भी जारी था। एक दूसरे के पैसे या टोपी, स्लेट, किताबें चुरा लेने का दिलचस्प खेल भी खूब खेला जाता था। जब कभी हम पकडे जाते—सो भी यदि रँगे हाथों ही—तो काफी मार पडती या दो चार दिन के लिए स्कूल से खदेड दिये जाते। जब हम स्कूल से—अस्थायी रूप

से—खदेड़ दिये जाते तो घर मे इस कांड की सूचना नहीं देते और ठीक समय पर स्कूल के लिये घर से चल देते, पर दिन भर बागों मे दौड़ते, जुआ खेलते, बीड़ी या ताड़ी पीते। बीच बीच मे—आपस मे—मार-पीट भी हो जाती थी।

हमारे स्कूल के मास्टर साहब एक नाटे-मोटे कायस्थ थे। जब आप ताड़ी पीते तो अधिकतर उर्दू फारसी बोला करते थे—काले और पुराने कोट पर काली टोपी लगा कर आप प्राय. स्कूल मे आते थे और आते ही हमे खड़े होकर अभिवादन करने की आज्ञा देते थे। इसके बाद—

"जुग-जुग जीये शाह हमारे"

गाकर पढ़ाई का आरम्भ किया जाता था। यद्यपि मुझे पीछे ज्ञात हुआ कि इस तरह के किसी भी मङ्गलाचरण के लिये अधिकारियो की कोई खास हिदायत नहीं थी, पर मास्टर साहब ने अपनी ओर से स्कूल के नियमो मे इतना बढा दिया था।

प्रत्येक शनिवार को हमे एक एक पैसा देना पड़ता था जो गुरूजी की अनलस्पर्शी जेब मे समा जाता था। पाठ याद करके न आनेवाला विद्यार्थी यदि खूब मन लगाकर गुरू जी की धोती धो देता था, तम्बाकू भर कर उन्हे पिला देता या चरण सेवा कर देता तो वह क्षमादान का अधिकारी समझा जाता। ठीक इसके विपरीत जो विद्यार्थी खूब मन लगा कर पढ़ता, पर गुरु जी की सेवा करने से जी चुराता तो उसकी पीठ पर खजूर की छड़ी अपना बारबार स्मृतिचिन्ह छोड़े बिना कभी भी दम नहीं लेती थी। हाँ, दिनेश पिटने से प्राय. बच जाता था, क्योकि उसके पिता का आतङ्क गुरुजी के क्रोधानल पर शीतल जल का काम करता था। यो तो हमे प्रत्येक सनीचर को स्कूल मे ही जाकर पैसे देने पड़ते थे। पर एक मील चलकर

खुद गुरु जी दिनेश के पिता को सलाम करने प्रत्येक सनीचर को आते थे। मै भी यदा-कदा गुरुजी के साथ दिनेश के घर तक जाता था। गुरूजी जूते तो चौतरे के नीचे ही उतार देते थे और खीस निकाल कर दिनेश की प्रशसा करते हुए सहमे से टाट के एक कोने पर बैठ जाते थे। जगेश्वर वावू—दिनेश का पिता—होते तो वे पूछते—"आइये मास्टर साहव ! बैठिये ! किधर आये।"

मास्टर साहव अत्यन्त अदव से उत्तर देते—"सरकार को सलाम करने आ गया।"

जगेश्वर वावू कृतज्ञतासूचक स्वर में, पर जरा रोव के साथ कहते—"वडा कष्ट किया——हॉ, दिनेश कुछ पढ़ता-लिखता है या वहॉ भी शरारत करता है।"

मास्टर साहव उत्साहित होकर कहते—"जी नहीं, दिनेश वावू इस वर्ष फर्स्ट होंगे सरकार ! ऐसा तेज लड़का तो मेरे स्कूल भर मे दूसरा कोई नहीं है।"

इतना कहकर मास्टर जगेश्वर वावू के चेहरे पर प्रसन्नता के चिन्ह खोजते।

मैं जानता हूँ कि मास्टर साहव सरासर झूठी वातें कह रहे हैं, क्योंकि परसों सोते समय दिनेश ने आपकी चुटिया काट ली, पर महादेव जो एक किसान का लडका है इस अपराध का भयानक अपराधी क़रार दिया जाकर खूव पीटा गया। पीछे मास्टर साहव को सच्ची वातों का पता भी लगा तो उन्होंने दिनेश को कुछ भी नहीं कहा और अन्त तक महादेव के मत्थे सारा दोष मढते रहे।

राम राम करके किसी तरह मेरा स्कूल का जीवन समाप्त हो गया ! तुलसीदास की रामायण मैं विना टटोले पढ़ने लगा। पिता जी ने मेरे पाण्डित्य का वह ढिंढोर पीटा कि सध्या समय

गाँव के बहुत से समझदार व्यक्ति एकत्रित होकर मुझसे रामायण की कथा सुनते। कभी-कभी मैं मन्दिर पर भी जाता। मन्दिर के पुजारी बाबा पूरे 'कालिदास' थे। दिन मे तीन बार स्नान करना, घण्टों बैठकर ध्यान लगाना तथा नाना प्रकार के कवित्त, दोहे, चौपाई, भजन आदि गा-गाकर महादेव बाबा की पूजा करना - बस पुजारी जी इतना ही जानते थे। रामायण की मजलिस जब मन्दिर के स्वच्छ सभामण्डप मे बैठती तो पुजारी जी भी अपनी बड़ी सी तोंद लिये आ बैठते। फिर दो चार श्रद्धालु श्रोताओं के बीच में मेरे पिता जी भी अपने पुत्र की ज्ञानगरिमा पर इतराते हुए बैठ जाते। जब मैं रामायण पढ़ता तो वे श्रोताओ की ओर इस प्रकार अपनी व्याकुल आँखों से देखते थे मानो मेरे विषय मे कुछ प्रशसासूचक या आश्चर्यसूचक भाव उनके चेहरो पर खोज रहे हो। पुजारी आखें बन्द किये माला खटखटा कर रामायण सुना करते और बीच मे अपनी आदत के अनुसार उच्चस्वर मे "बम-बम हर-हर" बोल उठते।

धीरे धीरे पुजारी जी के यहाँ मेरा आना जाना शुरू हो गया। मैं कभी कभी दोपहर को भी जाता और पुजारी जी का आदर प्राप्त करके लौटता। अम्मा बराबर मेरे पिता जी से कहती—"मुनुआ तो पढ लिख गया। अब इसे दारोगा की नौकरी दिलवा दो, तुम घर पर बैठ कर मक्खियाँ मारा करते हो—कुछ करते धरते नहीं।"

पिता जी अत्यन्त इतमिनान से अम्मा को समझा देते कि—"बिना अंग्रेजी पढे सरकारी नौकरी नहीं मिलती। दारोगा बनने के लिये इन्ट्रेन्स-पास करना होगा। सोच रहा हूँ कि अगले साल इसे शहर के बडे स्कूल मे भरती करवा दूँ। सुना है कि नगेश्वर बाबू अपने लडके को शहर के स्कूल मे भरती

करनेवाले हैं। मुझसे कह रहे थे कि मुनुओं को भी दिनेश के साथ ही छोड़ दो—दोनों पढ़ लिख लेंगे।"

मेरी अम्मा भगवान् का स्मरण करके जगेश्वर बाबू के अभ्युदय के लिए लाख-लाख प्रार्थना करतीं।

मैं इस संवाद को सुनकर फूला नहीं समाता। दिनेश से तो प्रायः नित्य ही मुलाकात होती। अब मैं उसके घर पर भी जाता और उसका अभागा मामू मुझे देखकर पहिले की तरह दाँत नहीं पीसता। जगेश्वर बाबू सम्भवत. यह सोच रहे थे कि दिनेश के साथ यदि मैं शहर के उनके मकान पर चला गया तो दिनेश की सेवा के लिये एक खिद्मतगार रखने के झंझट से वे बच जायँगे। स्कूल फीस और भोजन, वस्त्र प्राप्त करके ही मैं दिनेश की खिदमतगारी करता। उनकी इस अकारण कृपा का यही रहस्य था जिसे मेरी अम्मा उनकी महानता, उनका दयादाक्षिण्य समझकर पुलकित थीं।

हाँ, तो पुजारी जी का स्नेह भी मुझे काफी मात्रा मे प्राप्त होता था, क्योंकि मैं उनका काम भी कर दिया करता था! चौका देना और पानी भर कर रख देना मेरे लिये आसान काम था। उनकी कोठरी मे मैं बेखटके घुस जाता था। कुछ दिनों तक यही सिलसिला चला। मैंने धीरे-धीरे देख लिया कि काठ के जिस बक्स के ऊपर चावल की नन्हीं सी बोरी रक्खी रहती है, उसी मे पुजारी जी रुपये रखते हैं। इसी सिलसिले मे दिनेश ने मुझसे कहा कि शहर में एक तमाशा आया है जिसमें एक आदमी ऐसा है जो शेर की पीठ पर खड़ा होकर खँजड़ी बजाता है और हाथी चरखा काटता है तथा भेड़िया मेमने के साथ बैठकर खिचड़ी खाता है। दिनेश ने एक छपा हुआ विज्ञापन भी दिखलाया।

गाँव के बहुत से समझदार व्यक्ति एकत्रित होकर मुझसे रामायण की कथा सुनते। कभी-कभी मैं मन्दिर पर भी जाता। मन्दिर के पुजारी बाबा पूरे 'कालिदास' थे। दिन मे तीन बार स्नान करना, घण्टों बैठकर ध्यान लगाना तथा नाना प्रकार के कवित्त, दोहे, चौपाई, भजन आदि गा-गाकर महादेव बाबा की पूजा करना - बस पुजारी जी इतना ही जानते थे। रामायण की मजलिस जब मन्दिर के स्वच्छ सभामण्डप मे बैठती तो पुजारी जी भी अपनी बड़ी सी तोंद लिये आ बैठते। फिर दो चार श्रद्धालु श्रोताओं के बीच में मेरे पिता जी भी अपने पुत्र की ज्ञानगरिमा पर इतराते हुए बैठ जाते। जब मैं रामायण पढ़ता तो वे श्रोताओं की ओर इस प्रकार अपनी व्याकुल आँखों से देखते थे मानो मेरे विषय मे कुछ प्रशसासूचक या आश्चर्यसूचक भाव उनके चेहरों पर खोज रहे हों। पुजारी आखें बन्द किये माला खटखटा कर रामायण सुना करते और बीच मे अपनी आदत के अनुसार उच्चस्वर मे "बम्-बम हर-हर" बोल उठते।

धीरे धीरे पुजारी जी के यहाँ मेरा आना जाना शुरू हो गया। मैं कभी कभी दोपहर को भी जाता और पुजारी जी का आदर प्राप्त करके लौटता। अम्मा बराबर मेरे पिता जी से कहती—"मुनुआ तो पढ लिख गया। अब इसे दारोगा की नौकरी दिलवा दो, तुम घर पर बैठ कर मक्खियाँ मारा करते हो—कुछ करते धरते नहीं।"

पिता जी अत्यन्त इतमिनान से अम्मा को समझा देते कि—"बिना अंग्रेजी पढ़े सरकारी नौकरी नहीं मिलती। दारोगा बनने के लिये इन्ट्रेन्स-पास करना होगा। सोच रहा हूँ कि अगले साल इसे शहर के बडे स्कूल मे भरती करवा दूँ। सुना जगेश्वर बाबू अपने लडके को शहर के स्कूल मे भरती

करनेवाले हैं। मुझसे कह रहे थे कि मुनुआँ को भी दिनेश के साथ ही छोड़ दो—दोनों पढ़ लिख लेंगे।"

मेरी अम्मा भगवान् का स्मरण करके जगेश्वर बाबू के अभ्युदय के लिए लाख-लाख प्रार्थना करतीं।

मैं इस संवाद को सुनकर फूला नहीं समाता। दिनेश से तो प्राय. नित्य ही मुलाकात होती। अब मैं उसके घर पर भी जाता और उसका अभागा मामू मुझे देखकर पहिले की तरह दाँत नहीं पीसता। जगेश्वर बाबू सम्भवतः यह सोच रहे थे कि दिनेश के साथ यदि मैं शहर के उनके मकान पर चला गया तो दिनेश की सेवा के लिये एक खिदमतगार रखने के झंझट से वे बच जायँगे। स्कूल फीस और भोजन, वस्त्र प्राप्त करके ही मैं दिनेश की खिदमतगारी करता। उनकी इस अकारण कृपा का यही रहस्य था जिसे मेरी अम्मा उनकी महानता, उनका दयादाक्षिण्य समझकर पुलकित थीं।

हाँ, तो पुजारी जी का स्नेह भी मुझे काफी मात्रा मे प्राप्त होता था, क्योंकि मैं उनका काम भी कर दिया करता था! चौका देना और पानी भर कर रख देना मेरे लिये आसान काम था। उनकी कोठरी मे मैं बेखटके घुस जाता था। कुछ दिनों तक यही सिलसिला चला। मैंने धीरे-धीरे देख लिया कि काठ के जिस बक्स के ऊपर चावल की नन्हीं सी बोरी रक्खी रहती है, उसी मे पुजारी जी रुपये रखते हैं। इसी सिलसिले मे दिनेश ने मुझसे कहा कि शहर मे एक तमाशा आया है जिसमें एक आदमी ऐसा है जो शेर की पीठ पर खड़ा होकर खँजड़ी बजाता है और हाथी चरखा काटता है तथा भेड़िया मेमने के साथ बैठकर खिचड़ी खाता है। दिनेश ने एक छपा हुआ विज्ञापन भी दिखलाया।

मैं एक दो वार दिनेश के साथ शहर की सैर कर चुका था—एक वार सिनेमा भी देख चुका था तथा दशहरे का तमाशा देखकर ललच चुका था। हमारे गाँव से शहर पूरे १० कोस की दूरी पर था और आश्चर्य की वात यह थी कि छः कोस चलने पर और घन्टो प्रतीक्षा करने पर मोटर मिलती थी। मेरा मन शहर जाकर उपरोक्त तमाशा देखने के लिये वल्लियों उछल रहा था, पर जव टेंट की ओर नजर गयी तो उसे हाहाकार करते पाया।

दिनेश से जव मैंने लाचारी का हाल कहा तो वह भी चिन्ताकुल हो उठा। उसने कहा कि, "भाई मैंने तो कुछ रुपयों का प्रवन्ध कर लिया है, पर उतने काफी नहीं है। कम से कम प्रत्येक व्यक्ति के लिये ५)-५) तो चाहिये। मैं तुम्हें २) दे सकता हूँ क्योंकि मेरे पास ७) है पर ३) की व्यवस्था तुम खुद करो। मैंने अघाकर साँस ली। खैर कुछ भार तो हल्का हुआ। पर ३) मैं कहाँ से पाऊँ। पहिले तो सोचा कि जूते, कपड़े और किताबों को वेंच डालूँ पर इन्हें खरीदेगा कौन। वहुत उधेड़-बुन के वाद एक वार अम्मा से अपने मन की वात कहने का निश्चय किया।

रात का समय था। जाडा पड़ रहा था। सम्भवत पूस होगा। अम्मा का शरीर अस्वस्थ था और मेरी वहन के भी शरीर का भी वही हाल था। वह पेट की शिकायत से प्राय पीड़ित रहती थी। दवा के नाम पर उसे एक चुल्लू जल भी नहीं मिलता था। फूल-सी कोमल वच्ची पीली हो गयी थी। पिता जी का हाल भी दयनीय ही था। मैं अम्मा की वीमारी पर झुँझला उठा। कम्वख्त को इसी समय आना था। मैं कुछ देर तक वहन को दुलारता, चुमकारता रहा और इधर-उधर की वातें वनाकर अपने भीतर अपनी वात कहने के योग्य

साहस को एकत्रित करता रहा, पर कंठ तक आयी हुई बात मुँह से नहीं निकली। कुछ देर तक इधर-उधर करके मैं पयाल पर सो गया और लेटे-लेटे यह निश्चय किया कि सवेरे उठते ही अम्मा से तमाशे की चर्चा चलाऊँगा और ३) मागूँगा।

नित्य की तरह मेरे आँगन में प्रभात की सुनहली धूप उतरी, नित्य की तरह कौवे काँव-काँव करते हुए छप्पर पर फड़कने लगे और नित्य की ही तरह गाय दुही जाने लगी और गाँव के मन्दिर पर भक्तजनों की आवा-जाई शुरू हो गई। दो-चार अँगड़ाइयाँ लेकर मैं भी अपने पयाल के खुरखुरे बिस्तरे से उठा। अम्मा को मैंने चूल्हें मे आग जला कर दूध गरमाते देखा और बहन को बैठकर खेलते। इस दृश्य ने मुझे विशेष उत्साहित किया। धीरे-धीरे मैं अम्मा के पास खड़ा हुआ और सोचने लगा कि किस तरह अपनी बात कहूँ, पर फिर साहस ने साथ नहीं दिया। अन्त में द्वन्द्व से थककर मैं अपने आप पर झुँझला उठा।

देखते-देखते दिन चढ़ गया। साहस करके मैं कई बार किसी न किसी बहाने से अम्मा के निकट गया, पर मेरे मुँह से तमाशे की बात नहीं निकली सो नहीं निकली।

---

(६)

आखिर तमाशे की बात जहाँ की तहाँ रह गयी। दिनेश भी नहीं जा सका। दिल कचट कर रह गया, पर उपाय ?

एक दिन मैंने देखा कि दो दैत्य जैसे लम्बे—जिनके चेहरे से शरारत और दुष्टता टपकती थी—मनुष्य लम्बी-लम्बी

लाठियाँ लिये मेरे द्वार खड़े हैं। मेरे पिता जी, चाचा जी सभी इनके सत्कार में व्यस्त हैं।

बात यह थी कि हमारे गाँव के जमींदार अपने दौरे पर निकले थे। घूमते-घूमते दुष्टग्रह की तरह ये हमारे गाँव पर पधारे। जमींदार साहब के साथ एक पूरा काफला चलता था। दो दर्जन लट्ठधारी प्यादे और एक दर्जन मित्र, खिदमतगार, रसोइये आदि। स्वास्थ सुधार की शुभ कामना से आप एक मास यहाँ ठहरना चाहते थे। नित्य आध मन दूध का खर्च था। मक्खन, घी, दही सब कुछ चाहिये और वह भी ताजा! मेरे दरवाजे पर दो दुधार गाये थीं—ये जमींदार के दूत इन्हीं गउओं को लेने आये थे।

सुना कि, जमींदार सोचते थे कि नित्य आध मन दूध गाँव मे वसूल करना अन्याय होगा—गरीब प्रजा को कष्ट देकर दूध खाना उन्हें मंजूर न था। दयावान थे। इस तरह नित्य जोर-जुल्म से दूध प्राप्त करने मे वे एक बात और सोचते थे और वह यह कि आवश्यकता से अधिक दूध वसूल कर हमारे कर्मचारी अपना स्वास्थ्य सुधारना आरम्भ कर देंगे। इस तरह वे किसानों को उतना ही चूसना चाहते थे जितना से उनका—अकेला—पेट भर जाता—बस इससे अधिक नहीं। अपनी इसी समय बुद्धि से विगलित चित्त होकर हमारे जमींदार चिन्ता मे डूबने उतराने लगे कि आखिर दूध का सवाल कैसे हल हो। अन्त मे जमींदारी बुद्धि ने काम दिया। सरकारी कैम्प से आज्ञा हुई कि ७८ अच्छी-अच्छी दुधार गायें कैम्प मे लाकर बाधी जावें और जिनकी-जिनकी गायें हो उन्हें यह समझा दिया जाय कि सरकार की सवारी जब जाने लगेगी तो तुम्हें तुम्हारी गायें मिल जायँगी। हाँ, इतने दिनों तक तुम्हारी गऊ के लिये खरी-भूसी की व्यवस्था सरकार की

होगी—यह दूसरी बात है कि गॉव से ही खरी-भूसी वसूला जाय।

इस हुक्म के अनुसार जमीदार के प्यादे गाँव में घुस पडे। सर्वत्र आतङ्क छा गया। कोई-कोई तो अपनी प्यारी गऊ के गले मे लिपट कर रो उठा। मैंने स्वयम् अपने पिता जी को बच्चों की तरह रोते देखा —जब मेरी दोनों गायें सरकार के कैम्प में जाने के लिये खोली जा रही थीं। मेरे चाचा भी आँखों मे आँसू भरे खड़े रहे। पिता जी ने हाथ जोड़ कर प्यादे से कहा—"मालिक! मेरी लड़की बीमार है, मुनुआ की अम्मा भी बहुत बीमार रहती है, पैरों पड़ता हूँ माई-बाप, एक गऊ छोड दो—दो-दो बीमार मर जायँगे।"

पिता जी की करुणा-जनक आकृति ने मेरे हृदय को जैसे निचोड दिया—मैंने इन्हें इतना गिडगिड़ाते कभी भी नहीं देखा था। चाचा जी जरा कड़े प्रकृति के थे—वे गम्भीर बने चुपचाप खडे रहे। उनके चेहरे से करुणा के स्थान पर रोष टपकता था—चेहरा तमतमा उठा, और नथने फूल आये। पिता जी के विनय पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। उन पालतू नर-पशुओं को किसी की प्रार्थना पर पसीजने की आदत ही नहीं लगने दी गयी थी। वे उद्धत्त थे और बहुत ही शरारत भरे तरीके से बातें करते थे, जैसे पिता जी की विनती सुन कर एक ने कहा—"मनुआ की मॉ के लिये वहीं से दूध मिल जाया करेगा।" दूसरा बोला—"बड़े दूध पीनेवाले बने हो तो दो-चार गायें फिर क्यों नहीं खरीद लेते। सरकार का जो हुक्म है, उसका क्या करें—चलो जल्दी करो।" मैं यह दृश्य आँखें भर कर नहीं देख सका। न जाने क्यों मेरे हृदय में मन्थन-सा आरम्भ हो गया। क्रोध-क्षोभ और श्वास की अपनी लाचारी के कारण मन की जो गति हुई वह वर्णनातीत

ही समझिये। मेरी अम्मा सचमुच बीमार थीं, मेरी बहन भी बीमार थी। दोनों दूध पर ही जीवन धारण करते थे। मुझे भी दूध मिल जाता था। दोनों गायें १६ सेर दूध देती थीं। बाकी बचे हुए दूध का घी निकाला जाता था और पिता जी या चाचा जी शहर में ले जाकर महीना दो महीना पर बेंच दिया करते थे।

गोविन्द की भी तीनो गायें कैम्प मे चली गयी। गोविन्द एक ग्वाला था और दूध, दही, घी बेंच कर अपने परिवार का पालन करता था। जिस समय उसके द्वार पर से गायें खोली जाने लगीं, गोविन्द, उसकी स्त्री और चारों बच्चे इस तरह छाती कूट कर रोने लगे मानो उसके परिवार का कोई सर्वाधिक प्रिय प्राणी मर गया हो और उसकी लाश उठाई जा रही हो। गोविन्द रोता हुआ मेरे दरवाजे पर आया और पूछने लगा कि—अब क्या होगा भैया! क्या मेरी तीन तीन दुधार गायें सदा के लिये चली गयीं—"हाय मैंने एक बीघा खेत बेंच कर इन्हें खरीदा था।"

इतना कहकर वृद्ध गोविन्द दोनों हाथों से सिर पकड़ कर बैठ गया—वह पागल कुत्ते की तरह हाँफ रहा था। उसके चेहरे से दिल की परेशानी साफ जाहिर होती थी—गोविन्द के साथ उसकी वृद्ध जीवन-सहचरी भी थी, जो फूट-फूट कर रो रही थी। मेरे पिता जी का गला खुद भरा हुआ था। उन्होंने फिर भी धीरज बंधाने की गरज से कहा—"चिन्ता नहीं गोविन्द! मेरी भी दोनों गायें चली गयीं हैं। बीस वर्ष पर खुद मालिक हमारे गाँव मे पधारे हैं तो सेवा करना हमारा धर्म है भैया! वे बड़े दयालु हैं—हमारी गायें लौट आयेंगी। वे एक .. यहीं ठहरेंगे—यह हमारे सौभाग्य की बात है।"

गोविन्द बलपूर्वक अपने दिल को कड़ा करके बोला—"एक मास! हाय, हाय तब तो मैं बेमौत मरा। एक मास तक मैं क्या खाऊँगा भैया!"

गोविन्द की स्त्री तो सिर पकड़ कर वहीं—गली मे ही बैठ गयी—मानो किसी ने उसका कलेजा निकाल लिया हो। बेचारी की आँखे रोते-रोते सूज आई थीं—चेहरा जर्द पड़ गया था।

मैं यह सब खड़ा-खड़ा देखता रहा। सोच रहा था कि यह कैसा असह्य उपद्रव है। गाँव के मालिक को यह क्या अधिकार है जो वह इस तरह गाँव भर के रोगी और बच्चों के मुँह का कौर छीन कर अपना स्वास्थ्य सुधारें। आखिर उनका स्वास्थ्य सुधरे और दर्जनों अभागों को अपना स्वास्थ्य गॅवाना पड़े तो यह तो कोई न्याय-सगत बात नहीं है। मैं नहीं समझ सका कि अकेले उनका स्वास्थ्य इतना मूल्यवान क्यों माना गया है, जो दर्जनों मनुष्यों के स्वास्थ्य की कुर्बानी उस पर की जा रही है। न जाने क्यों, मैं मन ही मन अपने जमीदार के ऊपर इतना झुँझला उठा कि—असफल क्रोध के—कारण मेरी आँखों से आँसू छलक पड़े। एक दो दिन तक गाँव में 'गोहरण' काण्ड को लेकर दबी-सी सनसनी फैली रही, पर शीघ्र ही लोग अपनी-अपनी नाराजी को भूल गये। सदा से अन्याय का भार वहन करते-करते गाँव का जीवन नितान्त दब्बू बन चुका था। मैं अपनी बात कहता हूँ—जहाँ पर मेरी दोनों गायें नित्य बँधी रहती थीं, उस स्थान का सूनापन मुझे काटे खाता था। जब मैं घर से निकलता तो जानबूझ कर उस ओर नहीं देखता। अम्मा को भी नितान्त उदास देख कर मेरा मन और भी कुचल गया। जिस हाँड़ी मे नित्य दूध गरम होता था, वह छींका पर उदास सी दिखलाई पड़ती थी। सवेरे मेरी बहन ने जब दूध के लिये अधिक जिद की और रोना शुरू किया तो

अम्मा ने उसके मुँह पर एक तमाचा कस कर जमा दिया। बीमार बच्ची अधमरी-सी जमीन पर लेट गयी और आँचल से आँसू पोंछती हुई, अम्मा कोठरी मे चली गयी। यह दृश्य मेरे लिये हृदय-विदारक था। मैंने अपनी बहन को, जिसके कोमल गाल पर मार के निशान उग आये थे, उठा कर बाहर दरवाजे पर ले गया। पिता जी ने जब मुझसे इस काण्ड का कारण पूछा तो मैंने देखा कि उनकी दोनों आँखें भी छलक आयीं। उनकी आँखों मे आँसू के स्थान पर यदि मैं लाली देखता तो मुझे सन्तोष होता। यह बात तो सही है कि हमारे हृदय की आग आँखों से लाचार पानी बन कर निकलती है—स्फुलिङ्ग बन कर नहीं।

पिताजी जी कड़ा करके उठे और थोड़ी देर मे कहीं से माँग कर एक लोटा दूध ले आये। अम्मा ने मुझसे थोड़ा-सा दूध लेने के लिये कहा, पर मेरा मन उस दूध को स्पर्श करने के लिये कतई तैयार न था। मैं उदास मन से मन्दिर की ओर चल पड़ा—मेरी बहन दूध पी कर खेलने लगी।

मन्दिर गाँव के एक छोर पर था—तीन ओर दिगन्त व्यापी मैदान, हरे-भरे खेत, जगल, पहाड़ आदि एक ओर—कुछ दूर पर हमारा लम्बा-चौड़ा गाँव था। खपरैल और फूस के छप्परों के नीचे सैकड़ों नर-तन-धारी जीव चूहे और छछून्दरों की तरह सौदा ले रहे थे और मर रहे थे। मन्दिर से कुछ दूर हट कर आम की एक घनी बारी थी और उसके बाद फूस के झोपड़ों की नन्हीं-सी बस्ती थी। इस बस्ती मे चमार, दुसाध, मेहतर आदि रहते थे। यहाँ सूअरों की बहुलता थी। कच्ची दीवारें पर फूस का एक टूटा-सा छप्पर डाले इन चमारों, मेहतरों का परिवार रहता था। इनका काम था, नाममात्र की मजदूरी पर उच्च वर्णों के खेती पर काम करना। मैं इन्हें पहिले

अछूत समझता था। एक दिन जब मैं इस जाति के किसी लड़के के हाथ से आमी छीन लिया तो चाचा जी ने मुझे तीन-चार तमाचे मारे और मुझे कूएँ तक घसीटते हुए ले गये तथा मुझे भी स्नान कराया और खुद भी स्नान करके अपना यज्ञोपवीत बदल डाला। यह ६।७ वर्ष की पुरानी घटना थी। तब से मैं इनसे घृणा करने लगा था। दिनेश से मैंने अपने इस नये अनुभव की बात कही तो, उसने विज्ञ की तरह सिर हिला दिया। मेरे बार-बार प्रश्न करने पर कहा कि—"रामायण मे लिखा है कि जो डोम, चमार से छू जाने पर स्नान नहीं करता, उसे मरने पर नरक मे रहना पड़ता है।" मैंने कभी भी नरक का नाम नहीं सुना था। मैंने जब नरक की बाबत मे जानने को इच्छा प्रकट का तो वह बोला कि—"नरक मे बड़े-बड़े भूत रहते हैं जो आदमिया क मार-मार कर खा जाते हैं। उन भूतों का राजा है, दारोगा जी। तुमने मेरे दरवाजे पर दारोगा जी को देखा है। बाप रे! कितनी बडी-बडी दाढ़ी थी—याद है न?" दारोगा जा का नाम सुनते ही मैं ऐंडी से चोटी तक कॉप उठा था। पर तब मैंने खुद रामायण पढी तो उसमें कहीं अछूतों की चर्चा नहीं पाई। कुछ भी हो पर डोम, चमारों के प्रतिकूल मेरे हृदय मे घृणा ने घर कर लिया जो एक मुद्दत तक बनी रही।

एक रात को जब मैं ताडी पीकर अछूतों की बस्ती की ओर से हा लौट रहा-था, तो मैंने देखा कि एक छोटे-से घर के द्वार पर एक हगामा-मा मचा हुआ है। एक स्त्री को एक पुरुष लात और थप्पड़ों से पीट रहा है और दो-तीन स्त्रियाँ चिल्ला रही है, साथ ही दो तीन बच्चे भी रो रहे हैं। गालियों की तो गिनती ही मत पूछिये। शायद पुलिसवाले भी इतनी गालियाँ नहीं कठस्थ रखते होगे। मैंने अपने मन में सोचना आरम्भ

किया, मेरे पिता जी भी अम्मा को पीटत हैं और गालियाँ बकते हैं, पर वे तो अछूत नहीं हैं। मैं ताडी के झोंक मे था—कुछ क्षण ठहर कर चला आया। दो-चार सूअर अपने बच्चों के साथ दौड़ रहे थे तथा सारी बस्ती एक प्रकार से अन्धकार में डूबी हुई थी। किसी-किसी घर के दरवाजे से मिट्टी के तेल की डिबिया का क्षीण आलोक दिखलाई पड़ता था और एक-दो जीव भूमि पर पड़े हुए भी दिखलाई पड़ते थे।

फागुन के दिन थे—शुक्ल पक्ष की रात। हवा के झोंकों में गजब की मस्ती थी। इधर-उधर से जगली फूलों की महक आ रही थी। मन्दिर पर गाँव भर के लोग इकट्ठे हो कर 'फाग' गा रहे थे। ढोल और झांझ की आवाज साफ सुनाई पडती थी। मैं विषादमय अछूतों की बस्ती से जल्दी-जल्दी बाहर निकल कर गाँव की ओर न जाकर दिनेश के घर की ओर चला। स्वच्छ चाँदनी में कुछ देर इधर-उधर टहल कर चुपके से अपने घर में घुसा। पिता जी और चाचा जी मन्दिर पर से नहीं लौटे थे। मैं धीरे से जाकर सो गया।

हाँ, तो मैं भूल गया, मैं मन्दिर पर पहुँचा और चुपचाप उसके ऊँचे चौतरे पर जाकर बैठ गया। सामने खेत और उसके बाद नदी। नदी के बाद जङ्गल की एक हरी-सी रेखा, उसके बाद मनोरम पहाड़ियों की नीली-नीली कतारें। उसके बाद अनन्त नीला आकाश! मेरा मन शीतल हवा के दो-चार मृदुल झकोरों से ताजा हो गया। सन्ध्या धीरे-धीरे खिसकती हुई दिन के निकट आ रही थी—वातावरण शान्त और उदास हो रहा था। दो-चार देहाती हाथ मे लोटा लिए मन्दिर के कूएँ पर आये। इतमिनान से बैठ कर कुल्ले किये हाथ, पैर, मुँह धोये और कुछ पानी लेकर चलते बने। पुजारी बाबा उच्च स्वर से रामध्वनि करते हुए भङ्ग घोट रहे थे। मेरी

सूरत देखते ही आपने कहा—"बेटा, जरा झाड़ू लगा देना। महादेव बाबा की सेवा करो बच्चा! इनके आशीर्वाद से चैन की जिन्दगी बसर करोगे। रामायण में पढ़ा है न—"

"अदढर ढ़रन ढरैं पुनि थोरे।
सठ सुधरे सतसगत पाई ॥"

यद्यपि मैं अत्यन्त उदास था, पर पुजारी जी की इस कविताई से बरबस हँसी छूट गयी। मैंने झाड़ू उठाकर बुहारना आरम्भ किया तो पुजारी जी ने फिर आवाज लगाई—"बेटा, पूजा के बर्तन भी माँज देना।" मेरा मन कुढ़ गया—आपकी तनाशाही पर। पर मैंने मन बहलाने के लिये इन कार्यों को अच्छा समझा। जैसे-तैसे बर्तन भी माँज कर निश्चिन्त हुआ तो आपने चिलम पर आग रखते हुए कहा—"तुम बड़े सज्जन हो बचऊ! तुम्हारा बाप भी भला आदमी है। अच्छा बेटा, दो बाल्टी पानी भी भर कर रख दो—बस, इतना ही काम है और उस ओर किरासन के तेल का बोतल पड़ा है। जरा-सा लालटेन का शीशा साफ करते तेल डाल कर तब जाना। मैं जरा नित्यकर्म से छुट्टी पालूँ। हाँ-हाँ उसी तरफ—उस कोने में जो टीन का बड़ा-सा टुकड़ा पड़ा है। वहीं, वहीं—देख लिया न।"

जी में तो आया कि इस बूढ़े नालायक की घुटी हुई चाँद पर लालटेन उठा कर पटक दूँ, पर खून की घूट पीकर रह गया। मैंने मन ही मन कहा—"अच्छा चाचा जी, नित्य कर्म से छुट्टी पालो।" दो-चार कवित्त, दोहे पढ़ कर उसने भङ्ग को गले के नीचे उतारा और फिर दो कश तम्बाकू के लगा कर और लोटा लेकर मन्दिर के कूएँ पर चला गया। जब देख लिया कि बुड्ढा बहुत दूर चला गया और पेड़ों के झुरमुट के उस पार हो गया

तो मैं सब से पहिले उसकी कोठरी में इधर-उधर देखकर घुसा, जिसे वह भूल से खुला छोड़ गया था। मैं धड़कते हुए हृदय से उसके काठ के सन्दूक के पास पहुँचा और वोरी उतार कर बक्स का ढक्कन खोल दिया। रह-रह कर बाहर भी निकल पड़ता था। मैंने देखा कि कपड़े की छोटी-सी पोटली मे रुपये बँधे हैं। मेरी बाछें खिल गयीं—मैं पोटली उठाकर अपने कपड़ों में छिपा लेने के बाद, बाहर निकल गया। मेरा सारा शरीर पसीने से तर हो गया था। मैं ऐसा हाँफ रहा था, मानो हजार डड-बैठकें लगा कर उठा होऊँ। हृदय इस कदर धड़क रहा था कि मैं घबरा उठा। कुछ देर मे मन स्वस्थ करके मैं पुजारी जी के बतलाये हुए कामों को पूरा करने लगा। मेरे हाथ कॉप रहे थे—लालटेन का शीशा फूटते-फूटते बचा तथा बहुत सा तेल लालटेन के बाहर छलक पड़ा।

जल्दी जल्दी अपने हाथ का काम समाप्त करके मैं जाने ही वाला था कि घबराया हुआ-सा पुजारी आया। उसने आते ही अपनी कोठरी की ओर नजर दौड़ाई। उसे खुली देख कर कुछ घबरा-सा गया। हाथ मे लोटा लिये वह खड़ा रहा और मैं अपने मुंह की घबराहट छिपाने की चेष्टा प्राणपण से करने लगा।

मन स्वस्थ करके पुजारी जी ने पूछा—"क्यों बेटा, तुम यहीं थे न ?" प्रश्न सुनकर मेरा सारा शरीर कॉप उठा। मैंने उत्तर दिया—"नहीं बाबा, मैं भी मैदान चला गया था। क्यों—क्या बात है ?" "कुछ नहीं बच्चा, कोई आया तो नहीं ? मैंने सारा रहस्य समझ लिया।

मैं खूब सँभल कर बोला—"एक आदमी आया था बाबा। मैंने जब उससे पूछा तो वह बोला कि मैं भङ्गघोटने का सिल-लोढ़ा खोजने आया हूँ—पुजारी जी कहाँ हैं।" उसी समय मैं

मैदान से आया था। मैंने जब पूछा कि—'तुम कौन हो', तो वह बोला कि मैं "सरकार के साथ आया हूँ—मालिक का प्यारा हूँ।" मैं डर गया। फिर मैं कुएँ पर लोटा माँजता रहा और वह न जाने क्या-क्या ढूँढ़ कर चलता बना। मैंने उसे टोका नहीं।

पुजारी बाबा के चेहरे का रङ्ग रह रह कर बदलने लगा और मैं सिर झुका कर चलता बना। पीछे सुना कि पुजारी जी के ५०) लुट गये। गाँव भर के बड़े-बूढ़े जमा हुए। बड़ा हो-हल्ला मचा और मेरी गवाही ली गयी। मैंने अपने बयान को दुहरा दिया पर किसी की भी इतनी हिम्मत नहीं हुई जो जमींदार के पास तक इस खबर को पहुँचावें। मैं अपनी समझदारी पर इतराता था। लिखने पढ़ने से क्या लाभ होता है इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मुझे हाथों-हाथ मिला। मैंने माता सरस्वती को, गुरु जी को और माता-पिता को मन ही मन सिर झुका कर जी खोल कर ताडी पीने की ओर ध्यान दिया, क्योंकि मेरी अंटी में ५०) बँधे थे। आज से पहिले इतने रुपये मैंने नहीं देखे थे। जो हो पर इन रुपयों की गर्मी पचाना मेरे लिये सहज न था।

---

(७)

अब शहर की ओर जाने की तैयारी हो गयी। दिनेश स्कूल में पढ़ेगा और मैं भी उसी के साथ पढ़ूँगा—यह निश्चित हुआ। जगेश्वर बाबू ने प्रयत्न करके मेरी स्कूल-फीस माँफ करवा दी थी और खान-पीना दिनेश के ही साथ ठीक हुआ था। मैं एक प्रकार से दिनेश के खिदमतगार के रूप में शहर भेजा जा रहा था, पर शायद इसके लिये मेरे पिता राजी न होते इसी

लिये मेरा नाम भी स्कूल में लिखवा दिया गया था। मैं दिनेश से दो तीन साल बड़ा हूँ। जिस समय शहर के एक दुमंजिले मकान में भेजा जा रहा था उस समय मेरी अवस्था कोई ११ साल की थी और दिनेश की १० साल की थी पर उचित आहार के आभाव से मैं दिनेश से कम उम्र का दिखलाई पडता था। उसका भरा हुआ लम्बा-तगडा शरीर १५ साल से कम का नहीं जान पड़ता था।

शहर में दिनेश के कई मौसा थे और वे थे धनी मानी सज्जन। कोठी-महाजनी—का कारोबार होता था। ऊँचा तिमंजिला महल, शहर के प्रधान हिस्से पर था। दर्जनों नौकर, अर्दली, मूनीब, खिदमतगार। वहाँ स्थायी रूप से रहने के पहिले एक बार दिनेश के साथ मैं उसके मौसे के यहाँ गया था। मैं खिदमतगारी की जगह बैठाया गया जो मुझे कतई पसन्द नहीं आया। गाँव मे दिनेश और दूसरे गरीब लड़कों में कोई प्रभेद नहीं देख पड़ता, पर यहाँ पहुँच कर दिनेश में और मुझ मे क्या अन्तर है, स्पष्ट हो गया—सच पूछिये तो मेरे हृदय मे दिनेश के प्रति एक जलन पैदा हो गयी—क्योंकि मेरा वह भ्रम हठात मिट गया जो दिनेश के सम्बन्ध मे मेरे हृदय में था—मैंने देखा कि दिनेश भी अपने पिता की बगल मे, गद्दीदार कुर्सी पर, सजेसजाये कमरे मे बैठा है—वह मेरी ओर कतई ध्यान भी नहीं देता। मैं कमरे के बाहर—आँगन के एक छोर पर खम्भों की कतार के पास चुपचाप बैठा-बैठा ताक रहा था। अपनी वर्तमान अवस्था के प्रति मेरे हृदय में भारी झुंझलाहट पैदा हो गयी। मैं अपने देहाती जीवन को अपने इस वर्तमान जीवन से मिला कर देखने लगा तो मुझे

 के स्थान पर दम घोंटने वाला वातावरण स्वतंत्रता

की जगह पर आत्मा पर एक ऐसा भार, जिससे मन की शान्ति, स्फूर्ति का अन्त होता नजर आवे—जान पड़ने लगी। मैं कुछ ही देर मे मानो ऊब उठा—मेरा मन थक गया। मैं तो ऊँघने लगा था। मेरे सामने से अनेक मनुष्य भड़कदार कपड़े पहने चल फिर रहे थे। किसी के पैर में बढ़िया जूते चमचमा रहे थे तो किसी के आँखों पर सोने की कमानी का शानदार चश्मा चमचमा रहा है। कोई सुगन्धित सिगरेट मुँह मे दबाये चल रहा था तो कोई पान चबा कर इधर से उधर दौड़ रहा था। कहने का तात्पर्य यह कि सर्वत्र चहल-पहल थी जो मेरे देहात की चहल-पहल से कहीं भड़कदार पर कृत्रिम थी। मैं विस्मय-विमुग्ध आँखों से बैठा-बैठा यह सब देख रहा था। आँगन—बरामदे—में मोटा गलीचा बिछा हुआ था और दीवालें शीशे की तरह चमक रही थीं। मैंने अपने और दिनेश के घर से इस इमारत की तुलना की तो मन न जाने कैसा हो गया। लौट कर फिर जब अपने गाँव के गरीबी से भरे हुए आँगन मे पहुँचा तो मुझे बड़ी शान्ति मिली, बड़ा सुख मिला। अपने गाँव का आकाश, अपने गाँव की भूमि, अपने गाँव की हवा मे कुछ ऐसा अपनापन था, कुछ ऐसी भावना भरी थी कि बयान नहीं किया जा सकता। शहर का सूर्य, शहर का वायु-मण्डल, आकाश, जीवन मुझे अपरिचित, नूतन तथा ऐसे जान पड़ते थे जिनसे मेरी आत्मा पर दबाव-सा, भार-सा जान पड़ता था। गाँव में पहुँच कर मैंने अपने आपको हल्का, स्वच्छन्द और सुखमय समझने लग गया। शहर के दिनेश और गाँव के दिनेश मे भी बड़ा अन्तर जान पड़ता था—मैं चकित था कि मेरा अपना दिनेश शहर में पहुँचते ही एकाएक कैसा बदल गया, यह परिवर्तन भी ऐसा वैसा नहीं, एक-दम आमूल परि-वर्तन। चाल में उठने और बैठने मे परिवर्तन—शहर की

महिमा मेरी समझ में नहीं आये। मै खेतों की ओर टहलता हुआ चला गया।

दो तीन दिनों के शहरी जीवन ने मेरे मन को ऐसा क्षुधित या ललचाया हुआ बना दिया कि मैं दिन भर खेतों, मैदानों, नदी तट और जगलो मे घूमता रहा। मै चाहता था कि इनकी शोभा को अपने रोम-रोम से पी जाऊँ, इनकी शान्ति में अपने हृदय को एक-दम सराबोर कर दूँ, इनके अपनापन मे मन को एकाकार कर दूँ। मेरी यह अवस्था अधिक दिनों तक नहीं रही। दिनेश शहर में रहने की तैयारी करने लगा और मेरे पिता जी सोत्साह मेरे लिये कपड़े, बिछावन आदि जुटाने मे लग गये। अम्मा का प्यार बढ़ गया और चाची का लाड़-प्यार भी कुछ कम नहीं था। चाचा जी ने भी मेरे लिये बहुत सा सामान जुटाया, जैसे—दरी, कुरता, चादर आदि-आदि। चलते समय अम्मा ने रोकर विदा किया और न जाने कहाँ से लाकर चुपके से १०) का एक नोट भी दिया—मातृ-हृदय की गति कौन समझ सकता है। पुजारी बाबा के रुपयों मे से मेरे पास ३०) बचे थे। मैंने सोचा कि चलो जी भर कर सिनेमा देखा जायगा और सिगरेट का मजा भी लूँगा।

× × ×

गाँव को हसरतभरी नजरों से देखता हुआ मैं शहर की ओर चला। जाने के पहिले मन्दिर में दर्शनार्थ पहुँचा तो पुजारी जी ने आँखों में आँसू भर कर कहा—"बेटा, सुखी रहना। जमींदार का एक प्यादा आकर भङ्ग घोटने का सिल बट्टा ले गया—भगवान् उसका भला करेंगे। मैं तो शकर जी के इजलास मे मामला दायर करके सन्तोष से बैठ गया हूँ बच्चा! वे बड़े न्यायी हैं—न्याय करेंगे।" वृद्ध ब्राह्मण की

सरलता देख कर मेरा हृदय उमड़ आया। हाय! मैंने व्यर्थ ही इसे लूट लिया था। कितना सरल है यह—उफ्!

मैंने कहा—"बाबा, मैं आपके लिये बढ़िया सिलबट्टा लेता आऊँगा। चिन्ता मत कीजिये।"

गद्‌गद् कण्ठ से पुजारी जी ने आशीर्वाद दिया और प्रसाद देकर तथा मेरे सिर पर हाथ रख कर विदा किया।

× × ×

दिनेश के मौसा का नाम था 'रामप्रसाद'। वे 'रायसाहब' थे और गल्ले का तथा सोना-चाँदी की बडी बड़ी आढ़ते थीं। शहर मे कई मकान थे, जो किराये पर उठा दिये गये थे—मोटर भी थी तथा बड़े पैमाने पर कारोबार होता था। रायसाहब जिस मकान मे रहते थे उसे एक प्रकार से महल कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। मकान से दूर पर आफिस था जहाँ पचासों क्लर्क बिजली की रोशनी के नीचे सिर झुकाये राय-साहब के अतलस्पर्शी पेट की महाक्षुधा के लिये अक-पर-अङ्क जोड़ते रहते थे। रायसाहब के बड़े पुत्र का नाम था दीनदयाल। यह १३।१४ साल का था और छोटे बबुआ का नाम था प्रभुदयाल। इसकी उम्र ९।१० साल की थी। दोनों अव्वल नम्बर के शरारती और उज्जड थे। रायसाहब के महल के निचले खड में एक कमरा हमारे लिये खाली कर दिया गया—उस कमरे मे दो विशालकाय विलायती कुत्ते रहते थे, जो सुना है, शेर का शिकार किया करते थे। एक अंग्रेज को ये कुत्ते दे दिये गये थे—कमरा अपनी रौनक खोकर उदास था। इस कमरे का द्वार महल के साथ वाले सुन्दर बाग की ओर था। मकान का पिछला भाग होने के कारण यहाँ चहल पहल नहीं थी—सन्नाटा-सा रहता था। हमने इसी कमरे में डेरा डाला।

पूस का महीना था। बाग मे होकर शीतल हवा के झोंके रह

रहकर आ रहे थे। दिनेश ने घर को अच्छी तरह देखकर कहा—"सुन्दर है, पर मेरे कमरे में बिजली का कोई प्रबन्ध नहीं है। यह भेदभाव जरा अखरता है, क्यों भैया ?"

यहाँ पर मैं एक निवेदन कर देना अच्छा समझता हूँ। इस समय मैं जिस परिस्थिति मे हूँ, उसकी भयकरता का ज्ञान मुझे भलीभाँति है। यही कारण है कि मैंने अपना नाम छिपाया है। 'दिनेश' का नाम भी गलत ही है। पर अब मैं चाहता हूँ कि अपना एक कल्पित नाम लिखने का प्रयत्न करूँ। आप को मेरे असली नाम से कोई मतलब नहीं है और न मेरे गाँव का पता ठिकाना जान कर ही आप कोई अधिक फायदे मे रहेंगे। आपको मतलब है मेरी आवारागर्दी की घृणित कहानी पढ़ने से, जिसका श्रीगणेश मेरे शहरी जीवन से होता है, अतएव आप मान लें कि मेरा नाम 'सुरेश' है। मेरे गाँव का नाम मानिकपुर मान लें। बस, आप को मेरी कहानी का सिलसिला ठीक करने के मार्ग मे ये दोनों नाम सहायक होंगे।

हाँ, तो दिनेश की बातों ने मेरा ध्यान कमरे के छत की ओर आकृष्ट किया। सचमुच उस घर मे बिजली का कोई प्रबन्ध न था। मैंने धीरे से कहा—"भैया, यह कुत्तों का कमरा है। कुत्तों के स्कूल मे पढ़ना तो था ही नहीं और न उन्हें पाठ याद करना था—उन्हें रोशनी से मतलब।"

दिनेश का चेहरा घृणा से भर गया। रायसाहब उसके अपने निकटतम सम्बन्धी थे- उनसे वह बराबरी के व्यवहार की आशा रखता था। उसे उनकी यह करनी बहुत ही बुरी लगी, पर मैंने कहा कि—'पगले हो क्या! हमे अपने काम से मतलब या बिजली की रोशनी से।"

खैर, सन्ध्या समय एक नौकर ने आकर भोजन के विषय तहकीकात कर गया। दिनेश ने उसे समझा दिया कि, "कि मेरा

साथी-अर्थात् मैं"—राजपूत है, वह ब्राह्मण के हाथ की रोटी खा सकता है।" सारा प्रबन्ध ठीक हो गया। कोलाहल से कुछ दूर डेरा रहने के कारण मेरे मन मे शान्ति ही रही। रायसाहब ने हमारी पढ़ाई वगैरह का प्रबन्ध किया। एक मास्टर साहब भी रक्खे गये, जिनका वेतन जगेश्वर बाबू ने देना तैकर लिया। प्रात.काल स्नानादि से निश्चिन्त होकर हमें स्कूल जाना था। यह तै हुआ कि हम रायसाहब के पुत्रों के साथ ही स्कूल जायँगे क्योंकि वे भी पढा करते थे। ठीक साढ़े दस बजे मोटर पर सवार होकर हम स्कूल चले। यही क्रम बहुत दिनों तक चला। इससे ज्यों-त्यों कर के हमारा पिण्ड छूटा। मोटर पर आने और जाने में एक प्रकार से बन्धन का अनुभव होता था जो हमे कतई पसन्द न था। एक बात और थी—हम इधर उधर टहलते टहलते जाना चाहते थे—शहर को देखते हुए जाना पसन्द करते थे। रायसाहब की कोठी से स्कूल करीब एक मील की दूरी पर था और शहर के बीच से होकर जाने का रास्ता था।

अमीरों के लड़कों के सम्बन्ध में मेरी पहिले जो धारणा थी, वह बहुत ही शानदार थी। मैं सोचता था कि अमीर लडके मेरी तरह आवारागर्दी से दूर रहते होंगे तथा अत्यन्त सुसंस्कृत तरीके से रहते होंगे, पर रायसाहब के लडकों को जब मैंने मोटर पर सिगरेट पर सिगरेट पीते देखा तो मेरा मन बहुत ही उदास हुआ। मेरी उदासी का कारण उन राजकुमारों की कुचरित्रता नहीं थी बल्कि अपनी चिरसञ्चित धारणा को मटियामेट होते देखकर ही मेरा मन उदास हो उठा था। कोठी मे भी ये लडके नौकरों को गालियाँ दिया करते थे तथा बेंत से पीटा भी करते थे। मुट्ठी-मुट्ठी भर पैसे देकर नौकरों से सिगरेट मँगवाना और पीना इनका खास

काम था। जब राय साहब घर से कहीं बाहर चले जाते तो इनकी शरारत सातवें आसमान पर चढ़ जातीं। एक बार इन दुष्टों ने मुझे भी पीट दिया और फकत इसीलिये कि मैंने बाग से एक फूल तोड़ लिया था। मुझे पहिले तो एक प्यादे से बुलबाया गया और इसके बाद दो-चार गालियाँ प्रदान करके तीन-चार तमाचे लगाये गये। यद्यपि मैं मार खाने का तथा मारने का पूरा अभ्यासी था, पर इस घर मे मुझे रहते अधिक दिन नहीं हुए थे। मैं मन ही मन डरता भी था। दिनेश से जब अपनी दुर्गति का हाल कहा तो, वह गरम हो उठा और अपने पिता जी को डेरा बदल देने के सम्बन्ध मे पत्र लिखने बैठ गया, पर मैंने ही उसे समझाया कि अवसर आने पर मैं भी बदला लूँगा—अभी चुप्पी साध लेना अच्छा है। धीरे-धीरे मैं स्कूली जीवन का पूरा अभ्यासी हो गया। दो तीन साल मे ही मेरी आँखें खुल गयीं। दिनेश तो पूरा चट बन चुका था। स्कूल मे अवारा लडकों का एक गिरोह था, जिसका सरगना मैं था। इस दल का काम था, मास्टरों पर आतङ्कमय शासन करना। आप मेरी इस कहानी से चौंकें मत। मैं एक छोटी सी घटना बयान करके यह बतला दूँगा कि जिस दल का मैं नेता था, वह दल मास्टरों की खबर कैसे लेता था।

मेरे स्कूल में ४।५ सौ लड़के थे और १३।२ दर्जन मास्टर। इन मास्टरों में एक थे, नारायण बाबू! हमारे दल ने इनका नाम रक्खा "नारान्तक बाबू।" अपने इस पौराणिक नाम का पता जब मास्टर साहब को लगा तो वे भाड़ के चने हो गये। हेड मास्टर साहब के कानों तक यह बात पहुँचाई गयी। मामला तूल पकड़ता गया और अन्त में मैं रँगे हाथों इस प्रकार पकडा गया कि मैंने अपनी कापी पर कहीं "नारान्तक बाबू" लिख छोड़ा था—कब लिखा कैसे लिखा यह तो याद नहीं है,

पर यह कापी जब नारायण बाबू के सामने गयी तो वे सीधे हेडमास्टर के आफिस में पहुँचे। मैं बुलवाया गया। इसके बाद मुझे ५ बेंत की सजा दी गयी। मैं खून का घूँट पीकर रह गया। मेरे दल में क्षोभ का वातावरण पैदा हो गया—अपने नेता का अपमान कैसे आँखे पसार कर देखा जा सकता है।

मैंने अनगिनत बार जूते खाये थे और धौल, तमाचों की तो बात ही मत पूछिये, पर कम्बख्त बेंत भी क्या बुरी चीज है। जहाँ जहाँ बेंत की चोट पड़ी—बेतहाशा खून निकल आया! मैं बिलबिला उठा था—सारी शरारत भूल गयी थी। सैकड़ों लडकों के सामने मेरी पीठ पर सपासप ५ बेंत जड़कर हेड-मास्टर, जो एक बुड्ढा बन्दर की तरह दिखलाई पड़ता था, उपदेश देने लगा—अध्यापकों की इज्जत करना प्रत्येक विद्यार्थी का धर्म है। अध्यापक तुम्हारे जीवन के निर्माता हैं—इत्यादि। पर यहाँ तो कबाब की तरह कलेजा पक रहा था—क्षोभ, अपमान और लाचारी के कारण। प्रधान अध्यापक की उक्ति मुक्तावलि का चयन करता तो कौन। इसके बाद हमने हेडमास्टर साहब का भी एक नामकरण अत्यन्त समारोह के साथ किया। आप का नाम था 'रामदास' और हमारे दल ने आपका नामकरण किया 'रावणदास'। इतना ही नहीं 'नरान्तकबाबू' की साइकिल का पम्प और लालटेन की चोरी की गयी तथा टायरों में लोहे की कीलें ठोक कर हमारे दल ने अपना मनस्ताप मिटाया। इसके बाद क्या करना चाहिए, इस पर विचार करने के लिये रविवार की संध्या को शहर के बाहर—जिधर कलवरिया रौनक थी—हमारे दल की बैठक हुई। यह प्रस्ताव पास हुआ कि नारायणबाबू की कुर्सी पर आलपीने लगा दी जायँ और सभव हो तो कोई साहसी—विद्यार्थी उनकी साइकिल चुरा ले।

इसी तरह की तूफानी वदतमीजी में मेरा स्कूलीजीवन समाप्त होने के करीब पहुँच गया। शहर मे मटरगश्ती करना, राह चलतों से झगड़े मोल लेना, सिनेमा, कार्निवल तथा दूसरे खेल तमाशों पर धावा बोलना और घुसने से रोक दिये जाने पर ईंट-पत्थर बरसा कर निरपराध दर्शकों की कपाल-क्रिया सम्पादन करना, हमारे दल के कार्यक्रम मे विशेष महत्त्व रखता था। दिनेश भी इन कामों मे काफी सहयोग देता था और एक प्रकार से वह हमारा कानूनी सलाहकार था। नारायणबाबू की साइकिल चुरा कर मैंने अपने दल में बड़ा मान अर्जन किया था, तथा उस साइकिल की सूरत बदल डालने के मामले मे दिनेश ने अपनी समझदारी का जो परिचय दिया था, वह भूलने योग्य नहीं कहा जा सकता। राय साहब के ज्येष्ठ तनय दीनदयाल तो हमारे दल का विरोधी था, पर उसका छोटा भाई प्रभुदयाल एक सजीव नवयुवक कहा जा सकता है—वह शराब पीने का पूरा लती था और दीनदयाल था, घुमक्कड़ प्रकृति का। वह पाकेट मे रुपये भर कर आधी-आधी रात तक शहर की बदनाम गलियों में घूमता फिरता तथा प्रभुदयाल हमारे साथ मजे में बैठ कर भगवती सुरा देवी की आराधना में तन्मय रहता।

इसी बीच में मैं कई बार अपने घर भी गया। माता का स्नेह मुझे खींच कर गाँव की ओर ले जाता था, वर्ना वहाँ का वायुमण्डल अब मुझे दम घोंटने वाला प्रतीत होता था। देहाती जीवन की नीरसता से मैं घबराने लगा था। मैं बिल्कुल अप-टु-डेट तरीके से रहता था। बढ़िया कपड़े पहनता और सदा अंग्रेजी ही बोला करता फिर देहाती गँवारू बोली और मैले गन्दे कपड़ों को मैं कैसे पसन्द करता। मेरे विचारों का स्तर बहुत ही ऊँचा उठ गया था। देहाती भोंदापन अब मुझे पसन्द

न था। मुट्ठी भर-भर कर पैसे लुटाना मैं बहुत ही पसन्द करता था—तथा देहाती जीवन की दरिद्रता का स्मरण करते ही मेरे कलेजे का काँप उठना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

एक बार जब मैं अपने घर पहुँचा तो मेरे सुन्दर कटे हुए बडे-बड़े बालों पर चाचा ने बुरी तरह आक्षेप किया। मुझे उनकी बातें मूर्खता से भरी हुई जान पड़ीं। मुँहतोड़ उत्तर दे दिया। बात इतनी बढ़ गयी कि मैंने उसी क्षण अपना सूटकेस उठाया और बिना पिता जी की ओर भ्रूक्षेप किये चल दिया। बेचारे वृद्ध चाचा हक्के-बक्के से अपने भतीजे की तेजी देखते ही रह गये। गाँव के एक दो सज्जन मुझे मनाने आये पर मैंने उन्हें खालिस अँग्रेजी में ऐसी डॉट बताई कि बेचारे अपना-सा मुँह लिये लौट आये। नम्रता के स्थान पर औधत्य, भद्रता के स्थान पर नीचता और आदमियत की जगह पर उजड्डता प्राप्त करके मैं मानो फूला नहीं समाता था। लगातार आठ वर्ष तक शहर की हवा मे रह कर मैंने जो कुछ मानसिक विकास किया उसका यही परिणाम था।

---

(८)

रायसाहब रामप्रसाद अधेड़ और मोटे एकदम बेडौल से थे। रङ्ग काला और भूरा के बीचोबीच का था। गञ्जी खोपड़ी थी और अच्छी खासी तोंद कुरते के नीचे से झलकती होती थी। कई चमकदार अँगूठियाँ आपकी मोटी-मोटी उँगलियों में सुशोभित रहती थीं। रायसाहब एक रङ्गीन तबियत के आदमी थे। शहर मे जो कुछ खेल, तमाशा, जल्सा उत्सव होता उसमें हमारे रायसाहब जरूर अपना श्रेष्ठ स्थान रखते,

बशर्ते कि उनसे कॉंग्रेसी या आर्यसमाजी गंध न निकलती हो। आप सोत्साह उत्सवों में भाग लेकर पर्याप्त चन्दा भी दिया करते थे। बाहर आपका बड़ा नाम था। बड़े-बड़े तिलक छापा-धारी और हैट-पैन्टधारी आपको घेरे रहते थे।

एक जूता बेचने वाला आया। वह चमड़े के बक्स मे जूते रखकर और खुद साहबी शान से चलता था—किसी कम्पनी का एजेन्ट था। उसे रायसाहब के सामने लाया गया। बातों ही बातों मे उसने कहा कि—"हुजूर, सरकार कलक्टर साहब बहादुर ने सौ रुपये का आर्डर दिया है।"

तीर निशाने पर बैठा। रायसाहब ने भी दो सौ का आर्डर दे दिया—यद्यपि आपके पहनने के इतने जोड़े जूते थे कि ये यदि चाहते तो एक छोटी-मोटी दुकान खुल जाते देर न लगती। उन दिनों मै बड़े कष्ट में था—घर से बिगड़ कर भागा था। मैं पत्र लिख कर खर्च मॉग नहीं सकता था और वहाँ से रुपये आने मे कष्टकर विलम्ब हो रहा था। दिनेश से पैसे माँग-मॉग कर काम चलता था। स्कूल के एक विद्यार्थी की फाउन्टेन पेन चुरा कर मुझे बेचनी पड़ी—पर सिनेमा, सिगरेट और कभी-कभी बाजार की रौनक देखने भर को वे पैसे काफी न थे। मैं पैसे के लिये एक प्रकार से आकुल था। रायसाहब ने अपनी जेब से निकाल कर १००) उस उपानह-दलाल के आगे बतौर पेशगी के फेंक दिया, यद्यपि वह कायदे के अनुसार ५०) माँगने का हकदार था। मैं भी खडा-खड़ा यह दृश्य देख रहा था। जी में तो ऐसा आया कि झपट कर नोटों को उठा लूँ पर ऐसा साहस करना अपने आप पर छुरी चला लेना था—मन मसोस कर रह गया।

रायसाहब सध्या समय अपने खास कमरे में बैठते थे। फिर आपके फाटक पर मोटरों की रेल-पेल हो जाती थी। अनेक

आकार-प्रकार के धर्मधुरीण-धनी सज्जन उतरते थे। कोई कच्छप की तरह नाटे और थपके से और कोई पीला लम्बा कंकाल जैसा जिसकी आँखे गड्ढे में घुसी हुई हों। कोई कोई कमर पर हाथ रक्खे और छडी के भरोसे हाँफते हुए सीढ़ियों को तै करते थे पर कमरे मे पहुँच कर इनकी चचलता बढ़ जाती थी। भड़कदार वरदी डाटे नौकरों का दल दौडता होता था। कन्धे पर तौलिया डाले बावर्चियों की छोटी टुकड़ी भी हाथों में रकाबियाँ, सोडे की बोतले और नाना प्रकार के नर-तनुदुर्लभ आहार लिये दौडती रहती। यह जल्सा १५।२० दिन वाद देकर अवश्य होता था—इसके वाद "छम छननननन" की झकार सुनाई पड़ती और एक मीठी तान हवा मे उड़ती हुई वाग के प्रत्येक फूल को चूमती चलती—

"ना जैहों रे विना झुलनी पॅलग पर।"

आधी रात का समय होता। वाग से फूलों की भीनी भीनी महक गीत की कोमल तान के साथ हमारे कमरे मे गूॅज जाती। खुली खिडकियों से हम वाहर की ओर झॉकते तो सर्वत्र, निर्जनता, चाँदनी से रॅगे हुए वृक्ष और सामने वो सुन्दर फौहारे—की पुतली-उफ्!

एक वार की वात मुझे याद है—फागुन के दिन थे और थी फागुन की राते। स्कूल वन्द तो हो गया पर हम घर जाना नहीं चाहते थे—प्रभुदयाल ने हमे रोक रक्खा। जव से मैं प्रभुदयाल का कृपापात्र वना हूॅ—पैसों की कमी नहीं रहती। फागुन में रायसाहव की पुरानी हड्डियों में वसन्त की समस्त स्फूर्ति भर जाती थी। महीना भर जल्सा होता रहता था। ५ दिनों तक तो रङ्ग अवीर और वोतलों की ऐसी भरमार रहती कि कोठी के भीतर तूफान-सा आ जाता—रात दिन नाच, रात दिन आमोद-प्रमोद। नौकरों को नये-नये कपड़े मिलते

थे। इस वर्ष हमें भी नये-नये कपड़े दिये गये—हमने इन्हें स्वीकार तो कर लिया पर आत्मा ने पहनने की गवाही नहीं दी। मैंने तो मिले हुए कपड़ों को छूआ तक नहीं—अपनी पुरानी कमीज और धोती पर ही फागुन का जल्सा समाप्त कर देने का निश्चय किया। प्रभुदयाल ने जब हमारे नये कपड़ों को रक्खा देखा तो उसका चेहरा क्षणभर को गम्भीर हो उठा, पर उसने मन के भावों को बड़ी सफाई से दबा लिया। मैं भी थोड़ा-सा झेपा, पर फिर इधर-उधर की चर्चा चल जाने से ध्यान बॅट गया। हमारा यह काम था कि हम रात को १२ बजे धीरे-धीरे कोठी से निकलते थे—फाटक की ओर न जा कर पीछे के दरवाजे से बाहर निकल जाते थे—उस दरवाजे में ताला पड़ा रहता था, जिसकी ताली बनवा ली गयी थी। पहरेदार सब कुछ जानता था, पर उसके मुँह में इतने पैसे भर दिये जाते थे कि उसका कंठ ही बन्द हो जाता था—आवाज नहीं निकलती थी।

हम—मैं, दिनेश और प्रभुदयाल—दो घटे तक शहर की गलियों में चक्कर काटा करते थे और फिर चुपके से आकर सो रहते थे। होली के दिनों में सारी रात चहल पहल रहती थी, अतएव हमे कहीं जाने का अवसर ही नहीं मिलता था। जिस वर्ष की बात मैं कह रहा हूँ, उस वर्ष की होली शहर मे ही हुई—और बड़ा आनन्द आया। सारी रात रायसाहब के कमरे में बैठ कर नाच देखने का अवसर मिला। मैं कभी भी उनके कमरों की ओर नहीं जाता था। कोई प्रयोजन भी नहीं रहता। इस बार दिल खोल कर विलास का उल्लघ नृत्य देखने को मिला।

कमरा बहुत बड़ा और सजा हुआ था। कुर्सी, मेज हटा कर फर्श की व्यवस्था की गयी थी। बिजली की स्वच्छ रोशनी से आँखें चौंधियाती थीं। मैंने देखा था शहर के अनेक रईस

कहे जानेवाले मनुष्य उपस्थित थे—विलायती सेंट-लेवेन्डर से वायुमण्डल व्याकुल हो रहा था—मस्ती भरी हुई थी। धनी सज्जन अपनी-अपनी कीमती मोटरों पर आ रहे थे। आधी रात होते-होते कमरे के प्रकाश का निरादर करती हुई चार रंडियों ने प्रवेश किया—कैसी रूपमाधुरी थी। आत्मविस्मृत हो कर मैं देखने लगा "इन्द्र सभा" का रङ्ग जम गया। बोतलों की बारी आई। गिलासों में अँगूरी सुन्दरी थिरकने लगी—सोडावाटर की फेन का रङ्ग भी लाल ही नजर आता था। रायसाहब और उनके ज्येष्ठ पुत्र दीनदयाल भड़कदार कपडे पहने बडे तपाक से निमन्त्रित सज्जनों का सत्कार कर रहे थे। थोडी देर में फूहड-हँसी मजाक आरम्भ होगया। ऐसी दिल्लगी कि यदि मैं यहाँ लिख दूँ तो हमारे आदर्शवादी पाठक यह पृष्ठ फाड़ कर ही फेंक दें। मैं और प्रभुदयाल—मत पूछिये किस मनस्थिति में, बयान के बाहर है। अपने पुत्रों के सामने विलास का यह भद्दा उत्तेजक प्रदर्शन करना धनिकों का ही काम है। मैं कहता हूँ कि यदि इनका धन इनसे ले लिया जाय तो ये इस रूप में ससार के सामने रह जायेंगे कि किसी भले आदमियों के मुहल्ले में इन्हें कोई घुसने न देगा। सोने के मुल्लमे के कारण इनके भीतर का लोहापन छिपा हुआ रहता है। मुल्लमा उतर जाने के बाद इनका जो रूप बचता है, वह कौडी काम का भी नहीं कहा जा सकता है।

एक मारवाड़ी सज्जन ने लपक कर एक वेश्या के, जो अद्भुत सुन्दरी थी, गाल पर गुलाल मल दिया। ठहाके से कमरा गूँज उठा। उस वेश्या ने भी 'कुकुमा' उठा कर मारवाड़ी की तोंद पर कस कर मार दिया। फिर क्या था—ऐसा हुरदंगा मचा कि ऊँची पगडी वालों का परदा फाश हो गया। मैंने मन ही मन कहा—

"पुनि न होइ यह निसिचर घोरा"

इसी धक्कम-धुक्की में एक वेश्या प्रभुदयाल पर जा गिरी। सभी अपने धुन मे मस्त थे। प्रभुदयाल ने उसे मेरी ओर धकेल दिया—मेरा सारा शरीर सिहर उठा। मैंने ऐसा अनुभव किया कि मेरे समस्त शरीर का रक्त एक बारगी दिमाग पर चढ़कर अदहन की तरह खौल उठा हो। मैं न तो उसे हटा सका और न तो शराब के झोंक मे उसके आलस शरीर मे इतनी शक्ति थी कि उछल कर अलग खड़ी हो जाय। इसी समय दूसरी ओर एक तमाशा शुरू हो गया। एक वेश्या उछल कर एक नाटे से मोटे सज्जन पर गिरी। वह गिरे औंधे मुँह अबीर के थाल पर—ठहाका मचा और इस धींगाधींगी मे किसी ने बिजली का बटन दबा दिया। कमरा अन्धकाराच्छन्न हो गया। दूसरे क्षण जब प्रकाश हुआ तो मद्यपायियों को मैंने उलङ्ग नृत्य करते पाया। रायसाहब किसी के पीछे रहने वाले थोड़े थे—वे भी बिना कपड़ों के और बिना अपनी प्रतिष्ठा का पर्वा किये उछल रहे थे। मेरा मन एक बारगी घृणा से भर गया। मन तो घृणा से भर गया पर कमरे से उठकर जाने का जी नहीं चाहता था। देखते-देखते रात समाप्त हो गयी और जलसे का भी अन्त हो गया। हम थके-से, बे-मन के अपने कमरे मे लौटे और बिना कपड़े बदले खाट पर जो गिरे तो दोपहर को आँख खुली, वह भी प्रभुदयाल के जगाने पर। भारी थकावट लेकर मैं खाट से जँभाइयाँ लेकर उठा। रात के खाये हुए पान के कारण मुँह का स्वाद बिगड़ गया था। अबीर का रग भी फीका और उदास लगता था। शराब की खुमारी के कारण सिर भारी और मन थका हुआ-सा प्रतीत होता था। प्रभुदयाल खाट पर ही बैठ गया। उसने जल्दी-जल्दी कहना शुरू किया—"जल्दी उठो। एक बात कहता

हूँ—सुनो ! रात देखा था न—वहाँ, ऊपर कमरे में गोदी-सी छोकरी। अरे, वही जिसने धनीराम सेठ की तोंद पर कुम्कुम चला दिया था। कैसी सुन्दरी है—वह भी।" वह इधर-उधर देखकर जल्दी-जल्दी बोलने लगा—"उसके पास मैंने सवाद भेजा था—समझ गये न ? वह यहीं पास के मकान मे—सामने, फाटक की बगल मे ठहरी हुई है। बनारस की है। उसने आने का यही समय दिया है। चलो—जल्दी करो। अरे, तुम तो फिर सो रहे हो। अभी बाबूजी सो रहे हैं।"

उसने विना मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये मुझे बलपूर्वक खींच कर बैठा दिया। जल्दी-जल्दी मैंने स्नान वगैरह से छुट्टी पाली। दिनेश सो रहा था। 'प्रभुदयाल बेकली के साथ मेरी खाट पर बैठा रहा। मैंने जब दिनेश की ओर ध्यान दिया तो उसने कहा—"सोने दो—अभागा है। जागेगा तो और विलम्ब करेगा। अवसर चूक जायगा—चलो।"

जल्ली-जल्दी कपड़े वदल कर हम कोठी से बाहर हो गये। गली के नुक्कड़ पर ही रायसाहब का एक दुमजिला मकान था, जो 'गेस्ट हाउस' के नाम से विख्यात था। हम गेस्ट हाउस के दरवाजे पर पहुँचे। मैं चुपचाप जा रहा था। दरवाजे पर पहुँचते ही मेरा कठ फूटा—"यार किसी ने देख लिया तो।" "पागल हो" प्रभुदयाल ने कहा और वह क्षणभर मे घर के भीतर घुस गया। मैं इस घर में कई बार गया था। जगेश्वर बाबू जब आते तो इसी में ठहराये जाते थे। मकान छोटा-सा पर सुन्दर था। कई छोटे-बड़े हवादार कमरे थे। जी कड़ा करके और इधर-उधर ताक कर मैं भी भीतर घुसा—यों तो अनेक बार इस घर में आया था, आज मुझे जान पड़ा कि मैं किसी अनजान जगह में पहुँच गया हूँ जहाँ का वातावरण अत्यन्त भारी और मन को थका डालनेवाला है। निचले खंड

मे कई मुसलमान मुँह वाये सो रहे थे—इधर-उधर तबला, हारमोनियम, सारंगी आदि पड़े थे और कई जोड़े जूते बिखरे हुए थे। दीवार के सहारे कई छड़ी और लाठियाँ पड़ी थी, तथा फर्श पर पान की घिनौनी पीक की कीचड-सी बन गयी थी। शराब और तम्बाकू की दम घोंटने वाली दुर्गन्धि भरी थी। मुँह फाड़ कर सोनेवालों के मुँह पर मक्खियाँ भिन-भिना रही थीं। एक कोने मे मलाई के सिकोरे, जूठी पत्तलें और पान के दोनों का ढेर लगा हुआ था। कहने का तत्पर्य यह कि घर का निचला खड सूरा नरक बन चुका था और विलास की ओट मे छिपी रहनेवाली विभत्सता को उसकी पूरी मात्रा में सप्ष्ट कर रहा था।

मैंने देखा कि एक बुड्ढा उठकर तम्बाकू ठीक कर रहा है और खाँस कर एक बगल मे पीले कफ भी थूकता जाता है। मैला-सा गद्दा—मिट्टी का हुक्का—एक किनारे पड़ा है। उसने हमारी सूरत देखते ही उठकर सलाम किया और दुर्गन्धिपूर्ण जँभाई लेकर आगे बढ़ा। उसके पीले पीले दाँतों पर जब मेरी दृष्टि पड़ी तो मैंने भी सभ्यता को धता बतला कर जहाँ पर खड़ा था, वहीं थूक दिया। इसी समय उसका हुक्का उलट ..था—हुक्के के पानी से जो दुर्गन्धि फैली वह असह्य थी, भयानक थी, सभी दुर्गन्धियों से बढी-चढी थी। मैं घबरा कर सीढ़ियों से होता हुआ ऊपर पहुँचा। मेरे पीछे प्रभुदयाल और उसके बाद मियाँ साहब।

ऊपर के जिस कमरे में वह वेश्या ठहरी हुई थी, उसके सामने हमने जर की दो नन्हीं-नन्हीं जुतियाँ देखी, जिन पर सोने के तारों का चमकदार काम था—मैं बाहर ही ठिठक कर खड़ा हो गया। इतने मे मियाँ साहब, "हुजूर आइये," कहते

हुए झट से कमरे मे घुस गये और परदा हटा कर अदब से खड़े हो गये।

मैंने देखा - मैंने अपने सामने साक्षात सुषमा को अँगड़ाइयाँ लेकर एक अन्दाज से उठते देखा। 'गुलाब' का नाम तो सुना था और दो-तीन दिन देखा भी था, पर रायसाहब के जल्से पर उसका सँवारा हुआ सौन्दर्य आज के सौन्दर्य से कहीं अधिक न्यून था। फूल को यदि रँगा जाय या चाँदनी को यदि साबुन से साफ़ किया जाय तो यह मूर्खता ही होगी। नाना प्रकार के जड़ाऊ आभूषण इस तन्वी के सौन्दर्य को अपनी जगमगाहट से छिपा ही रहे थे। एक हल्की वासन्ती सारी और आलुलायित कुन्तलों ने 'गुलाब' की माधुरी मे जिस आकर्षण को विकसित कर दिया था, वह कीमती जेवरों और हीरा-मोती की धूमधाम मे दबा हुआ-सा, छिपा हुआ-सा, अपने स्वाभाविक रूप को स्पष्ट करने की विकलता को दमन करता हुआ-सा ही दिखलाई पड़ता था।

मैंने देखा कि गुलाब का सौन्दर्य, यौवन मानो उसके अङ्गप्रत्यङ्ग से फूट कर निकल रहा है। प्रभुदयाल को देखते ही जरा-सा मुस्करा कर गुलाब ने स्वागत किया।

खुली हुई खिड़कियों से फागुन की हवा का एक हल्का-सा झोंका और गुलाब के रेशों की मादक महक ने गुलाब से आगे बढ़ कर हमारा स्वागत किया। मेरी पलकें अलसा गयी और दूर से कोयल की आवाज आयी कुहू-कुहू-कुहू! फागुन की उदास दोपहरी थी और मूर्तिमान मादकता के सामने मैं खड़ा था—!

---

(६)

घर से एक पत्र आया। पिता जी लिख रहे थे—...
"तुम्हारी अम्मा बीमार है। जीने की आशा धीरे-धीरे क्षीण हो रही है। मैं स्वयम् आता—पर तुम्हारे चाचा घर पर नहीं हैं। लाचार हूँ—चले आओ। ...."

पत्र पढ़ते ही मेरी आँखों के सामने माता का रोग-जर्जर शरीर घूम गया। स्नेह-पूरित निर्बल आँखे, पीला चेहरा, तेल हीन रुक्षकेस—लाचार खाट पडी हुई माता का ध्यान आते ही मैं बच्चों की तरह रो उठा। स्नेहमयी जननी—उफ्! जी चाहता था कि पङ्ख लगा कर उड़ जाऊँ, पर इतनी क्षमता कहाँ। हाय, मनुष्य भी कितना लाचार प्राणी है। मैंने बिना कुछ कहे दिनेश की ओर पत्र बढ़ा दिया और अपना बिस्तर वगैरह ठीक करने लगा। पत्र पढ़ कर दिनेश बोला—"तब, तुम कब तक लौटोगे—"

मैंने—बिखरी हुई चीजों को सँभालते-सँभालते कहा—"भाग्य जाने भैया! यह बुरी मुसीबत आना चाहती है। बहन भी अब बच्ची नहीं रही। खाली घर मे उसका निर्वाह कैसे होगा।"

दिनेश बोला—"भगवान सब से बड़े रक्षक हैं सुरेश! उनका ध्यान करो।"

सचमुच विपत्तिकाल मे भगवान का नाम कितना प्यारा होता है—मनको उनके नाम से कितनी शान्ति मिलती है तोष मिलता है, कितना भरोसा प्राप्त होता है। यों तो मैंने कभी भगवान के विषय मे कुछ नहीं सोचा था, पर आज दिनेश के मुँह से भगवान का नाम सुनते ही न जाने मेरी

आँखे क्यों छल-छला आयीं, हृदय गद्गद् हो गया—मैंने अपने भीतर एक अखण्ड शक्ति का अनुभव किया। मेरा पापलिप्त हृदय भी शत-शत धारा हो कर बहने को विकल हो उठा।

जल्दी-जल्दी मे चल पड़ा घर की ओर। आखिरी मोटर छूटने मे विलम्ब नहीं था। दौड़ता हुआ चला और किसी-किसी तरह गाँव की ओर चल पड़ा।

पतझड़ के दिन थे। वसन्त की शोभा सर्वत्र फैली हुई थी। मोटर खेतों और मैदानों के बीच से आँधी की तरह भाग रही थी, पर मेरा ध्यान किसी ओर भी न था। मैं अपने आप में डूब-उतरा रहा था। रह-रह कर मैं सोच रहा था, क्या सचमुच इस संसार मे 'भगवान' नाम की कोई अपरा शक्ति है जो बड़ी ही दयालु और माता की तरह स्नेहमही है। क्या वह शक्ति रक्षा करनेवाली है और गरीबों तथा पीड़ितों की ओर से दुःख और पीड़का के खिलाफ लड़ती है। सम्भव है, यह नाम—भगवान का नाम—थके हुए मन को ताना करने के लिये गढ़ लिया गया हो, पर यदि ऐसी बात भी हो तो इसमें कोई हानि नहीं है। जब हमारी शक्ति समाप्त हो जाती है, मन बैठ जाता है तब जीवन भार हो उठता है। ऐसे अवसर पर यदि किसी कल्पित नाम के स्मरण से ही हमारे भीतर नूतन बल का सञ्चार हो जाय तो हमें उस नाम के प्रति कृतज्ञ ही होना चाहिये। तो क्या भगवान कल्पना प्रसूत एक देवता या संसार के सृष्टि-स्थिति-विनाश के कारण रूप तथा कर्ता हैं—जो भी हों पर आज तो मेरा मन उनके चरणों की ओर रह-रह कर दौड़ रहा है। जब मेरे लिये संसार अन्धकाराच्छन्न है तो जहाँ पर तनिक-सी भी ज्योति दिखलाई पड़ेगी, उसी ओर मुझे जाना पड़ेगा—यह स्वाभाविक भी है और तर्क-सम्मत भी।

भगवान ! तुम सत्य हो या मिथ्या, आधार से या आवेय, कर्म हो या कर्त्ता, जड़ हो या चेतन मुझसे इससे मतलब नहीं—प्रभो, इस समय तुम इतनी ही कृपा करो कि दु:खों पर विजय प्राप्त करने भर की शक्ति मुझे प्रदान करो। बस।

× × ×

जब मैं घबराया हुआ अपने घर पहुँचा तो रात काफी व्यतीत हो चुकी थी। सम्भवत. १० बजने का समय हो चुका था। द्वार सूना था। पिता जी भी सम्भवतः मेरी अम्मा के ही निकट थे। मैं धड़धड़ाता हुआ घर के भीतर पहुँचा तो सचमुच माँ को खाट पर पड़ा पाया। मेरी बहन पङ्खा लिये चुपचाप बैठी थी। एक फूटी-सी लालटेन—एक कोने मे—प्रकाश से अधिक धूआँ उगल रही थी।

मैंने झुक कर माँ को पुकारा। अपनी कोटरगत् आँखों को खोलकर माँ ने देखा। वह बहुत ही कमजोर हो गयी थी—क्षीण स्वर में बोली—"कौन मुनुआ—बेटा, आ गये। मन जुड़ा गया। देख लिया। अच्छे हो न ? मैं अब सुख से मरूँगी।" मैं अपने आपको सँभाल नहीं सका। माँ की छाती पर सिर रख कर बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोने लगा। मेरी बहन भी आँचल से सिर छिपाकर दबी आवाज मे रोने लगी। माँ ने अपने पतले हाथों से मेरा सिर उठाकर चूम लिया और कहा—"बेटा, एक साध मन मे रह गयी - बहू का मुँह नहीं देखा। नाती को गोद में खेला कर मरती तो मेरी आत्मा को बहुत ही शान्ति मिलती। परमात्मा को यही मजूर था।"

जी कड़ा करके मैं बोला—"ऐसी बात मत बोलो माँ ! तुम्हें मरने नहीं दूँगा—समझ लो मेरे डर से काल भी डरता है।"

माँ के सूखे हुए मुख पर हँसी की एक पतली रेखा दौड़ गयी। कहने लगी—"पगला ! अभी तक तू निरा बच्चा है।

अरे मूर्ख, काल भी किसी से डरता है—तू नहीं जानता कि भगवान रामचंद्र और श्रीकृष्ण चंद्र तक को काल का ग्रास बनना पडा था—रामायण तो तूने पढ़ी ही होगी।" मैं बोला—"नहीं माँ मुझसे काल डरता है। तुम्हें नहीं मरने दूँगा। तू तीन दिनों में चंगी हो जायगी। माँ ने कहा—"मेरा धन्य भाग जो मेरे सपूत से काल भी डरता है। अच्छा जा, खा-पीकर सो। गिरिजा—(मेरी बहन का नाम था, गिरिजा।) बैठी क्या है। मुनुआ कितनी दूर से आया है। उठ! अभागी न तो भाई के पैर धोने के लिये पानी लाती है और न भोजन का ही प्रबन्ध करती है।"

जब मैं भोजन करने बैठा तो गिरिजा से पता चला कि अम्मा ३।४ दिनों से रो-रोकर मेरा नाम दिन-रात लेती थीं। इस समय सचमुच उनकी तबीयत सँभली-सी जान पड़ती है। पिता जी के सम्बन्ध में पता लगा कि जमींदार फिर गाँव में आया है। वह एक नहर बनवाना चाहता है। पिता जी को उसी ने बुलवाया है।

भूख तो थी नहीं पर माता की आज्ञा से और बहन के प्रेम से दो-चार ग्रास पानी के जोर से गले के नीचे उतार कर अम्मा की कोठरी में गया तो उन्हें गम्भीर निद्रा में निमग्न पाया। दबे पैरों बाहर आकर लेट गया पर नींद रूठ गयी थी, नहीं आई। सारी रात अम्मा के सोने का हल्का-हल्का खर्राटा सुनता रहा। राम-राम करके भोर को जरा-सी नींद आयी तो बुरे-बुरे सपनों का ताँता-सा बँध गया। मैंने देखा—"मैं आग की भट्टी में कूद पड़ा हूँ और उस भट्टी से निकल कर एक गंदी बदबूदार कोठरी में पहुँच गया, जिसके द्वार पर ३।४ भयानक कुत्ते घूम रहे हैं। कोठरी की छत के छेद से एक लाश गिरी। उस लाश को देख कर मैं चिल्ला बैठा वह दिनेश की

लाश थी, जिसकी छाती से खून निकल रहा था और आँखें उलटी हुई थीं। मैं नींद से चौंक उठा। पसीने से तर हो गया था। पिता जी कह रहे थे—"दिन चढ़ गया। उठो—यह शहर नहीं है जो आधे दिन तक सोते रहोगे।" मैं आँखें मलता हुआ उठ बैठा। अम्मा ने चीण स्वर से पिता जी से कहा—आधी रात को तो मुनुआ आया है। क्यों उठाते हो—सोने भी दो। उसकी तबीअत खराब हो जायगी।"

दिन के प्रकाश मे मैंने देखा कि पिता जी अचानक वृद्ध हो गये हैं। एक वर्ष मे ही उन्होंने जैसे अपनी उम्र १० वर्ष समाप्त कर डाली। उनके बाल सन के से हो गये थे, तथा चेहरा झुर्रियों से भर गया था। कमर थोड़ी-सी झुक गयी थी और आँखें निस्तेज-सी दिखलाई पड़ती थीं। चिन्ता की मार गोली की मार से भी अधिक दारुण होती है।

पिता जी की ओर आँखें भर कर देखने का साहस नहीं हुआ। मैं ऐसी करुणापूर्ण अवस्था मे उन्हें देखने की आशा नहीं कर सकता था। वे मुफलिस के चिराग की तरह समय के पहिले ही—रात समाप्त होने के पहिले ही बुझ जाने की तैयारी कर रहे थे। माता की दशा देखकर दिन भर जो जोरदार धक्का लगा था, पिता जी की सूरत देखते ही वह धक्का उचट कर दूने वेग से फिर मेरे दिल पर लगा। मैं शहर के आमोद-प्रमोद मे लिप्त रहकर एक प्रकार से घर को बिसार ही बैठा था। चाचा से लड़कर भागने के बाद मैं पूरे १७ महीने पर घर आया था। इन १७ महीनो ने मेरे परिवार को एक प्रकार से उदरस्थ ही कर लिया—जो कुछ बचा वह दो जीवित कगालों के अतिरिक्त और कुछ न था। यदि शरीर मर जाय तो उसे किसी प्रकार जिलाया जा सकता है, पर जब आत्मा मर जाती है तो एक भी उपाय कारगर नहीं हो सकता। मैंने देखा कि

मेरे परिवार की आत्मा का ही अन्त हो चुका है। अब क्या किया जाय ?

खेदमय वातावरण के साथ मेरे दिन का आरम्भ हुआ। मैंने अपनी माता की सेवा का भार ले लिया पर पिता जी को भगवान के भरोसे छोड देना ही उचित था—मैं कर ही क्या सकता था। चिन्ता रोग की दवा यमराज के पास है—वे ही किसी समय पधार कर रोगी को रोगमुक्त बना डालते हैं। तो क्या मेरे पिता जी का रोग ऐसा ही भयंकर था ? सम्भव है जो बात मैं सोच रहा हूँ, वह सही न हो। अपने मन को संतोष देने के लिये मुझे लाचार यह सोचना पडा कि पिता जी भी स्वस्थ हो जायँगे और अम्मा तो दो-चार दिनों में ही मेरे लिये गरमा-गरम फुलका बनाने लगेंगी तथा दो सप्ताह बाद मैं खुशी-खुशी शहर की ओर प्रस्थान करूँगा।

दोपहर को मेरे चौपाल मे गाँव के बहुत से सज्जन एक-एक करके एकत्रित हुए। कुछ तो मुझसे मिलने को कुशल समाचार पूछने का बहाना लेकर आये और कुछ योंही स्वाभाविक। मैंने देखा कि प्रत्येक आनेवाला किसान उदास है, वह अपने हृदय मे एक हाहाकार भर कर आ रहा है, एक अनिर्वचनीय पीड़ा का भार लिये आ रहा है। गाँव में एक व्यापक तथा गम्भीर उदासी फैली हुई-सी दिखलाई पड़ती थी। पहिले की तरह न तो रौनक थी और न जीवन था। सभी अनमने से, थके से, हततेज से दिखलाई पड़ते थे।

कुछ देर ठहर कर मैं मन्दिर की ओर चला। पुजारी बाबा से मुलाकात करके कुछ पता लगाना चाहता था। नित्य मन्दिर पर इधर-उधर से आकर लोग जमा होते थे और तरह-तरह की चर्चा चलती थी। पुजारी जी भी अपनी राय दिया करते थे—यह सनातन नियम था।

मन्दिर पर पहुँच कर मैंने नियमानुसार पुजारी जी को मन्दिर बुहारते देखा। मुझे देख कर वे सदा की तरह प्रसन्न हुए—पूछने लगे—"इन्ट्रेन्स (इन्टरमीजियट) पास किया या नहीं। नौकरी करते हो या अभी वेकार हो।" मैं बोला—"बाबा, लाओ मैं झाड़ू लगा दूँ, तब आपके प्रश्नों का उत्तर दूँगा।"

मैंने देखा कि पुजारी—वृद्ध पुजारी—की आँखें भर आयीं। उनकी दृष्टि मे मेरा मूल्य बढ़ गया था। मेरी आँखों पर चश्मा था और शरीर पर बढ़िया धुली हुई स्मार्टकालर की कमीज। मैं आज गाँव का आवारा लड़का मुनुआ नहीं, एक शिक्षित नौजवान सुदेश था। वे मुझसे झाड़ू लगवाते ऐसा सम्भव न था। पुलकित वदन पुजारी जी ने कहा—"बेटा, यह सौभाग्य है कि तू अपने बड़ों की इज्जत करता है। बचवा! मैं तुम्हें नहीं रोकता—यदि तेरी इच्छा हो तो बाबा शकर की तू प्रेम से सेवा कर सकता है।"

मैंने झाड़ू लगाना शुरू किया और पुजारी बाबा पूजा के बर्तन मॉजते हुये कूऍ पर चले गये। मुझे याद आया कि एक दिन झाड़ू लगाते ही लगाते मैंने भगवान के घर मे डाका डाला था। मैं भूला नहीं था कि किस प्रकार मैंने इस वृद्ध सरल हृदय ब्राह्मण की कमाई पर पापी हाथ डाले थे और किस तरह शकर के सामने ही झूठ बोल कर जमींदार के किसी प्यादे के सिर पर सारा पाप थोप दिया था। पश्चात्ताप से मेरा मन मुझे धिक्कारने लगा। मेरा हृदय विकल हो उठा। मैं चाहता था कि पुजारी बाबा के चरणों मे सिर रख कर सब कह दूँ—एक-एक बात खोलकर कह दूँ, पर हाय! यह भी साधारण मनोबल का काम नहीं है। यदि मेरा मन इतना सबल होता तो मैं चोरी ही क्यों करता। चोरी—? चोरी की

तो कोई बात नहीं, पर इस गरीब, सरल वृद्ध की पूँजी लूट लेना भयानक, जघन्य, अक्षम्य पाप है। यदि भगवान शंकर सब कुछ देखते हैं, यदि वे अन्तर्यामी हैं तो निश्चय ही वे मुझे अपने तीसरे नयन से घूर-घूर कर देख रहे होंगे। मुझे उस समय ऐसा जान पड़ा कि मन्दिर के भीतर से भयानक आँख मेरी ओर घूर रही है। मैं एड़ी से चोटी तक काँप उठा और मन्दिर की ओर देखने की हिम्मत नहीं हुई। इसी समय पुजारी जी काँपते हुए गले से "श्रीराम! श्रीराम" कहते हुए मन्दिर पर पहुँचे—मेरा झाडू लगाना समाप्त हो चुका था। मैं डलिया मे कूड़ा उठा रहा था।

पुजारी जी भग रगड़ने की फिक्र मे लगे और मैं हाथ, पैर धोकर आकर बैठा। अब मैं इस चिन्ता में पड़ा कि बातों का सिलसिला किस तरह शुरू किया जाय। मैं इसी उधेड़ बुन मे लगा हुआ था कि स्वयम् पुजारी जी बोले—"बेटा, तुम जानते हो जमीदार की सवारी फिर यहाँ आयी है। खैर जमीदार अपनी जमीदार मे आयें, हम उनके आने का तो विरोध नहीं करते, पर उस बार उनका आना गाँव के लिये एक दुर्घटना सिद्ध होने पर है।"

मैंने कहा—"सो कैसे ?"

हाँ, ऐसी ही बात है बच्चा! पुजारी जी सिल पर भंग रखते-रखते बोले—मै ठीक कहता हूँ, ऐसी ही बात है। इस बार 'मानिकपुर' की भाग्यलक्ष्मी की अन्तिम विदाई है। वर्तमान जमीदार के पिता ने इस मन्दिर को बनवाया था। दस बीघे ब्रह्मोत्तर लाखराज जमीन आज तक भगवान शंकर के लिये मौजूद है। वे ऐसे दानी थे। एक बार उन्होंने मुझे बुलवाया—।"

मैं तो आज-कल की घटना के विषय मे जानकारी प्राप्त

करने के लिये उत्सुक था और पुजारी जी ने प्रपितामह काल का पवारा छेड़ा जब रुपये का सात मन घी बिकता था। मैंने बात काट कर कहा—"बाबा, यह न बतलाइये कि जमींदार किस तरह गाँव की लक्ष्मी को खदेड़ना चाहता है।"

"वही तो कह रहा हूँ बेटा!"—पुजारी बाबा बोले—"इस जमींदार के शरीर में कलियुग ने अपना स्थायी घर बना लिया है। सुना है कि शराब पीता है, शहर से रंडियाँ बुलवाता है और—।"

इतना कह कर पुजारी बाबा रुक गये। मैंने फिर कहा—"और क्या?"

"और यही कि गाँव की बहू बेटियों की प्रतिष्ठा भी खतरे में है"—इधर-उधर देखकर पुजारी ने अत्यन्त धीमें स्वर में कहा। आप फिर बोले—"भैया, इसकी चर्चा किसी से भी मत करना। वह—जमींदार—बड़ा जालिम है। बन्दूक लेकर घूमने निकलता है। परसों जगन को पेड़ में बँधवा कर इतना पिटवाया कि वह आज मरणासन्न अवस्था में पड़ा है। मुँह से राम नाम की जगह पर गालियाँ बरस ही रही है। पूरा राक्षस है भैया! पूरा राक्षस! हिरण्यकशिपु का अवतार है। भगवान शंकर! भगवान इस बुढ़ौती पर खयाल करना बाबा!"

जमींदार के इस घृणित वर्णन से मैं जरा भी नहीं चौंका-क्योंकि शहर में रहकर मैंने अमीरों की बड़ी-बड़ी लीलायें देखी थीं। रायसाहब की बुढ़ौती का रास-रंग देखकर मेरे दाँत खट्टे हो गये, जवानी की बात तो राम जाने। जमींदारों की महिमा से तो मैं अवगत था, पर खास मेरे ही गाँव में वज्रपात होगा, यह मुझे मालूम न था। मैंने फिर प्रश्न किया—"यह नारकी जमींदार कब तक यहाँ और रहेगा बाबा?"

पुजारी जी बोले—"यह तो भगवान शंकर जानें, पर सुना

है कि गाँव की आय बढ़ाने के लिये वह एक नहर बनवाना चाहता है। नदी से ही नहर कटवा कर गाँव के दक्षिण हिस्से की गैर आबाद जमीन को वह आबाद करेगा। इससे गाँव की पैदावार बढ़ेगी और आय भी बढ़ेगी। पर एक तमाशा है। उसने रैयतों को बुलाकर कहा है कि आधा खर्च तो वह खुद उठावेगा और आधा प्रजा को देना पड़ेगा, क्योंकि गाँव की भलाई के लिये नहर की व्यवस्था की जा रही है। तुम जानते हो सुरेश! गाँव की हालत तो यों ही खराब है। फिर १२ हजार रुपये की वसूली असम्भव है। बड़े-बड़े साहबों ने आकर कहा है कि २४ हजार से कम खर्च नहीं पड़ेगा। प्रत्येक 'हल' पर औसत ५०) बैठाया गया है। कहने का तात्पय यह कि तुम्हारे पिता के ४ हल चलते हैं—२००) उनके सिर पर लादा गया है। चार चार साल से सूखा पड़ रहा है। जमीदारी कर वसूल करते तो किसी से बनता नहीं। यह नया 'कर' कैसे दिया जायगा--यह भगवान शकर जानें। अब जमींदार ने पाप पर पैर दिये हैं बेटा! प्रजा तो संतान की तरह होती है।" इनके पिता बड़े पुण्यात्मा थे। मुझे उन्होंने एक दुधार गऊ दान करके दिया था—हाँ, वे भी रडियों का नाच कराते थे पर होली, दिवाली मे, न कि बारह मास! राजा के परिवार की तो वेश्या शोभा है पर अवसर का ध्यान भी होना चाहिये। रामायण मे लिखा है कि—·· ··।" पुजारी जी न जाने क्या-क्या बकते रहे, पर मैं दूसरी ही चिन्ता मे डूब गया। शहर में रहते हुए मैंने बहुत-सी पुस्तकें पढ़ी थीं—जमीदारी प्रथा पर और किसानों की दशा, अन्तर्दशा पर। मेरा दिमाग चकरा उठा सोचते-सोचते। इस तरह की बातों पर अधिक समय तक गौर करने की आदत न थी। मैं इस विपत्ति से जो अन्याय और अनिवार्य रूप से आगयी थी अपनी और अपने गाँव

की रक्षा करने के उपायों का विचार करने लगा पर किसी निश्चित दिशा की ओर न जाकर बीच भँवर में ही घूमता रहा। जमीदार से मिलकर किसानों की कठिनाइयों पर कुछ चर्चा करने की बात भी सोचने लगा पर अकेले जाने से अच्छा हो कि एक जत्थे के साथ चला जाय। सामुहिक रूप से विरोध करना व्यक्तिगत् रूप से विरोध करने की अपेक्षा अधिक प्रभाव शाली होता है। समाचार पत्रों में डेपुटेशनों की बात प्रायः पढ़ा करता था और सगठन का महत्व मैंने पढ़ा था। एक विचार करता और फिर दूसरा। थक कर जब मैं चला तो पुजारी जी ने कहा—तुम्हें भगवान शंकर की सपथ जो कुछ मैंने कहा है उसकी चर्चा किसी से भी मत चलाना। गाँव में सभी एक दूसरे के शत्रु हैं।"

---

(१०)

मैंने दिनेश को एक पत्र लिखा। सारा समाचार खोलकर लिख दिया और अपने विचारों की चर्चा भी कर दी। उसने उत्तर दिया कि—"सँभल कर काम करना। सावधान रहना। पहिले किसानों का सङ्गठन कर लेना अच्छा होगा। अन्याय का सिर झुका कर सहने के माने हैं अन्यायी की हिम्मत बढ़ाना, जिसका परिणाम होगा अन्याय में वृद्धि होना।"

धीरे-धीरे मेरी माता का स्वास्थ्य भी सुधरने लगा। मेरे मन की एक चिन्ता मिट गयी। पर इससे क्या हुआ यह जो दूसरी चिन्ता सिर पर शैतान की तरह सवार थी। मैं रात दिन सोचा करता कि किस उपाय से अपनी रक्षा का रास्ता साफ किया जाय। एक दिन मैंने पिता जी से कहा—"चुप रहना तो

बुरी बात है। आप गाँव भर के किसानों को मन्दिर पर बुलवाइये। मिलकर एक रास्ता ठीक कीजिये। जमींदार की ऊल-जुलूल सभी बातों को स्वीकार कर लेना तो बडी ही कमजोरी है।"

पिता जी तो चुप रहे पर चाचा जी ने कहा—"तुम ठीक कह रहे हो। पहिले मन्दिर पर नहीं, यहीं गाँव के दो चार मुखिया लोगों को बुलाकर बात कर लेना अच्छा होगा।"

मैंने कहा—"यह भी ठीक है। आज ही मैं उन्हें बुलाता हूँ। आप नाम बतलाइये—जगन चाचा, परमेश्वर भैया, देवीदीन चाचा, गणेश, सत राम, मँगरु, भुलई और—"

चाचा ने कहा—"सीताराम को भी बुला लेना अच्छा होगा। क्यों भैया?' आपने मेरे पिता जी से कहा। पिता जी ने कहा—"सीताराम तो जमींदार की नाक का बाल बना हुआ है, हरप्रसाद को बुलवा लो और सातादीन को भी।"

खैर, मैं इन्हें बुलाने के लिये चल पडा। यह तै हुआ कि आज रात को सभी मेरे ही चौपाल पर इकट्ठे होंगे।

धीरे-धीरे सध्या ने अपना काला आँचल फैला कर दिन को छिपा लिया। पच्छिम की गोद में एक बडा-सा तारा चमक उठा—उदास खेमें मे चैत की हवा धीरे-धीरे डोलने लगी। अन्धकार में मन्दिर का ऊँचा शिखर एक मूक साची की तरह चुपचाप खड़ा दिखलाई पड़ता था। सर्वत्र शान्ति थी और मेरे चौपाल पर—आठ दस गरीब किसान चुपचाप बैठे अपने अपने भाग्य का निपटारा करने के तरीकों पर विचार कर रहे थे। धीरे-धीरे बातों का रङ्ग जमने लगा। चाचा ने जब कहा कि—"इस तरह काम नहीं चलेगा जगन भैया! जमींदार सरासर अत्याचार पर उतारू हो गया है। मुनुआ का कहना ठीक

है कि अन्याय का विरोध जी कड़ा करके करना चाहिये। आप लोग यह सोच लीजिये कि इस समय खाने को मुट्ठी भर अन्न भी मोहाल है, फिर नहर के लिये इतना बड़ा कर कहाँ से लावें।"

जगन चाचा बोले—"सो तो ठीक है, पर हम हैं गरीब और जमीदार है राजा! हम गरीब राजा से लड़कर कभी भी सुख से नहीं रह सकते।"

देवीदीन बोले—"लड़ने की बात कौन कहता है। तुम तो बेसिर की बात बोल उठते हो। अरे, हम सब मिलकर जमीदार की सेवा मे चलें—अपनी अपनी विपदा का हाल कहें। वह हमारे पालनकर्ता हैं, माता-पिता है। दया करेंगे ही।"

मैंने कहा--"यहाँ दया का सवाल ही नहीं उठता। दया की कौन सी बात है इसमे चाचा! हम अपने अधिकार प्राप्त करने जा रहे हैं। वे नहर बनवाते हैं, अपने लाभ के लिये। भला हम १२ हजार क्यों दें। वे न जाने कब से हमसे 'कर' वसूल रहे हैं—खुद राजा हैं। १२ हजार क्या वे अपने पास से नहीं खर्च कर सकते ?"

मेरे पिता जी ने कहा—"लाखो की आमदनी है भाई! १२ हजार क्या वह अगर चाहे तो दो चार लाख भी आसानी से खर्च कर सकता है।"

चाचा ने अपनी राय दी—"आप लोग डरते क्यों हैं? जमीदार शेर तो नहीं है, जो खा डालेगा। हमे उचित है कि हम चलकर उससे अपनी कथा सुनावे। मनुष्य है, हृदय रखता है तो सत्य और न्याय पर उसे अवश्य ध्यान देना पड़ेगा।"

मँगरू ने, चिलम को मुँह से हटाते-हटाते कहा—"मैं तो छल-प्रपच की बात नहीं जानता भैया! जमीदार चाहे न्याय

करे या अन्याय, वह है हमारा पालनकर्ता और जो पालन करे वह पिता से बढ़ कर है। गुनुआ तो शहर की सी बात बोल रहा है—हम सीधे-सादे मजदूर-किसान कानून की बात नहीं समझते।"

मँगरू की बात सुनकर मैं झल्ला उठा! मैंने चिल्लाकर कहा—"आखिर तुम क्या कहना चाहते हो? माना कि जमींदार माता-पिता से बढ़कर 'प्रपितमही प्रपितामह' हैं तो फिर भी उनका अन्याय कौन सहेगा। १२ हजार रुपये हम गरीब किसान कहाँ से देंगे। तुम्हारे ५ हल चलते हैं—अच्छे काश्तकार हो। २५०) देने को प्रस्तुत हो—बोलो?"

मँगरू ने कहा—"जमींदार के पैर पड़ेंगे, विनय करेंगे, यदि क्षमा कर दिया तो बड़ी बात है नहीं तो २।३ बीघे खेत बेंचकर दे दूँगा। वे राजा हैं—हम हैं गरीब प्रजा। उनकी जूतियाँ सीधी करना हमारा धर्म है। धर्मपालन नहीं करने से नरक में जाना पड़ता। वेद पुराण में लिखा है—"चेरी छाँड़ि न होउब रानी।" सो भैया . . ."

मैं बात काट कर बोला—"तो तुम्हारी राय है कि प्रत्येक किसान अपना-अपना खेत बेंचकर रुपया दे दे। तुम्हारे अधिकार मे आवश्यकता से अधिक जमीन है। तुमने २।४ क्या १०।१५ बीघे खेत भी बेंच डाले तो कोई हर्ज नहीं है पर, हर प्रसाद भैया महज १० बीघे के काश्तकार हैं और दोनों जून मिलाकर पद्रह जन इनके यहाँ रोटी खाते हैं। यदि ये २ बीघे बेंच डालें तो फिर क्या होगा—सोचो तो।"

"भैया, तुमने अंग्रेजी पढ़ी है"—मँगरू ने कहा—"मैं बहस करना नहीं जानता। साफ-साफ कह दिया कि मैं जमींदार से बैर बढ़ाना नहीं चाहता। २५०) देने पड़ेंगे तो दे

लूँगा। तुम लोगों को जो उचित जान पड़े, करो। मैं बैठे-बैठाये झमेले में पड़ना नहीं चाहता।"

मँगरू की बातों ने मुझे हताश कर दिया। मैं सोच रहा था कि गाँव के किसानों को इस उपद्रव से बड़ा कष्ट है, पर मुझे अनुभव हुआ कि मेरी धारणा गलत थी। यदि किसानों को कष्ट भी था तो उनमें अपने कष्ट को समझने का माद्दा ही नहीं था। यह कोई आश्चर्य की बात है कि पीड़ित इतना अनु भवशून्य बना दिया जाय कि उसे अपनी पीड़ा का अनुभव ही न हो और दूर पर खड़े होकर देखनेवाले का हृदय बिलख उठे—वह सहायता के लिये आत्मविस्मृत होकर दौड़ पड़े पर पीड़ित अपनी पीड़ा को तनिक भी महत्व न दे और उलटे वह रत्तक से यही कहे कि "मैं तो सुखमय जीवन व्यतीत कर रहा हूँ—"तुम झूठ-मूठ मेरे नाम पर क्यों बावेला मचा रहे हो। अपनी स्थिति मे सन्तुष्ट हूँ।"

मैं सिर झुकाकर सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिये इतने मे गणेश बोल उठा—"मँगरू भैया ठीक कर रहे हो। मुनुआ तो कल का छोकरा है। शहर मे रहता है—नयी नयी बातें सीखकर आया है। क्यों दादा (सतराम से) तुम्हारी क्या राय है?"

सन्तराम ने कहा—"मुनुआँ ठीक कह रहा है। जमीं-दार माता-पिता है तो वह माता-पिता की तरह रहे। यह तो गाँव को लूट लेता है। "मोटराना कर" देते है, हाथी खरीद होता है तब 'कर' देते हैं, घोड़े खरीदे जाते हैं तब कर देना ही पड़ता है। दशहरे मे दुर्गामाई की प्रतिमा बनती है जमींदार की कोठी पर—शहर में—और खर्च वसूला जाता है हमसे। यह सब भी कोई तरीका है। तुम देखते नहीं गाँव में किसी के भी छप्पर पर कद्दू-कुँमड़ा है? सभी नोच कर जमींदार के

पालतू ले गये। जगन को पीटते-पीटते अधमरा कर दिया—क्या भाई-चारे का यही धर्म है। अब गाँव की औरतें घर से बाहर नहीं निकलतीं। जिधर देखो उधर ही दो-चार लाठी वाले या पहलवान घूम रहे हैं—औरते एक प्रकार से जेल मे बन्द हैं। मैं इस दुर्दशा को अब वर्दाश्त नहीं कर सकता।" संतराम एक वृद्ध पर हठी व्यक्ति था। गरीबी तो उसके गले की हार थी पर उसकी आत्मा में गरीबी नहीं घुसी थी। वह सदा स्पष्ट और उचित कह देना अपनी शान के अनुकूल समझता था। संतराम की बातों ने उत्साह क्या उत्तेजनापूर्ण वातावरण पैदा कर दिया। चारों ओर से 'ठीक है' 'सतू भैया ठीक कह रहे हैं', "बहुत उचित है" की आवाज उठने लगी। क्षण भर मे मामला ही बदल गया। अवसर देखकर मैं फिर बोला—"तो क्या विचार है सन्तू बाबा, हमे जमींदार के यहाँ चल कर अपनी विपदा की कहानी सुनानी चाहिये ?"

सन्तू बाबा बोले—"हाँ, जरूर। अब वह जुग बदल गया जब प्रजा को राजा सन्तान समझ कर उसके सुख-दु:ख में आगे बढ़ कर हिस्सा बँटाता था। यह बात जरूर है कि हमारे जमींदार राजा हैं और हम हैं गरीब, पर उन्हें यदि अपनी सम्पत्ति का बल है तो हमे भी अपनी गरीबी का बल है, भगवान् का सहारा है!"

मेरे पिता जी ने कहा—"तो अब हमें क्या करना चाहिये ?"

सन्तू बाबा ने कहा—"करना क्या चाहिये, गाँव भर के किसानों को एक साथ चल कर जमींदार को अपने ऊपर होने वाले अन्याय की बात कहनी चाहिये।" और⋯⋯।"

बीच में ही झँगरू बोल उठा—"अगर जमींदार हमारी प्रार्थना पर ध्यान न दे तो ?"

मैं बोला—"तो फिर सब को जमा हो कर आगे के कर्तव्य पर विचार करना उचित होगा।"

फिर एक बार तरह-तरह की आवाजें आने लगीं—'हम सब को जमींदार पीस डालेगा', 'वह नाराज होगा, मुकदमे चलवा देगा, जुल्म पर जुल्म करेगा, इत्यादि-इत्यादि।'

सन्तू बाबा ने चिढ़ कर कहा—"तो फिर जो जी में आवे सो तुम लोग करो। मैं तो मुनुआ की राय के साथ हूँ। वह अगर आग में भी कूदने को कहेगा तो मैं कूद पड़ूँगा। मैं तो केवल शरीर से ही गाँव में रहता हूँ—शहर में नौकरी करके पेट चलाता हूँ। वह—जमींदार—मेरा क्या कर लेगा। ज्यादा नाराज होगा तो दो रोटियाँ अधिक खा लेगा—बस! पर मैं कहे देता हूँ, याद रक्खो—वह इस बार गाँव को मिट्टी में मिलाये बिना नहीं छोड़ेगा।"

सन्तराम की बातों से सन्नाटा छा गया। अन्त में बहुत वाद-विवाद के बाद यह ठीक हुआ कि कल मन्दिर पर गाँवभर के किसानों को एकत्रित करना चाहिये, वहाँ जो तै होगा वही किया जायगा। आधीरात के बाद जब सब चले गये तो चाचा ने दीर्घ-निश्वास त्याग कर कहा—"सभी दब्बू हैं, भेड़ों की तरह जी रहे हैं—अभागे कहीं के!"

---

(११)

सारी रात मैं किसानों की मनोवृत्ति पर विचार करता रहा। मैं देखता हूँ कि जमींदार के अन्याय को हमारे गाँव के किसान आसानी से सहने को प्रस्तुत हैं। यह एक विचित्र बात है कि विपत्तिग्रस्त को बड़ी कठिनता से यह बतलाना पड़ रहा है कि

वह विपत्ति की दलदल में अपने न केवल परिवार के साथ ही फँसा हुआ है बल्कि अपने भविष्य को भी उसने बाद नहीं किया। सब से पहिले तो हमारी वर्तमान स्थिति का ही हमें ज्ञान होना चाहिये। 'मानिकपुर' एक बड़ा और आबाद गाँव है। जमींदार को इस गाँव से हजारों की आय होती है। यह सब तो ठीक है पर अब क्या किया जाय। कोई बात मन मे नहीं समाती थी। न जाने किस समय भगवती निद्रा-देवी ने मेरे व्याकुल और चिन्ता-ग्रस्त मन को अपने मन्त्र बल से शान्त कर दिया—मैं सो गया। रात कैसे बीती, मुझे पता नहीं, पर सुबह मैंने भाँप लिया कि गाँव में एक प्रकार की सनसनी-सी फैल गयी है। सभी के चेहरे पर प्रश्न-सूचक चिह्न वर्तमान था। मैं जब मन्दिर की ओर गया तो रास्ते में बहुत से किसान मिले। वे बोलते तो कुछ न थे, उनकी घबरायी हुई तथा उत्सुक आकृति कह रही थी कि वे कुछ चिन्तित हैं, कुछ जानना चाहते हैं। संध्या समय फिर मन्दिर पर एक-दो करके किसान जमा होने लगे। कुछ अपरिचित सूरतें भी नजर आयीं जो सम्भवतः जमींदार के गोइन्दे रहे होंगे। धीरे-धीरे गाँव के अधिकांश किसान बैठ गये। सन्तराम को मैं खासतौर से बुलाने गया था। मैं सोचता था कि यद्यपि मैं भी एक किसान हूँ, पर लगातार ८, १० साल शहर में रहने के कारण मैं देहात के खास मामलों से दूर जा पड़ा था। मैं किसानों की मनोवृत्ति का भी अन्दाज ठीक-ठीक नहीं लगा पाता था।

थोडी देर बाद फिर चर्चा छिड़ी। सन्तू बाबा ने एक कुशल राजनीतिज्ञ की तरह किसानों को समझाना आरम्भ किया। सभों के हृदय मे बात उतर गयी, पर अब यह सवाल पेश हुआ कि जमींदार के पास कब चलना चाहिये, तो मैंने अच्छी तरह देखा कि पचायत मे एक प्रकार का आतक छा गया। सभी

अपनी असमर्थता प्रकट करने लगे। एक कोने से आवाज आई—'रामू भैया जायँगे ?' तो भीड़ मे से रामू बोले—'भाई मैं तो आज सुबह देवीपुर चला जाऊँगा। वहाँ मेरी लड़की ब्याही है। वह बीमार है।' दूसरी ओर से किसी ने कहा—"मँगरू भैया क्या कहते हैं"—तो मँगरू बोले—"हाँ, मैं तो तैयार हूँ पर, मुझसे जमींदार नाराज है। विश्वास न हो तो गणेश मामू से पूछ लो।"

गणेश मामू बोले—"यही हाल तो मेरा भी है।" इसी समय मैंने देखा कि भीड़ के पीछे जो किसान बैठे थे, वे धीरे-धीरे खिसक भी रहे हैं। देखते-देखते भीड़ पतली हो गयी और यह निश्चय नहीं हो सका कि जमींदार के यहाँ तक चलने वालों में किनका-किनका नाम लिखा जाय। लोग ऐसे बेमन से पंचायत छोड़ कर जा रहे थे मानों किसी व्यर्थ काम मे इन्हें जोता जाने वाला हो जिससे किसी का भी कोई लाभ नहीं होने का। किसानों के रुख से मुझे बड़ी निराशा हुई—मैं मन ही मन रो उठा। जी चाहता था कि इसी दम शहर चला जाऊँ।

मैंने कहा—"सन्तू बाबा, मेरा दिल टूट गया। जब हमें अपनी ही विपदा प्यारी लगती है तो फिर वह मूर्ख है, जो ...रे लिये अपने प्राण होमने की चेष्टा करे किसी की इच्छा ...प्रतिकूल—बलपूर्वक—किसी का हित करना तो पल्ले सिरे की मूर्खता है।"

सन्तराम ने कहा—"बेटा, ये खुद समझेंगे, पर अभी विलम्ब है। परिस्थिति किसी को मिटा देती है तो किसी को बना भी देती है। धैर्य से काम करना चाहिये।"

टूटे हुए दिल से मैं घर की ओर चला। मेरे चाचा जी तो इतने क्षुब्ध थे कि उस दिन उन्होंने भोजन भी नहीं किया। वे मेरे पिता जी से कहने लगे—'भैया, यह पशुओं का गाँव है।

यहाँ रहना क्या है अपने आपको खतरे में रखना है। जमींदार मानो शेर है! भला यह कौन सी बात है कि जब जमींदार के यहाँ तक चलने का विचार पेश किया गया तो लोग वेशर्म की तरह खिसकने लगे। किसी के खून में गर्मी का नाम भी नहीं है।" पिताजी ने बुजुर्गाना तरीके से जवाब दिया—तुम नहीं जानते। गरीब किसान जमींदार के सामने जाते डरते हैं—सदा से जिसके जूते खाते, सामने नाक रगड़ते रहे उसके सामने एकाएक सिर उठा कर खड़ा होना कठिन है। मैं तो कहता ही था कि इस तरह की पचायतों से कुछ होता जाता भी नहीं और उल्टे आपस की तनातनी बढ़ जाती है। तुमने देखा नहीं—जमींदार के भी कुछ गोइन्दे आये थे, जो मन्दिर के नीचे खड़े हो कर सब सुन रहे थे। अब जमींदार कोई नया रुख अख्तियार करेगा।"

"परवा नहीं"—मेरे चाचा ने गम्भीर स्वर में कहा। उनकी गम्भीर ध्वनि मेरे हृदय के प्रत्येक बूंद से टकरा कर प्रतिध्वनि उत्पन्न करने लगी—"परवा नहीं—परवा नहीं! दरो-दीवार से आवाज आयी—'परवा नहीं!' गम्भीर रजनी ने हुँकार ध्वनि करते हुए कहा—"परवा नहीं।" मेरी थकी हुई आत्मा ने कहा—"परवा नहीं" और मैंने भी उत्साहित हो कर कहा—"चाचा, परवा नहीं।" हम सोने की तैयारी कर रहे थे कि सन्तू बाबा आये। आपने बहुत ही धीरे से मुझे अपने साथ चलने को कहा। मैं उनके पीछे हो लिया। वे धीरे-धीरे अपने घर की ओर पहुँचे। धीरे से दरवाजा खोल कर भीतर घुसे फिर दरवाजा बन्द कर दिये गये। मैंने देखा कि दो-तीन मनुष्य लालटेन के मन्द प्रकाश में चुपचाप बैठे हैं जो देहाती नहीं कहे जा सकते। रात्रि आधी से अधिक व्यतीत हो चुकी थी—जमींदार के पहरेदार आवाज़ लगा रहे थे।

अब मेरा मन घर में नहीं लगा—सीधे शहर की ओर चला। रायसाहब की कोठी मे पहुँच कर मैंने पता लगाया कि दिनेश एक नये मकान में उठ कर चला गया है। मैं कुछ देर को चकित-सा बैठा रह गया, इतने मे प्रभुदयाल आया। मैं कोई एक मास पर घर से लौट रहा था। प्रभुदयाल से पता चला कि दिनेश कालेज मे नाम लिखवाने की फिक्र मे है। प्रभुदयाल तो वर्षों से स्कूल छोड़े बैठा था—आवारागर्दी ही उसे प्रिय थी। वह मुझे चिन्तामग्न देखकर बोला—"सुरेश तुम यहीं रहो। अकेलापन मुझे काटे खाता है। इधर पिता जी भी बाहर गये हुए हैं—भया उनके साथ हैं। मैं तत्काल न तो 'हाँ' कह सका और न 'ना'। सोचता था कि एकबार दिनेश से मिल कर तब रहने का निश्चय करना होगा—साथ ही एक बात यह भी थी कि आखिर दिनेश ने क्यों अपने मौसा के महल को त्याग दिया। आखिर मैं तो दिनेश के ही साथ रायसाहब के महिमामय फाटक के भीतर प्रवेश कर सका था। यदि दिनेश से मेरी मैत्री न होती तो मुझ-सा गरीब और अज्ञात मनुष्य को ये बड़े-बड़े लट्ठधारी द्वाररक्षक फाटक पर भी क्षण भर खडा होने नहीं देते, महल के एक छोटे से हिस्से पर दखल जमाकर रहता और दोनों जून भर पेट आहार न तो कल्पनातीत बात थी। मैं हठात् दिनेश की उपेक्षा कर को तैयार न हो सका। एक बात यह भी थी कि प्रभुदयाल का साथ भी मेरे लिये मूल्यवान् था—मैं पाकेट खर्च और सैर सपाटे का सुख मितव्ययी दिनेश के साथ रह कर कहाँ से जुटाता। आदमियत और लोभ का जो तुमुल द्वन्द्व मेरे हृदय मे हुआ, उसने मेरे मन को विचलित कर दिया। मैं तूफान मे पडी हुई नैया की तरह डगमग करने लगा। मैं स्पष्टत. देखने लगा कि कभी मनुष्यता लालच को दबाती तो

कभी लालच मनुष्यता को। अन्त मे मैं इसी निश्चय पर पहुँचा कि एक बार पहिले दिनेश से मिल कर तब आगे का कार्यक्रम ठीक करना चाहिये और मुझे कुछ खास खास आदमियों से भी मिलना था जिनका परिचय-पत्र मेरी गुप्त जेब में छिपा हुआ था। मैंने प्रभुदयाल से कहा कि—"अच्छी बात है, पर पहिले मुझे दिनेश के नये मकान का पता बतला दो। उसकी एक चिट्ठी मेरे पास है, जो जरूरी है।"

प्रभुदयाल बोला—'किसी दरवान को पत्र दे दो, वह पहुँचा देगा। तुम थके हुए हो—विश्राम करो।" इतना कह कर वह कमरा खुलवाने के लिये दरवान को पुकारने लगा—"रामसिंह, वैधनाथसिंह, कारूसिंह—सभी मर गये। सालों को बेंत से ठीक करूँगा, जब खोजो तो गैरहाजिर। कहाँ है प्रसाद! यह अभागा भी मर गया।" मै उसकी तत्परता और उत्सुकता से इतना किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया कि विरोध नहीं कर सका। खैर, दो तीन नौकर एक साथ दौड़े आ गये। किसी के हाथों में आटा लगा हुआ था तो कोई मिट्टी लगा हुआ लोटा लिये हुए था। इन पालतू मनुष्यों को देख कर मेरा मन सिहर उठा— पेट की महिमा ईश्वर की महिमा से किसी भी अवस्था मे कम नहीं है।

कमरा खोला गया—झाड़ू लगा कर मेरा बिस्तर ठीक कर दिया गया। स्वयम् प्रभुदयाल ने खड़े होकर सारी व्यवस्था ठीक कराई। हाथ पैर धोने के लिये एक खिदमतगार जल लिये खडा था—आज मेरे स्वागत सत्कार का पारावार नहीं दिखलाई पडता था। तत्काल नशा और सिगरेट की व्यवस्था की गयी। मैं तत्काल अपने को भूल कर एक अमीरजादा समझने लगा। गाँव की धूलिधूसरित स्मृति धीरे धीरे क्षीण होती गयी, रायसाहब के प्रकाशोद्भासित महल के चकाचौंध

के सामने। प्रभुदयाल ने मुझे शान्त देख कर कहा—"अच्छा हो अब आराम करो, मैं दो घण्टे में आता हूँ।"

वह चला गया, पर मेरा मन दिनेश के चारों ओर चक्कर काटता रहा। रह रह कर मैं सोचने लगता था कि वह कहाँ है और क्यों इस कोठी से चला गया। मेरे प्रश्नों का उत्तर कौन देता—कमरा का मूकजीवन तो केवल हमारे सुख-दुखों का दर्शक मात्र है, साक्षी तो हमारा मन ही हो सकता है। मैं थका हुआ तो था ही—सो गया।

मैं दिनेश के विषय मे कुछ जानना चाहता था। नींद उचटी-उचटी-सी आयी। शंकाग्रस्त मन कहीं टिकता नहीं। कुछ देर तक करवटें बदलता रहा। देखते-देखते सध्या आ गयी रायसाहब के हरे भरे बाग के आँगन मे। एक एक करके कोठी के सभी कमरे प्रकाशोद्भासित हो उठे—एक केवल मेरी ही कोठरी अन्धकार मे मुँह छिपाये रही। मगलोत्सव मे भाग लेने के अधिकार से बचिता विधवा की तरह उदास इस कोठरी को एक बार मैंने चारों ओर देखा—मुझे ऐसा लगा कि दिनेश की गरम साँस इसके कोने-कोने मे भरी हुई है। मैं भावुक नहीं हूँ और न कवि हूँ। प्रतिकूल परिस्थितियों से टकराते-टकराते मेरा हृदय-हृदय नहीं कहा जा सकता। रात-दिन धुक-धुक करनेवाले किसी ऐसे षड्यन्त्र से इसकी तुलना की जा सकती है जो अपने विविध सहायक यन्त्रों के सहयोग से धक-धक करता रहे, पर उसका अपनापन एक निर्जीव धातुखंड के अतिरिक्त और कुछ न हो।

दिनेश की सुखमयी स्मृति मेरे हृदय में रह-रहकर चिकोटी काटने लगी। इसी समय प्रभुदयाल आया। मैंने कहा—"भाई, अब दिनेश का पता बतला दो तो मैं उससे मिल लूँ।" मैंने देखा कि सहसा उसका चेहरा गम्भीर हो गया। उसने मानों

अपने भावों को दबाने का प्रयत्न किया, पर मेरी नजरों से उसकी विकलता भी छिपी नहीं रही। मैं फिर बोला—"भाई, मैं तुरन्त आ रहा हूँ। तुम्हें विश्वास होना चाहिये कि मैं यहीं रहूँगा—दिनेश से दो शब्द कहने हैं और बल देना है।

प्रभुदयाल बोला—"अच्छा मैं एक आदमी तुम्हारे साथ किये देता हूँ।" इतना कह कर वह बेमन-सा उठा अपने उस "एक आदमी" को बुलाने के लिये। मेरे सामने एक प्रश्न यह पैदा हो गया कि आखिर दिनेश का नाम सुनते ही प्रभुदयाल अचानक उदास-सा क्यों हो उठता है, तथा दिनेश ने भी अपने किसी पत्र मे स्थान-परिवर्तन की चर्चा क्यों नहीं की। यह सारा मामला अन्धकार का ऐसा पहाड बन गया कि इसके भीतर का रहस्य समझना—एक अनजान व्यक्ति के लिए—कठिन हो उठना स्वाभाविक है। मैं एक प्रकार से एक ऐसे उलझन मे पड़ गया कि जिसका सीधा सम्बन्ध मुझसे तो न था, पर प्रकारान्तर मे मैं भी उसके भीतर ही समझा जा सकता हूँ।

प्रभुदयाल के दिये हुए मार्ग-प्रदर्शक के साथ मैं चला, पर जाते-जाते प्रभुदयाल ने मुझसे प्रतिज्ञा कराली कि मैं यथासम्भव शीघ्र लौटने का प्रयत्न करूँगा, साथ ही उसने यह भी कह दिया कि कई आवश्यक बातों पर विचार करना है, जिनका सम्बन्ध मेरे भावी जीवन से है। यह एक प्रचड आकर्षण था। मैं चल पडा। कई सडकों और गलियो की परिक्रमा कर लेने के बाद मैं एक ऐसे मकान के सामने पहुँचा जो शहर के अन्तिम छोर पर—गरीबों के मुहल्ले मे था। मकान साधारण—खपरैल का—था। सडके ऊबड-खाबड और ऐसी थी कि कम से कम कीमती मोटर उस पर से नहीं गुजर सकती थी। दोनों ओर की नालियाँ खुली थीं जो लबालब गलीज से भरी हुई थीं। जान

पड़ता था कि यह मुहल्ला शहर का गलित कुष्ट-ग्रस्त एक अंग हो।

मार्गप्रदर्शक ने आगे बढ़ कर दरवाजे पर थपकी दी। थोड़ी देर में बिखरे हुए बालों वाला एक अधेड़ बाहर निकला जिसकी आँखें लाल और चढ़ी हुई थीं। दुर्गन्धि के मारे यद्यपि उस घर के दरवाजे पर ठहरना कठिन ही था, पर मैं तो दिनेश के ध्यान में और उसके इस स्थान-परिवर्तन की चिन्ता में ऐसा लिप्त था कि अपने आप को एक प्रकार से बिसार ही बैठा था। मेरा परिचय पूछ कर वह अधेड़ घर के भीतर घुसा और तत्काल दिनेश के साथ लौट आया। दिनेश को देखकर मैं अकचका गया। वह इस समय एक वहशी की तरह दिखलाई पड़ता था। अर्थशून्य दृष्टि थी, फक् चेहरा था, गाल पीले और अस्वाभाविक ढंग से पिचके हुए थे, तैलहीन रूक्ष केस बिखरे हुए थे तथा एक कमीज, जो मैली-सी थी, उनके गले का हार बनी हुई थी। उसने मुझे देखकर मुस्कुराने की चेष्टा की, पर सूखे हुए होठों के बीच में दो-चार स्वच्छ दाँत चमककर ही रह गये। वह ऐसी हँसी हँस रहा था, जो अपने किसी भी सहृदय दर्शक को रुलाये बिना नहीं रह सकती थी। उसने गला साफ करके कहा—"आखिर तुम भी आ ही गये—खैर, चले आओ भीतर।" मार्गप्रदर्शक को लक्ष्य कर कहा—"अच्छा, आप रायसाहब के अर्दली हैं। जाइये। बाबूसाहब को मेरा धन्यवाद कहियेगा।"

दिनेश ने ऐसे स्वर में उनसे ये शब्द कहे कि प्रभुदयाल का अर्दली मानो आपाद मस्तक काँप उठा। उसने सिर झुकाकर—मानों दिनेश के शब्द उसके कानों पर पहुँचे ही नहीं मुझसे कहा—"सलाम बाबू जी—सरकार पूछेंगे तो आपके लौटने का कौन-सा समय बतलाऊँगा।" मैंने दिनेश के गंभीर चेहरे

पर अपनी आँखें गड़ा कर कहा—"कह देना कि छुट्टी मिलते ही मैं आजाऊँगा।" मेरा उत्तर सुन कर अर्दली इस तरह भागा कि उसने मानो अपने को बन्दूक के सामने से बचा हुआ समझा। दिनेश ने गुर्राकर कहा—"पाजी—खैर देखा जायगा।" मेरा हृदय धड़क उठा। सच बात तो यह है कि मैं मन ही मन दिनेश से डरने-सा लगा। मेरा वह सौम्य, सुन्दर, सरल, हास्योत्फुल्ल दिनेश और इस गम्भीर, कठोर, उग्र, रुद्र दिनेश से बहुत ही पार्थक्य था। केवल एक मास में, केवल चन्द दिनों में किसी मे इतना परिवर्तन हो सकता है—यह जरा असम्भव सी बात है, पर परिस्थिति की महिमा कौन जानता है।

मैं घर के भीतर घुमा तो दिनेश ने अपने हाथों से अच्छी तरह दरवाजा बन्द कर दिया। उसने फिर उस अधेड को पुकार कर कहा--"गोकुल, जरा इधर-उधर ध्यान रखना। गोकुल खूँख्वार कुत्ते की तरह गुर्रा कर एक कमरे में घुस गया।

दिनेश ने जिस घर में मेरा स्वागत किया वह बाहर से जैसा असुन्दर था वैसा ही भीतर से भी असुन्दर था। छोटी-छोटी कई कोठरियाँ थीं और बीच में था एक छोटा-सा आँगन। घर पुराना था। एक छोटे से बरामदे में दो-चार कुर्सियाँ पडी थीं, एक गोल मेज भी थी। एक चौकी पड़ी थी जिस पर दिनेश का बिस्तरा लगा हुआ था। फर्श अखबारों से भरा हुआ था। कोई भी आगन्तुक बिना अखबारों को रौंदे बरामदे में टहल नहीं सकता था। दिनेश की चौकी पर मोटी-मोटी कई पुस्तकें बिखरी हुई थीं। मेज भी पुस्तकों से भरी थी। घर में एक तरह की निष्ठुर उदासी छायी हुई थी। लिखे कागज के टुकडे मेज पर ढेर के ढेर पडे थे और एक कलम और दावात भी फर्श पर रक्खी हुई थी। एक छोटी-सी चटाई पर दिनेश का चश्मा पडा था—मैंने सोचा कि वह इसी चटाई पर बैठ कर लिख रहा

होगा। दिनेश के जीवन मे भयकर परिवर्तन देख कर मैं सहम गया। किस प्रकार बातों का सिलसिला शुरू किया जाय, यही मैं सोच रहा था कि दिनेश बोला—"अच्छे तो रहे।"

मैंने कहा—"किसी तरह भैया, पर यह तो बतलाइये कि तुमने रायसाहब का घर क्यों छोड दिया। खैर, छोड़ दिया तो बुरा नहीं किया, पर मुझे भी अपने इस निश्चय की सूचना नहीं दी। यदि मुझे तुम्हारे इस नये घर का पता रहता तो मैं वहाँ आज इस तरह नहीं फॅसता। सीधे यहीं चला आता।"

मैं उत्तर की प्रतीक्षा मे दिनेश का मुँह देखने लगा। वह सिर झुकाये मेज पर अपनी उँगली से कुछ लिख-सा रहा था। कुछ क्षण मैं साँस रोके बैठा रहा। दिनेश ने धीरे-धीरे सिर उठाया। उसका चेहरा क्षोभ, विषाद और घृणा से भरा हुआ था। वह बोला—"हूँ, मैंने उस कोठी से अपना सम्बन्ध हटा लिया। तुमने वहीं डेरा डाला है—अच्छा ही किया। मेरे लिये यह कच्चा घर उस विशाल अट्टालिका की अपेक्षा कहीं अधिक सुखप्रद है—मैं यहाँ सुखी हूँ—सुरेश! सुखी हूँ!" मेरा साहस बढ़ा—मैंने पूछा—"दिनेश, यह तो बतलाओ, क्यों तुमने अपने मौसा का घर छोड दिया? वहाँ की अपेक्षा यहाँ क्या खाक सुख होगा—देखते नहीं कच्चा घर है, नमी है, प्रकाश और हवा की भी यहाँ कमी है। यहाँ रहने से स्वास्थ्य पर खतरा है . . . . . ।'

दिनेश ने कहा—"तुम्हारी बाते सुन कर मुझे तो ऐसा जान पड़ा कि तुम जन्म से ही महलो मे रहने के अभ्यासी हो—वाह सुरेश! मैं तो . . ।"

दिनेश उत्तेजित हो कर बोल रहा था—शर्म के मारे मेरा सिर झुक गया, दिनेश बोलता ही गया—'हाँ, मैं तो समझता था कि तुम अपने कच्चे आँगन और अपनी गरीबी को नहीं

बिसारोगे. पर आज देखता हूँ कि तुम मनुष्य के प्रति बेवफा निकले।'

लज्जा के मारे मैं अधमरा-सा हो गया। मैं बोला—"क्षमा करो भैया! क्षमा करो। मै किसी दूसरे मतलब से घर की बात कह रहा था। हमारे देहाती घर के इधर उधर खुला स्थान होता है पर यह घर तो घनी आबादी में है—इसीलिये हमारे देहाती घरों से बनावट में सुन्दर रहते हुए भी उतना स्वास्थ्य-प्रद नहीं कहा जा सकता।"

मैंने देखा कि दिनेश मानों आत्म-विस्मृत-सा बैठा हुआ निर्नि-मेष दृष्टि से दीवार की ओर ताक रहा है—उसकी आँखों की पुत-लियाँ—काँच के दो स्वच्छ नीले टुकडों की तरह स्थिर हैं। उसकी यह अवस्था देखकर मैं डर गया। मुझे जान पड़ा कि कहीं यह पागल तो नहीं हो जायगा। केवल तीस दिनों में इतना परिवर्तन! कोमल हृदय दिनेश, भावुक दिनेश, प्रपच-रहित दिनेश, साहसी और नवयुवक दिनेश की यह कैसी अवस्था हो गयी है! इस परिवर्तन का कारण रूप कौन है—किसने इस फूल को रौंद कर नष्ट कर डाला, किस जादू के जोर से यह कोमल-कुसुम भयानक काँटा के रूप मे बदल रहा है।

सन्ध्या हो गयी—अन्धकार छा गया, पर दिनेश चुपचाप बैठा रहा। थोडी देर मे उसने दीर्घ निश्वास छोड़ कर कहा—"सुरेश, तुम वहीं रहो। मैंने सोच लिया। पर—एक बार मुझसे नित्य मिल लिया करना। हाँ, जरा सावधान भी रहना। यह महल नहीं विषैले साँपों की भयानक बाँबी है।"

मैं ऐडी से चोटी तक काँप उठा। इसी समय एक छोकरा मेज पर चुपचाप लैम्प रख कर चला गया जैसे मूक-सिनेमा का यह एक दृश्य हो।

---

(१२)

मैं कोई आधी रात को डेरे पर लौटा। मैं अनुभव करता था, जैसे मेरे पीछे-पीछे कोई छाया की तरह चल रहा हो। मेरे लिये यह एक नया अनुभव था। रास्ते मे मैं दिनेश की बाते सोचता जा रहा था—कोठी त्याग का जो कारण उसने बतलाया था, वह महा भयानक था। मैं रह-रह कर घबरा उठता था—किसी का इतना पतन भी हो सकता है। यह एक अटल सत्य है कि ससार मे सब कुछ सम्भव है। दिनेश के जीवन मे सरसता के स्थान पर कटुता, कोमलता के स्थान पर कठोरता, कवित्व के स्थान पर नरक की ज्वाला और मानवता के स्थान पर पिशाचता भर देने का सच्चा अपराधी कौन है। मैं किसे दोष दूॅ। मैं उस समय तक भाग्य को मानता था—ईश्वर पर आस्था थी। सोचा भाग्य का खेल है, ईश्वर की अकृपा है।

दिनेश के डेरे से मैं कोई ८ बजे रात को लौटा, पर मेरी जेब में जो चिट्ठियाॅ थी, उन्हें भी ठिकाने पर पहुॅचाना था। मैं धीरे-धीरे शहर के दूसरे छोर पर चला। इस ओर घनी आबादी थी और प्राय दरिद्र और अछूतों की बस्ती थी। छोटे-छोटे कच्चे घर एक दूसरे से सटे हुए और गन्दे थे—इस मुहल्ले मे दो एक बार और भी आया था—मैं जानता था कि यह कितना बदनाम मुहल्ला है। चोरी, डकैती, खून, शराब खोरी सभी इस ओर सम्भव है। यहाॅ की सडकों पर न तो लालटेनें जलती हैं और न कोई राहगीर ही आता-जाता मिलता है। इक्का-दुक्का शराबी या कपड़े से मुॅह ढके तेजी से जाता हुआ कोई 'तिकडमी' यदि रास्ते मे मिल जाय तो अहोभाग्य।

यहाँ के शराबखानो और जूआ के अड्डों से मैं भलीभाँति परिचित था, यही कारण है कि अपने प्रिय परिचित पथ पर मेरे पैरों को चलने मे असुविधा के स्थान पर सुख का ही अनुभव हुआ। अन्धकारपूर्ण गलियो मे जो नाली की स्वाभाविक दुर्गन्धि भरी हुई थी, उसके अतिरिक्त प्रत्येक्त घर के पास से गुजरते हुए खास-खास तरह की दुर्गन्धिमयी लपटें आ जाती थीं—जैसे—शराब की, मदक की, मछली भुने जाने की, चर्बी पकाये जाने की, सडे हुए माँस की, या पाखाने की। कभी-कभी मेरा पैर उन छोटे-छोटे खड्डों मे पड़ जाता था, जो तमाम सड़क पर स्थान-स्थान पर बनी हुई थीं और जिनमे कीचड़ या गलीज भरी होती थी। एकाध बार तो किसी बैठे हुए गधे या कूडा-गाडी से टकराते-टकराते मैं बचा।

बायीं गली के भीतर घुस कर मै आगे बढ़ा—यह गली इतनी पतली थी कि इसमे खूब मोटे आदमी का प्रवेश भी कठिन था। अन्धकार के मारे तो हाथ पसारे नहीं सूझता था। शहर की समस्त शोभा यहाँ पर आकर सड़ गयी थी। सूअरों के रहने योग्य 'खोभार' मे रहनेवाले इस मुहल्ले के निवासियों का जीवन भी कुछ कम अन्धकारमय, दुर्गन्धिमय तथा सकीर्ण न था। शराब यहाँ की स्फूर्ति थी, जूआ यहाँ का विनोद था, दगा-फसाद, यहाँ का सामाजिक जीवन था, व्यभिचार यहाँ का मनोविनोद था और चोरी यहाँ का व्यवसाय थी। यहाँ के निवासी दरिद्र थे और दरिद्रता समस्त दुर्गुणों की जननी है, समस्त पापों की खान है।

बडी कठिनाई से मैं अपने निश्चित स्थान पर पहुँचा यह एक जूआखाना था। जिस घर मे यह जूआखाना था, वह बाहर से खँडहर-सा दिखलाई पड़ता था, पर भीतर रात-दिन 'छक्के पौ' की बहार रहती—दगा-फसाद का समा बँधा रहता

था, चोरी पाकटमारी की घूम रहती थी। शहर में कहीं भी ताले तोड़े जाते, कहीं भी पाकटमारी जाती, कहीं भी खून होता. सब की खबरें यहाँ पहुँचती—सभी अपराधी यहॅ शरण लेते। मैंने दरवाजा खट-खटाया। अन्धाकार मे से एक भूत-सा काला मनुष्य निकल आया—"मैंने कहा—'वी' हैं?" उसने पूछा—"तुम कौन हो।" मैंने अपना सांकेतिक नाम बतला दिया। वह निर्भय होकर मेरे निकट चला आया। मैंने देखा, उसके एक हाथ मे लाठी थी, जिस पर एक बड़ा-सा 'कॉटा' लगा हुआ था। सिर से पैर तक काला कपड़ा लपेटे हुए वह साक्षात् यमदूत-सा दिखलाई पड़ता था।

ऑखे गड़ा कर उसने मेरी सूरत देखी। मैंने कहा—"क्या मैं 'डी' नहीं हूँ—देख क्या रहे हो।" "नहीं-नहीं भैया!"—वह बोला—"हमे बराबर सतर्क रहना पड़ता है। कल आफत आते-आते बची। जब तक मेरे हाथ मे लाठी है, तब तक किसका मजाल जो धोखा दे। कल जो मुझे धोखा देना चाहता था, उसे खुद खतरे मे पड़ना पड़ा। आज वह अस्पताल में पड़ा, मौत की राह देख रहा है—एक लाठी मे साला फैल गया। भाई, ससार मे न्याय नहीं है। मालिक ने मुझे सहज .. घड़ाभर ताड़ी देकर टाल देना चाहा, पर मैं अड़ गया, पुरस्कार के लिये। बड़ा पाजी है। जूआ की बदौलत मोटा हो गया है—किसी दिन सुसरे का सिर नहीं फोड़ दिया तो मेरा नाम बदल नहीं।"

वह न जाने क्या-क्या बड़बड़ाता रहा। मैंने कहा—"दरवाजा खुलवाते हो या मैं लौट जाऊँ। तुम तो आदि के शैतान हो।"

"नहीं भैया"—बदल बोला—"मैं तुमसे कुछ कहता हूँ। तुम तो मेरे मालिक हो। वह—वह साला महाबीर! जूआ-

खाने का मेट बना है।" उसी ने मालिक के कान भर दिये हैं। अच्छा—हाँ, जाओ न दरवाजा खुला है।" वह फिर गिड़गिड़ा कर बोला—"कुछ पैसे देकर जाना भैया! आज खाने-पीने का कोई डौल नहीं है।"

मैंने कुछ पैसे उसकी फैलायी हुई हथेली पर धर दिया।

बदल के मुँह से शराब और तम्बाकू की कड़ी बदबू आ रही थी। यह एक नामी डकैत था और था, जुआखाने के मालिक का प्रिय सहचर और विश्वासपात्र अङ्गरक्षक! मैं भीतर घुसा। कई कोठरियाँ और बरामदे पार कर के एक पतले मार्ग से मै मकान के पिछले हिस्से मे पहुँचा। अन्धकार मे अन्धे की तरह टटोलता-टटोलता मैं आगे बढ़ रहा था। जान पड़ता था कि मैं किसी तिलिस्मी कहानी का प्रधान पात्र होऊँ तथा अपनी प्रेयसी का उद्धार करने के लिये अन्धा-धुन्ध तिलिस्म के रहस्य-पूर्ण अन्धकार मे दौड रहा होऊँ।

आखिर मैं निश्चित स्थान पर पहुँच गया। बन्द दरवाजे के दरारों से प्रकाश की रेखा निकल रही थी तथा भीतर से कोलाहल की आवाज आरही थी। मैंने धीरे से धक्का देकर दरवाजा खोल दिया। शराब तम्बाकू की कड़ी गध ने मेरा स्वागत किया। कमरा धूए से भरा हुआ था। झुड के झुड शराबी ऊधम कर रहे थे—बोतल और प्यालों का ढेर लगा हुआ था—गाली-गलौज, मार-पीट और बीच-बीच में कलवरिया के स्वामी की गम्भीर ललकार!

कलवरिया का कहिये या इस नरक का कहिये, स्वामी था एक पुराना पाजी असामी—'पलटूराम।' पलटू का जीवन लाछना और धिक्कार का जीवन कहा जाय तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं थी। अपने जीवन को इसने छोटी-मोटी चोरियों से आरम्भ करके बड़ी-चढ़ी डकैतियों तक पहुँचा दिया था।

गोरा मोटा जवान, बड़ी-बडी मूछें—ठीक "हिंडनबर्ग" की सी। चेहरा भरा हुआ तथा रोबीला। गले की आवाज गम्भीर और कर्कश। दृष्टि कठोर और तीक्ष्ण। बस यही पलटू की हुलिया है। यह पहिले एक जमींदार का खिदमतगार था। इसकी लड़की थी परम सुन्दरी और नवयुवती। जमींदार ने जब उस पर अपने जादू की लकडी फेंकी तो पलटू के रोम-रोम मे प्रतिहिंसा की आग भड़क उठी। यह एक रात को जमींदार का खून करके और साथ ही अपनी लडकी का भी गला घोंट कर जो चम्पत हुआ सो १० साल के बाद 'गंगासागर' के मेले मे—साधुओ की जमात मे—पकडा गया। मामला पुराना पड गया था। पुलिस ने किस तरह पैरवी की यह तो मुझे पता नहीं पर सात साल के लिये जेल जाकर पलटू ने अपने डबल पापो का प्रायश्चित किया। यदि सच पूछा जाय तो जेल के फाटक के भीतर कदम रखते ही पलटू पर भाग्य-लक्ष्मी रीझ गयीं। वहाँ ऐसे-ऐसे उस्तादों का सत्सग इसके लिये सुलभ हुआ कि जब यह जेल से निकला तो निकलते ही इसने शहर मे तहलका-सा मचा दिया। धडाधड़ ताले टूटने लगे। बच्चे गायब होने लगे। इक्के-दुक्के राहगीर लुटे जाने लगे—हाहाकार मच गया। अन्त मे पलटू का दल इतना बढा कि आस-पास के देहातों मे छोटी-मोटी डकैतियाँ भी शुरू हो गयीं। पुलिस का नाक मे दम हो गया। अन्त मे पलटू फिर पकडा गया, पर इस पर कोई जुर्म विधिवत् प्रमाणित नहीं हो सका—इसे छ. मास की सजा हुई। इस तरह अनगिनत बार जेल जाकर पलटू एक प्रकार से अपने फल का 'सिद्ध' हो गया। लगातार आँच में गलाते जाने से जिस प्रकार सोना खरा हो जाता है, पलटू एक दम भय, चिन्ता, मोह, दया, सौजन्य, मानवता, धर्म, ईश्वर रहित एक दुर्दान्त व्यक्ति हो उठा। तुन्त्र

गहनो के लिये कितने कोमल बच्चों का गला इसने घोंट डाला, कितनी सुन्दरियों को छुरी के घाट उतारा, कितने बृद्धों का खून किया, कितने गरीबों का धन लूटा, कितने भिखमगों की झोली छीन ली, यह बतलाना—अब शायद पलटू के लिये भी—असम्भव ही है।

ससार मे कोई भी इतिहास-लेखक पलटू के महान जीवन पर प्रकाश डालने के लिये पैदा नहीं हुआ। यदि गम्भीरता-पूर्वक विचार किया जाय तो पलटू को हम समाज की क्रिया का मूर्तिमान प्रतिक्रिया कह सकते हैं। यही है पलटू का संक्षिप्त परिचय। हाँ, पलटू ने धीरे-धीरे अपना रुख बदल दिया था। वह खुद छोटी-छोटी चोरियों या डकैतियों के लिये कभी नहीं जाता। चोरों और डकैतों का आधारस्तम्भ बना हुआ वह सदा एक खूँख्वार शेर की तरह अपने अड्डे मे बैठा रहता था। इसके अड्डे मे निरपराधों के रक्त से सने हुए छूरे धोकर साफ किये जाते थे, रक्त से लतपथ कपड़े जलाये जाते थे और लूट का माल रक्खा जाता था।

पलटू कहीं से धर-पकड कर औरत ले आया था। किसी डाके मे इसने एक स्त्री को भी लूट लिया—वही इसकी जीवन सहचरी है। शेर जैसा खूँखार पलटू अपनी प्रेयसी के सामने भींगी बिल्ली बना रहता है। यह राक्षस दम्पति सन्तानहीन ही है। पलटू अपने छोटे-छोटे पाकेटमार बच्चों को अपनी सन्तान कहता है। पलटू की रखेली—रानियाँ—इन बच्चों को बहुत ही प्यार से रखती हैं। शहर मे इसके कई गुप्त शराब खाने और जुआ के अड्डे हैं पर जहाँ मैं गया था वह सभी अड्डों का प्रधान केन्द्र था।

× × ×

पलटू ने उठ कर सलाम किया—मैंने पूछा—दोस्त ! मुझे उस कमरे मे पहुँचा दो, जहाँ तुम्हारे नये अतिथियो ने डेरा डाला है।"

पलटू बोला—"वे बड़े शैतान हैं बाबू ! माले मुझे ही तमचे का निशान बना देते। भाग्य से जान बच गयी। बडे शेरदिल हैं। ऐसे नौजवान मलाई, हलवा खाकर मोटरों पर शैर करने-वालों मे नहीं मिल सकते। शहर मे कुत्ते दौडते हैं और जगलों में शेर।"

मैंने देखा कि इतना बोलते-बोलते पलटू की छाती तन गयी, सिर ऊँचा हो गया और भौहें तन गयीं। वह अपनी पूरी ऊँचाई में तन कर खड़ा हो गया। वह फिर बोला—"चलिये मैं उनके पास पहुँचा देता हूँ—खुद देख लीजियेगा।" मेरी उत्सुकता भी बढ़ी। मैं धडकते हुए हृदय से उसके पीछे-पीछे चला। बगल के दरवाजे से हम फिर गली मे आ गये। थोडी दूर चल कर पलटू एक घर के दरवाजे पर पहुँचा। दरवाजा बन्द था, उसने तीन बार गिन कर कुडी खडकाई। दरवाजा खुला—हम जल्दी से भीतर चले गये।

घर छोटा सा था—कच्चा। दो कमरे थे। एक कमरे मे ... ।र्न हो रही थी। हम उसी ओर चले। यह कमरा भी छोटा-ही था। कमरे के बीच मे एक गोल मेज पडी थी और थी ... लोहे की कुर्सियाँ। इन कुर्सियों पर कई आदमी बैठे थे। ...ल मे लगा कर एक मोमबत्ती जल रही थी। मेज पर कागज ...रे हुए थे और प्रत्येक व्यक्ति के आगे एक-एक तमचा ... हुआ था। एक व्यक्ति सिर झुका कर एक नक्शा देख रहा था और दूसरा उसे समझा रहा था—यह किसी मकान का नक्शा था। मैंने कमरे में प्रवेश करते-करते सुना था—"यह दरवाजा है, इसके बगल में यह कोठरी है—इसी मे

दरवान सोते हैं—वह सोता है—रात को उसके कमरे की एक खिडकी खुली रहती है—यही धनीराम की रिपोर्ट है।"

मेरी सूरत देखते ही उनमे से एक ने कहा—आओ भाई रमेश! मुझे सन्तराम से तुम्हारे आने की सूचना मिल गयी थी। तुम अभी शायद दिनेश के यहाँ से आ रहे हो।"

मैं अकचका गया—यह कैसा तमाशा है। मैं एक नजर कभी उनके चेहरे की ओर देखता और कभी ६ चमकती हुई तमचों की ओर। मेरी परेशानी देखकर एक व्यक्ति बोला—अरे भाई, घबराते क्यो हो। हमारा जीवन ही ऐसा है कि हर घड़ी सिर पर काल की छाया पड़ी ही रहती है। बैठो।"

मैं एक खाली कुर्सी पर बैठ गया। सभी से मेरा परिचय कराया गया। मुझे जानकर आश्चर्य हुआ कि इस दल का प्रत्येक व्यक्ति कालेजों और युनिवर्सीटियों की बड़ी-बडी डिग्रियाँ लेकर इस भयानक क्षेत्र मे आया है। कोई एम० ए० है तो कोई बी० एस-सी०। मेरे आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहा—हे हरि! क्या इसी तरह का जीवन व्यतीत करने के लिये इनके अभिभावकों ने हजार-हजार रुपये व्यय करके इन्हें शिक्षा दिलवाई थी। विधि का विधान अटल होता है।

आधी रात के बाद मै अपने डेरे पर लौटा। मैंने अनुभव किया कि मेरा पीछा किया जा रहा है। एक बार तो मैंने ठीक अपने सामने से एक साइकिल सवार को जाते देखा और एक स्थान पर एक शराबी मुझसे टकरा गया और जब मैं रायसाहब के फाटक पर पहुँचा तो किसी ने पीछे से आवाज लगाई—Good night (गुडनाइट)।

मै अपने कमरे के पास पहुँचा। दरवान ने धीरे से कहा—"छोटे सरकार, आपकी प्रतीक्षा मे अभी तक बैठे है। वे ऊपर के कमरे मे हैं—जाइये।'

मैं थक गया था। जी चाहता था कि खाट पर लेटकर जरा मन को स्वस्थ बनाऊँ पर अब प्रभुदयाल के निकट जाना आवश्यक हो गया। मैं ऊपर पहुँचा तो क्या देखता हूँ कि प्रभुदयाल गुलाब बाई के साथ बैठा शराब पी रहा है। मैं दरवाजे पर ठिठक कर खडा हो गया। प्रभुदयाल ने भर्राये हुए गले से कहा—"आओ दोस्त! गुलाब तुम्हें घण्टों से खोज रही हैं। चले आओ।"

× × ×

तीन बजे भोर को जाकर अपने कमरे में विश्राम किया। मुझे सुबह १० बजे की मोटर से घर लौट जाना था—मन्नू बाबा को एक पत्र देना था। घर जाने के पहिले मैं दिनेश से भी मिल लेना चाहता था। खाट पर लेटते ही नींद आ गयी। सुबह दिन चढे उठा। शरीर मानों चूरचूर हो गया था—थकावट से।

---

(१३)

मैं घर की ओर चला पर मेरे मन मे उमङ्ग न थी, उत्साह था। मैं घोर चिन्ता मे निमग्न मानों अपने भीतर आप ही ल -सा, डूबा सा चला जा रहा था। धूल उड़ाती हुई मोटर र की तरह चली जा रही थी—कोई यात्री चुपचाप बैठा बाहर । ओर देख रहा था तो कोई बीडी पी रहा था। एक दो भी थीं जिनकी ओर एक साधु बाबा एक टक देख रहे थे—एक बड़ी-बड़ी मूछोंवाले सज्जन, जिनकी सूरत से मनुष्यता के स्थान पर हुकूमत की भावना टपकती थी, घूर-घूरकर कभी बाबा जी को और कभी स्त्रियों को देख रहे थे। एक बुड्ढा

बेंचों के बीच में—नीचे—बैठा था। वह एक गंदी-सी पोटली लिये ऊँघ रहा था। गरज कि जिस 'लारी' से मैं जा रहा था वह भरी हुई थी, पर मेरा मन रिक्त था—हाहाकार कर रहा था।

कोई चार बजे मैं उतर पड़ा—अब मैं कच्ची सड़क से गाँव को पैदल चला। धीरे-धीरे दिन चैत-बैसाख की धूलिधूसरित पश्चिम दिशा मे डूब गया। गरम हवा के साथ कभी-कभी शीतल हवा का भी एकाध झोंका आने लगा। मेहदी के फूलों की महक से साथ किसी कच्ची जमीन पर छिड़काव होने से उत्पन्न होने वाली मिट्टी की साधी महक के मिल कर आने से जो नशा मन और आँखों पर छा जाता है, उसका वर्णन लिखकर नहीं किया जा सकता।

सध्या गोधूलि का धूमिल चादर ओढकर आयी। शून्य खेतों के उस पार की वनरेखा धुँधली और उदास दिखलाई पड़ती, रास्ते मे पडनेवाले गाँव के छप्परों से धूआ उठ रहा था। देवी-स्थान या महावीर-स्थान मे लम्बे और टेढे बाँस मे—लगी हुई ध्वजा गोधूलि के अस्पष्ट प्रकाश मे धीरे-धीरे उडती हुई और उदास दिखलाइ पड़ती थी।

मैं सीधे अपने गाँव को चला। दूर पर महादेव जी के मन्दिर की ऊँची चूडा नजर आई। कल्पना की आखों से मैंने अपनी माँ को चूल्हे के पास बैठकर रसोई करते या दूध गरम देखा और पिता जी को चौपाल पर बैठ कर तम्बाकू पीते।

मैं पिछली रात के जागरण के कारण यद्यपि थक गया था, पर घर के आकर्षण से खिंचा हुआ दूने उत्साह से चला। कच्ची सड़क की धूलि से सारा शरीर धूसरित हो उठा था। एक-एक कदम पर बैठ जाने को जी चाहता था, पर मेरी गति मे विराम न था, मन में शान्ति न थी, हृदय में उत्साह न था। न जाने

मेरा हृदय क्यों धड़क रहा था—जी चाहता था कि लौट जाऊँ। किसी अज्ञात अशुभ की आशङ्का से गाँव तक जाने की हिम्मत मैं खो बैठा था। मैं अपने निर्बल और अस्थिर मन को समझाता था, तोष देता था, पर सब व्यर्थ। मैं—मन ही मन अपने ऊपर खीज उठा, चिढ़ गया, झल्लाहट पैदा हो गयी। मैंने सोचा कि घर पहुँचने के पहिले मन्दिर पर जाकर गाँव का सम्वाद ले लेना आवश्यक होगा—मैं मन्दिर की ओर मुड़ा। मैंने दूर से ही शख, झाँझ, घटा की सम्मिलित ध्वनि सुनी। सध्याकालीन आरती हो रही थी। फिर बहुत से कठो की ध्वनि—पशुपतिनाथ की जै, अवढ़र दानी की जै, उमापति की जै।" फिर सर्वत्र गम्भीर सन्नाटा छा गया—अन्धकार मे गाँव एक सोया हुआ रोगी-गरीब बच्चा-सा, जो सारा दिन कराहता रहा हो, दिखलाई पडता था।

मैंने देखा कि दो तीन व्यक्ति लम्बी-लम्बी लाठियाँ लिये और आपस मे गदी-गदी बाते करते आ रहे हैं। मैंने अंधकार मे आँखें गडाकर देखा—ये हमारे गाँव के रहनेवाले नहीं हैं, अपरिचित हैं। मै इनसे ही गाँव का समाचार जानना चाहता था, पर रङ्ग-ढङ्ग ने मुझे रोक दिया—मै मुख्य सडक से एक ओर [illegible] खड़ा हो गया। इनमे से एक ने कहा—"साला, बड़ा [illegible] है।"

दूसरा बोला—"उसकी मेहरिया तो परी-सी दिखाई [illegible] है।"

तीसरा बोला—"सरकार की नजर ही नहीं पडी है, नहीं तो——।'

फिर दूसने कहा—"कल चलो—सुसरा को पकड़कर मालिक के सामने हाजिर करें। दो दिन बाँधकर रक्खेंगे, बस काम बन जायगा। यार, मेरी नजरो मे वह हरामजादी बस

गयी। सीधी तरह नहीं मानेगी तो मार जूतों के सिर गञ्जा कर दूँगा।"

मैं सिर से पाँव तक काँप उठा। यह सम्भवतः जमींदार के प्यादे थे। अपने गाँव की खैरियत की थोड़ी-सी झलक मुझे यहीं मिल गयी। इन खूँखार कुत्तों की टोली जब आगे बढ गयी तो मन्दिर की ओर चल पड़ा।

गाँव के दर्शनार्थी प्रसाद ले-लेकर मन्दिर से चले गये थे। पुजारी जी और एक-दो व्यक्ति गाँजा-का दम लगाने की व्यवस्था कर रहे थे। भीतर मन्दिर मे भगवान भूतनाथ के आगे जो घी का प्रदीप जल रहा था, उसका मन्दप्रकाश फैला हुआ था। मन्दिर के चौतरे पर वैसाख की मटमैली चाँदनी फैली हुई थी और—और दूर-दूर तक शस्य-शून्य खेत उदास दिखलाई पड़ रहे थे। मेरी सूरत देखते ही पुजारी जी ने कहा—"अरे तुम, तुम तो परसों ही गये हो। कहो, कुशल तो है।" मैंने प्रणाम करके कहा—"आपका आशीर्वाद है तो फिर अकुशलता कैसी। गाँव का समाचार कहिये।" पुजारी जी बोले—बेटा गाँव की कुशलता तो बाबू जगतसिंह के साथ गयी। यह नये जमींदार इस सोने की खान को गोवर भर कर नष्ट कर देना चाहते हैं। सब कुशल ही है। भगवान शंकर सब देख रहे हैं। उस दिन वे मेरा सिल-बट्टा लोग उठा ले गये और कल कूएँ का ढोल खोल कर चलते बने। गाँव भर को आज कष्ट हो रहा है। सभी इस कूएँ का पानी पीते थे—यह अन्याय मैं तो सह लूँगा पर महादेव बाबा नहीं सह सकते।"

मेरा मन कुछ-कुछ स्वस्थ हुआ। मैं थोड़ी देर ठहर कर अपने घर की ओर चला।

पिता जी घर पर नहीं थे। चाचा जी से मुलाकात हुई तो

उन्होंने चकित होकर पूछा—"इतनी जल्दी लौट आये ?" मैंने कहा—"एक काम था—बाबू जी कहाँ हैं ?"

'कहीं गये हैं, मैं नहीं जानता'—चाचा जी रुखाई से बोले। मैं जब घर के भीतर गया तो पता चला कि मेरी चाची मायके चली गयीं हैं। कारण यह बतलाया गया कि मेरी बहन की भूल से एक दिन उनकी साड़ी पर, जो सूख रही थी, थोडी-सी मिट्टी पड़ गयी। कलह का सूत्रपात यहीं से हुआ। मेरी माँ ने अपनी कन्या का पक्ष समर्थन किया। बात यहाँ तक बढ़ गयी कि चाचा जी ने अपने बड़े भाई पर लाठी उठाई। गाँव के दूसरे व्यक्तियों ने बीच बिचाव किया, पर दोनो का क्षोभ शान्त नहीं हुआ। अन्त मे चाचा जी ने बटवारा का मुकदमा दायर करने की घोषणा कर दी। इसके बाद चाचा जी ने जमीदार से मिल कर उसे उभाड़ा और मेरे पिता जी जमीदार के सामने बुलाये गये—उन्हें धमकाया गया और अपमानित भी किया गया। दो दिनों के भीतर ही यह सब कांड हो गया। मेरा मन अस-फल क्रोध से भर गया।

मैंने किस्मत ठोंक कर सन्तोष कर लिया। यहाँ तो जमीदार की भयंकर चढ़ाई और कहाँ आपस की यह तनातनी—गाँव की खैर भगवान करें तो हो। घर में मेरा मन नहीं लगा और सन्तू बाबू को पत्र भी देना था। आधी रात तक पिता जी की प्रतीक्षा कर लेने के बाद मैं चुपके से सन्तू बाबू के घर की ओर चल पड़ा—अँधेरे मे छिपता हुआ।

गाँव की गलियों पर अन्धकार रीमा रहता है। गाँव के भाग्य की ही तरह सकीर्ण ऊबड़-खाबड़, अन्धकारमयी गलियों का वर्णन करना यहाँ व्यर्थ ही है। आप अनुमान से काम लें।

दरवाजा खटखटाते ही सन्तू बाबू निकल पड़े। मैंने भीतर की ओर झाँक कर देखा, दो व्यक्ति चुपचाप बैठे हैं। कई

पुस्तकें और अखबार फर्श पर पड़े हुए हैं। मैं जो पत्र शहर से लाया था, उन्हें दिया। ध्यान से पत्र पढ़ लेने के बाद एक ने कहा—" अच्छा जी, मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम हमारे साथ ही रहोगे या · ·········।"

दूसरा बोला—"नहीं, सुरेश का साथ रहना ठीक न होगा। सम्भव है पकड़ा जाय। नया आदमी है—घबरा जायगा।"

प्रथम व्यक्ति बोला—"बस, वहीं डरानेवाली बात। पकड़े कैसे जायेंगे। यदि एक बार भी हम पकड़े जाते तो फिर दूसरी दुनिया में पहुँच कर ही रहते।" सन्तू बाबा ने कहा—नहीं, जीवन! सुरेश कच्चा आदमी नहीं है, पर गाँववाली बात ठहरी। न जाने क्या हो जाय। सो देखो नित्य एक न एक ज़ुल्म बढ़ता ही जा रहा है। परसों चरन की बिटिया कूएँ पर जल भरने गयी थी, उसे जमीदार ने पकड़वा कर मँगवा लिया। गाँव भर में बेचारा चरण दोहाई देता फिरा, पर किसी ने भी सहायता नहीं दी—उस लड़की को पेड़ से बाँध कर रक्खा गया। उस पर तुहमत यह लगाई गई कि उसने जान-बूझ कर जमीदार के कैम्प की ओर अपनी बकरियों को हँका दिया था, जिससे काफी नुकसान हुआ। बहुत से फूलों के पौधे बरबाद हो गये—यह एक तुच्छ बहाना है।" जीवन बोला—"इन धन मदमत्तों का यही काम है। हम बी० ए०, एम० ए० पास करके आप चोरी पाकटमारी का धन्धा क्यों करते, यदि इसकी मति सुधरी होती—"खैर, सुरेश तो गाँव में भी न रहे—शहर चला जाय। इस पर जमीदार की अच्छी नजर नहीं है।"

एक दूसरा बोला, जो अब एक अखबार के पेज उलट रहा था—"सुना जीवन! कलकत्ते के एक मारवाड़ी की दुकान पर डाका पड़ा। कोई पकड़ा भी नहीं गया। जान पड़ता है कि विनय के दल का काम है।"

जीवन बोला—"लाओ तो देखूँ—साला विनय तो लगा बढ़-बढ़ कर हाथ मारने। आखिर बंगाली छोकरा जो ठहरा।"

उसने मेरी ओर मुड कर कहा—"जानते हो, यह विनय कौन है? पल्ले सिरे का अवारा। इसका बाप बेकारी से ऊब कर, रेलगाड़ी के नीचे सो कर, मर गया और माँ—उफ्! कहा नहीं जाता! वह गरीबनी अपनी तीन साल की बच्ची के साथ एक मुसलमान के घर में बैठ गयी। यह विनय पादरियों की सरक्षता में पढ़ कर ग्रैजुएट हुआ। जब इसे अपने परिवार का हाल मलूम हुआ तो लगा पाकेटमारी करने। पाकेटमारी का व्यवसाय करते-करते आज बढ़-बढ़ कर हाथ मार रहा है। इस समय लखपति बना बैठा है—दो-दो मोटरें और शानदार कोठी! इतना ही नहीं, कई मिलों का हिस्सेदार है, शहर के धनीमानी सज्जनों में आदर पाता है—बडी-बडी पार्टियाँ दिया करता है। यह है हमारे समाज का कच्चा चिट्ठा!"

सन्तू बाबा बोले—"अच्छा तो सुरेश को बिदा दो।"

जीवन ने कहा—"भैया, सुरेश का काम तो हो गया। देखा जायगा। कल हमारे और साथी आ जायँगे—हाँ जी, इस गाँव में कोई तुम्हारा अपना भी है। सन्तू बाबा कितने [illegible] का सत्कार करेंगे! घर भी तो कोई उतना बड़ा न है।"

मैं बोला—"मैं किसका नाम लूँ, जीवन बाबू! यह कर्म-हीनों की बस्ती है। घर-घर में कलह है, घर-घर मे विनाश की चिता धधक रही है। जहाँ दरिद्रता पहुँच जाती है, वहाँ सभी दुर्गुण आप से आप फलने-फूलने लगते हैं।"

जीवन ने कहा—खैर, परवा नहीं—अच्छा, तुम जा सकते हो। परसों—शहर की ओर जाने के पहिले हमसे मिलना—वन्दे॰

मैं विदा हो कर सीधे घर पहुँचा। मेरे पिता जी मेरी

प्रतीक्षा मे वैठे थे। रात आधी से अधिक व्यतीत हो चुकी थी। उन्होंने कहा कि अभी ज मींदार के सिपाही तुम्हें खोजते हुए आये थे—सुवह फिर आवेंगे। मेरा कलेजा धक्-सा कर उठा। जमींदार—मुझसे और जमींदार से सम्बन्ध। वह मुझे क्यों खोजेगा? खैर देखा जायगा। जी कड़ा करके वोला—"जाऊँगा—डर क्या है।"

मैंने देखा कि पिता जी का चेहरा उतरा हुआ है—वे अत्यन्त घवराये हुए हैं। उनकी घवराहट ने मुझे भी धैर्यच्युत कर दिया। मैंने पूछा—"जमीदार क्यों मुझे खोजता है? आपने प्यादों से कुछ पूछा नहीं। "वे क्या कहते थे? पूछा क्यो नहीं?"—पिता जी ने कहा—"पर वे साले वड़े पाजी हैं।" कहने लगे—"सुरेशवावू के दर्शन करेंगे।" अव तुम्हीं वत-लाओ इस उत्तर के क्या माने हो सकते हैं।" सम्भवत वे सवेरे फिर आवे। मैंने प्यादों को उत्तेजित-सा देखा नहीं तो पूछ कर पता लगाने का प्रयत्न करता।" मैंने धीरे से कहा—"परवा नहीं। जमींदार क्या शेर है जो मुझे चवा डालेगा। मैं कल जाऊँगा। आप घर पर ही रहियेगा—मेरे साथ मत जाइयेगा।" पिता जी ने कातर आँखों से मेरी ओर देखकर सिर झुका लिया। मेरा हृदय मानों रो उठा उनकी लाचार आँखों को देखकर! हाय री गरीवी, हाय री लाचारी—तेरा वुरा हो।

मेरा मन रह-रहकर उचट-सा जाता था। कभी-कभी तो यह भी जी करता था कि इसी दम शहर की ओर भाग खड़ा होऊँ, पर क्षण भर मे मैं अपने को स्वस्थ वना लेता था। मैं यह अनुभव करता था कि गाँव का प्रत्येक व्यक्ति मेरा आदर करता है और मेरी वातों को ध्यान से सुनता है। ऐसी अवस्था मे यह मेरे लिये उचित होगा कि मैं जमींदार के सामने

जाऊँ—यदि वह मेरे साथ बुरी नियत से पेश आया तो गाँव के उन अभागों की आँखें तो खुल जावेंगी जो आज तक अपने हित की बातें सुनकर भी नहीं समझते, समझ कर भी उन पर ध्यान देना नहीं चाहते। या उनमें इतनी क्षमता नहीं है जो वे दृढ़ता पूर्वक किसी बात को ग्रहण कर सके या सोच सकें। यह भी नैतिक कमजोरी का प्रधान रूप है।

माँ से मैंने जमींदार के यहाँ जाने की चर्चा नहीं चलाई थी—चुपचाप सो गया। रात को नींद भी नहीं आयी। अन्त में मैंने यही निश्चय किया कि जमींदार ने मुझे कुछ नहीं कहा तो भी कल्याण और यदि उसने मुझे जुल्म की चक्की में पीस दिया तो भी कल्याण। मेरे दोनों हाथों में लड्डू हैं—मैं जीत में ही रहूँगा।

---

(१४)

सुबह—सूर्योदय के भी पहिले किसी ने मेरे दरवाजे पर धक्के मारने शुरू कर दिये। पिता जी उठे—घर में भूकम्प-सा गया। मैंने दौड़ कर किवाड़ खोले तो देखा कि ३।४ लठैत हैं। मेरी सूरत देखते ही उनमें से एक ने लपक कर मेरा पकड़ लिया। दूसरा बोला—"यही है साला! रात भर जाने कहाँ छिपा रहा।" मैं क्षण भर के लिये अकचका था, पर शीघ्र ही परिस्थिति का ज्ञान हो गया। मैंने तत्काल निश्चय कर लिया कि चुपके से चला जाना ठीक नहीं होगा।। गाँव पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। कुछ सन-सनी फैला देना ही उचित होगा। मैं सभी प्रकार का अपमान सहने के लिये प्रस्तुत था। मैं अपनी इस बेइज्जती से लाभ उठाना चाहता था।

मुझे विजयी वीर की तरह पकड़े प्यादे खड़े थे। एक ने कहा—"मुश्कें बँध लो जी ! साला भाग न जाय।" दूसरा बोला—"भागेगा तो एक लोहबन्दा में शान्त कर दूँगा।" तीसरे ने कहा—"चलते क्यों नहीं—क्या ससुराल के दरवाजे पर खड़े हो जो जाने को जी नहीं चाहता।" पैशाचिक हँसी हँसते-हँसते और मुझे घसीटते हुए ले चले। मेरे घर के भीतर से रोने-पीटने की ऐसी ध्वनि आ रही थी मानो मेरी लाश उठाई जा रही हो। मेरे पिता जी से न रहा गया। वे दौड़ कर एक सिपाही के पैरों से लिपट गये और कहने लगे—"माई-बाप ! सरकार बड़े गुसैल हैं। इसकी जान ले लेंगे—छोड़ दो भैया ! जो कहो सो दूँ। मैं जन्म भर गुलामी करूँगा।"

इस दृश्य ने मेरे हृदय को क्षुब्ध कर दिया। मैं एक प्रकार से पिता जी पर झल्ला उठा। इस तरह विलाप करना मुझे मन्जूर न था—न मैं यह बर्दाश्त ही कर सकता था कि कोई मेरे लिये किसी से—अपने को इतना नीचे गिराकर—विनय करे। मैंने रूखे स्वर में कहा—"आप कर क्या रहे हैं। हटिये। जमींदार का मैंने क्या बिगाड़ा है जो वह मुझे खा जायगा। चलो जी—मैं चलता हूँ।"

एक प्यादे ने पिता जी को ऐसा धक्का दिया कि वे दूर जा गिरे। दमे से और चिन्ता से उनका शरीर चूर-चूर तो पहिले ही हो चुका था—जोरदार झटका बर्दाश्त नहीं कर सके। सँभलते-सँभलते ही ईदन मियाँ के दरवाजे पर पछाड़ खाकर गिर पड़े। इतना ही नहीं एक प्यादे ने गालियाँ भी दीं और मुझे एक तमाचा मार कर कहा—"नवाब का नाती है। सीधी तरह चल ! जमींदार साहब से शान दिखलाना।" मैं क्रोध से तिल-मिला उठा, पर खून की घूँट पीकर रह गया। गाँव में हल्ला मच गया। दरवाजे-दरवाजे पर डरे और घबराये हुए स्त्री-

बच्चों की भीड़ लग गयी। सभी हतबुद्धि से हमारी ओर देख रहे थे—उनके चेहरो पर प्रश्न और वह भी घोर आश्चर्यपूर्ण प्रश्न के चिह्न साफ-साफ झलक रहे थे। मेरे दिमाग मे एक बात पैदा हुई। मैंने सोचा कि गाँव के उन किसानों को यह बात समझा देनी चाहिये कि जिस स्वामी (जमीन्दार) की ये दम भरते हैं, उसका सच्चा रूप क्या है। मैं तत्काल वहीं पर बैठ कर बोला—"मैं नहीं जाऊँगा—मुझे तुम चाहो तो घसीटते हुए लेजा सकते हो।" प्यादों के क्रोध का अन्त नहीं रहा। एक ने मेरी पीठ पर कस कर एक लात जमाई। मैं औंधे मुँह गिरा। मुँह और नाक से खून निकल पड़ा। वे मेरे सिर के बालों को पकड़ कर घसीटते हुए ले चले।

गाँव के इस छोर से उस छोर तक तहलका मच गया। झुड के झुड किसान जमा हो गये। भीड का रुख बिगडा हुआ देख कर सिपाहियों के क्रोध का पारा कुछ नीचे तो नहीं उतरा, पर उन्होंने मेरे बाल छोड़ कर गले मे अँगोछा डाल दिया। एक स्त्री छाती पीटती हुई चिल्ला उठी—"हाय रे। मुनुआ को मार डाला—उसके मुँह, नाक से रक्त की धारा निकल रही है। दैया रे यह जुल्म।" दूसरी ने चिल्ला कर कहा—"पानी मिला दो—पानी! गले में अँगौछा डाल कर क्यों घसीट रहे हो—बेचारा मुनुआ मर गया—हाय, हाय!"

मन ही मन मैं प्रसन्न हो रहा था। देखते-देखते गाँव भर के किसान जमा हो गये। सिपाहियों ने मेरे गले का अँगौछा भी खोल दिया। अब वे नरम पड़ने के स्थान पर और भी गरम हो उठे। चिल्ला कर भीड को गालियाँ देते हुए बोले—"देख क्या रहे हो। यह बड़ा भारी मक्कार है। साले की जान मार डालूँगा। मालिक का यही हुक्म है।"

भीड में से एक आवाज आयी—"क्यो मार डालोगे ?" सिपाहियों मे से एक ने कहा—"तुम कौन होते हो पूछनेवाले। आओ सामने तो बतला दूँ।" दो सिपाही भीड़ की ओर लपके। तमाशाइयों मे खासी भगदड़ मच गयी, फिर भी पचासों व्यक्ति उत्तेजित भाव से खड़े ही रहे, मानो वे भावी परिस्थिति का सामना करने के लिये तैयार हों। घुड़की दिखला कर दोनों विजयी सिपाही लौट आये। अब यह निश्चित हुआ कि मुझे मुरदे की तरह कन्धों पर उठा कर कैम्प तक ले चला जाय। तत्काल पटक कर मेरे हाथ पॉव बॉध दिये गये, मेरी ही धोती मे। मैं नगा उठाकर कैम्प की ओर ले जाया गया। अभी तक मेरे मुँह से जरा-जरा खून निकल ही रहा था—एक ऑख में भी चोट थी, तथा बाईं पसली तो मानो टूट ही गयी थी। मेरे पिता जी छाती पीटते और रोते-रोते पीछे-पीछे दौड़े, पर लोगों ने उन्हें बीच ही मे रोक लिया। गॉव के दो-चार माननीय व्यक्ति जल्दी-जल्दी मिर्जई पहन कर और फटी- टोपी लगा कर जमीदार के कैम्प की ओर चल पड़े। सम्भवत उन्होंने ही मेरे पिता जी को आश्वासन दे कर पीछे लौटा दिया था। एक जलूस-सा हो गया—गॉव मे सनसनी फैल गई।

मैंने जमीदार के कैम्प को कभी इतने निकट से नहीं देखा था। नदी तट पर जहाँ आम की घनी बारी थी, जमीदार का कैम्प लगा हुआ था। कैम्प के चारों ओर अनगिनत झोपड़े बनाये गये थे। बीच में एक गोल सायादार मैदान खाली था, जिसमे गमले सजाये हुए थे, जिनमे मौसम के फूल खिले हुए थे। छिडकाव होने के कारण सर्वत्र हरी-हरी दूब ऊग आयी थी। एक झोपडे मे तीन मोटरें भी थीं, तथा एक पेड के नीचे ४।५ भयकर कुत्ते बॅधे गुर्रा रहे थे। भडकीली वर्दी डाटे इधर-उधर अर्दली दौड रहे थे। मोटी मोटी लाठियॉ लिये बहुत से

ज्वान खड़े थे। रात को एक हिरण का शिकार किया गया था—दो तीन व्यक्ति उसी हिरण की खाल उतार रहे थे। सर्वत्र चहल-पहल थी—आतंकमय वातावरण था।

मुझे कैम्प के सामने पटक दिया गया। इस बार मैं मुँह के बल गिरा। हाँथ बँधे रहने के कारण मैं अपने मुँह की रक्षा नहीं कर सका। मेरी कनपट्टी में ऐसी चोट आयी कि मैं जोर से चीख कर मूर्छित-सा हो गया, पर फिर अपने को सँभाल लिया। सिर चकराने लगा और कंठ सूख गया। मैंने कहा—"पानी भी तो पिला दो।" दो-दो चार करके मेरे चारों ओर भीड़ जमा हो गयी। कोई गालियाँ देता और कोई मेरी दुर्दशा पर बिना गालियाँ दिये ही संतोष कर लेता।

एक ने कहा—"साला, नेता बनने चला था। अब देख पंचायत करने का मजा।"

एक ओर से आवाज आयी—"मेरा राज होता तो इसे कुत्तों से नुचवा डालता।"

एक ने मेरे बाल पकड़ कर मेरा सिर उठा कर मेरा मुँह देखा और कहा—"अफसोस, अभी तक जिन्दा है।"

मैंने मन ही मन कहा—"चाचा, इसीलिये जिन्दा हूँ कि जब तुम मरोगे तो फिर रोवेगा कौन?" इसी समय कैम्प के दरवाजे पर से आवाज आयी—"मुश्कें खोल दो और धोती पहना दो। सरकार बाहर आते हैं।"

तत्काल आज्ञा-पालन किया। मैं उठ कर बैठ गया और फिर पानी माँगा। एक सिपाही ने एक लोटा पानी मेरे आगे धर दिया और हुक्म दिया कि, "पानी पी कर लोटा माँज देना।" मैंने वही किया। पानी पीते ही मेरी आँखें जैसे खुल गयीं। मैंने देखा कि दूर पर बहुत से देहाती हाथ बाँधे खड़े हैं, पर कैम्प तक आने की हिम्मत किसी में भी नहीं है। एक

सिपाही ने डपट कर उन्हें आगे बढ़ने से रोक दिया है। भीड़ मे ईदन बाबा, चाचा, जग्गन आदि सभी हैं। वे खदेड़े हुए भिखमंगों की तरह दूर से—खड़े होकर—ताक रहे थे। जल्दी से कैम्प के आगे एक कुर्सी लाकर धर दी गयी। बगल में एक दरी भी बिछाई गयी। इधर-उधर से आकर दो चार सज्जन बैठ गये। सभों की दृष्टि कैम्प के दरवाजे पर लटकनेवाले भारी पर्दे पर जमी हुई थी। मैं भी धड़कते हुए हृदय से आगे देख जानेवाले दृश्य की प्रतीक्षा करने लगा। कैम्प के भीतर जो रहस्य छिपा हुआ था, वह कम आश्चर्यजनक नहीं कहा जा सकता।

कैम्प का पर्दा हिला। दरी पर बैठनेवाले उठ खड़े हुए। सभी अदब से खड़े हो गये—बिल्कुल नवाबी युग का दृश्य तब सामने आ गया, जब कैम्प के पर्दे को हटाते हुए एक अधेड़ व्यक्ति निकला। यही हमारे जमीन्दार थे।

सिर पर उलझे हुए बड़े-बड़े बाल। चेहरा फूला हुआ—आँखें शराबी की तरह। गोरा रङ्ग। पतला शरीर—बस अस्थि चर्मविशिष्ट। मूछे कटी हुई और आँखों के नीचे गहरी काली रेखायें। पिचके हुए गालों पर अस्वाभाविक झुर्रियाँ। देखने से पचास साल के पर प्रकृत अवस्था ३५ से अधिक और चालिस के अन्दर! बस! आपके साथ एक बड़ा-सा बालदार कुत्ता भी निकला। पीछे-पीछे एक व्यक्ति कागजों की कई फाइलें लिये निकला और मुँह में सिगरेट दबाये एक व्यक्ति और निकला जो मोटरों की ओर शान से अकड़ता हुआ चला गया। यह अभी नवयुवक था। हाफपैन्ट पहने हुए था, पर कुबड़े की तरह जरा-सा झुक कर चलता था। यह क्षय रोग का एक पुराना रोगी-सा जान पड़ता था—पीला चेहरा और चेहरा ऊबड़-खाबड़ 'सिल्ड' के पिछले भाग की तरह।

जो व्यक्ति बगल मे फाइल दवाये आया था, वह सम्भवत दीवान या पेशकार कोटि का कोई अधिकारी था। उसने पुकारा—"रामसिंह।" जिन पाँच योद्धाओं ने मुझ पर विजय पायी थी, उन्हीं मे एक था, रामसिंह। रामसिंह ने आगे बढ़ कर कहा—"हुजूर।"

वह व्यक्ति बोला—"कहाँ है सुरेश, सरकार मे हाजिर करो।"

रामसिंह फिर तेज आवाज में 'हुजूर' कह कर पीछे मुड़ा और झुक कर मुझसे बोला—"अबे उठ। जल्दी कर। क्या यहाँ भी मक्कारी करेगा।"

मैंने कहा—"मुझसे उठा नहीं जाता। सहारा दो।"

"साला पूरा हरामी है"—रामसिंह ने कहा। मै कराह कर उठा और धीरे-धीरे जमींदार के सामने पहुँचा। मैंने भी बाकायदे झुक कर सलाम किया। जमींदार ने मुझे सिर से पाँव तक देख कर कहा—"क्या फौजदारी हुई है?"

जब तक रामसिंह कुछ बोले, मैं बोल उठा—"सरकार, मुझे इन लोगों ने मारा है। गाँव भर गवाह है।"

जमींदार ने रामसिंह से पूछा—"इसे मारा क्यों?"

रामसिंह ने हाथ बाँध कर कहा—"सरकार यह हमसे झगड़ा करता था।"

जमींदार—"तो तुम्हें चोट नहीं आयी।"

रामसिंह—सरकार ......।

जमींदार ने डपट कर कहा—"पाजी कहीं का। मैं पूछता हूँ—इसे मारा क्यों?"

अब रामसिंह की बोलती बन्द हो गयी। हाथ जोड़े चुपचाप खड़ा रहा—वह काँप रहा था। मैंने कहा—"मुझे ही नहीं मारा सरकार। मेरे वृद्ध पिता को भी जी भर कर पीटा। वह

दमा से परीशान हैं—उस पर लात जूते। वे मर गये होंगे। बड़ा अन्याय है।"

जमींदार की आँखों से अंगारे बरसने लगे। आज्ञा हुई—"पेशकार, इन पाँचों पाजियों को मुअत्तिल किया जाय। तुम्हारा नाम क्या है?"

मैंने कहा—सरकार—"सुरेश!"

"अच्छा—जमींदार ने कहा—घर जाओ। कल इसी समय आना। तुम्हें कोई नहीं रोकेगा। सीधे कैम्प के दरवाजे पर चले आना। पेशकार! इसे २५) दे दो। और सभी कुत्तों (प्यादों) को कह दो कि वे भौंका तो करें, पर किसी को काट न खायँ, वर्ना पेड से बँधवा कर पीटे जायँगे।"

मुझे तुरन्त २५) दिये गये। यह नाटक देख कर मैं अकचका गया। जी करता था कि रुपये न लूं, पर सोचा कि देखना चाहिये, जमींदार आगे चल कर क्या-क्या गुल खिलाता है। वह हठात् इतना दयावान क्यों बन गया। क्या कारण है—क्या कारण है—माथा चकरा गया, पर मैं इस नाटक की तह तक तत्काल पहुँचने में असमर्थ रहा। मैंने लौट कर देखा कि पाँचो सिपाही मुँह लटकाये खड़े हैं—काटो तो खून नहीं। मैं मन ही मन बहुत ही पुलकित हुआ। चोटों की पीड़ा तो कम हो गयी पर मन की पीड़ा ज्यों की त्यों बनी रही। मैं लात-जूते खाने का 'पुरस्कार २५) लेकर चलता बना—रुपया कितना मँहगा होता है।

जब मैं कैम्प से लौटा तो किसानों की भीड़ ने मुझे घेर लिया। मैंने आप बीती सुनाई तो सभों ने एक स्वर से जमींदार का जैजैकार करना आरम्भ कर दिया। किसी-किसी ने तो यहाँ तक कह दिया कि—"अपराध तुम्हारा ही है। तुम्हीं ने सिपा-

हियों से झमट किया था। मालिक दयावान हैं। तुम अभी ना-समझ हो।"

जगन ने बढ़ कर कहा—"भाइयो, मैं कहता था न कि हमारे सरकार दया के अवतार हैं। परमात्मा ऐसे मालिक का दूध-पूत बर्करार रक्खे। हमें नाहक मुनुआ उभाडता था। अभी इसे इतनी अक लकहाँ। मैं चौंक उठा। मेरा माथा ठनका। मैं मन ही मन ऐसा मर्माहत हुआ कि जिसका वर्णन करना कठिन है। जमींदार की दया का रहस्य मेरे सामने खुल गया। मैंने किसानों को उभाड़ने के लिये या उन्हें जमींदारी-शान का सच्चा रूप दिखलाने का जो प्रयत्न किया था वह विफल हुआ। गाँव की पवित्र भूमि पर जो मैंने अपना खून बहाया, खून के रूप मे जो बीज वपन किया और उस वृक्ष से तत्काल जो फल निकला, वह मेरे लिये विष सिद्ध होना चाहता है। सच पूछिये तो जगन की सरल सीधी बातो ने मेरे घावो को मेरे अपमान को एक दम हरा कर दिया। यदि किसान मेरी दुर्दशा देख कर मेरे गरम खून को देख कर अपनी स्थिति का रूप देख लेते, अपनी परिस्थिति का अध्ययन कर लेते तो मैं सिपाहियों के जूतो के प्रहार को 'विजय माल' के रूप मे ग्रहण करता, पर यहाँ तो बात ही उलटी हो गयी। जमींदार के दयापूर्ण कुछ शब्दो ने ही मेरे किये दिये पर वज्रपात कर दिया।

गाँव भर के किसानों ने मिल कर मुझे दुरदुराना आरम्भ कर दिया। पिता जी ने कहा कि—"तुमने व्यर्थ रार बढाई। तुम्हारे ही चलते इस बुढौती मे मेरी मिट्टी भी बर्बाद हुई। तुमने देख लिया न कि सरकार कितने दयावान हैं। वे प्रजा को अपने पुत्र से बढ़ कर प्रेम करते हैं।" मन्नू बाबा बोले—"भैया, तुम सठिया गये हो। यह उसकी चाल है। परसों कलक्टर साहब आने वाले हैं। नहर-खुदाई का उत्सव होगा।

जमींदार डरता है कि कहीं गाँव भर की प्रजा मिलकर कलक्टर से शिकायत न कर दे। उसने एक तिकड़म से मुनुआ को पिटवा भी दिया और मामला भी शान्त कर दिया।"

पिता जी ने ,कहा—"और वे प्यादे, जिन्हें मुअत्तिल कर दिया गया!

"हाँ सुनो"—सन्तू बाबा बोले—"यह जमींदारों की चाल है। उन्हें अपने साथ से हटा कर किसी दूसरे इलाके पर भेज देंगे—चलो छुट्टी हुई।"

पिता जी ने कहा—"नहीं चाचा! तुम नहीं समझते। जमींदार बहुत ही न्यायी है। वह सदा न्याय पर ही रहता है पर कुछ तो हमारा अपराध है और कुछ टुकड़ों के गुलाम नौकरों का।"

सन्तू बाबा ने कहा—"तुम्हारा सिर फिर गया है। व्यर्थ कौन अपना सिर दुखावे—जो तुम सोचो वही सही है। इसी अकल की बदौलत फी साल खेत गिरवी रख कर लगान चुकाते हो। घर के लोटे थाली तक बेच डालना पड़ा—अब कसाई-खाने में जाकर अपना शरीर भी बेंच देना। इस ठठरी पर इतना मास भी नहीं है जो ।।) भी मिलें।"

चाचा बोले—"तुम ठीक कह रहे हो सन्तू चाचा। यह जमींदार की चालबाजी है। उसने मुनुआ के बढ़ते हुए प्रभाव को, अपने हृदय की कसक को, प्रजा के अविश्वास को, अपनी बद-नामी को एक ही चाल में मिटा दिया—फिर तो राजा है, कैसी चाल सोची उसने। आज सारा गाँव जमींदार का प्रशसक बन गया है।"

सन्तू बाबा ने कहा—"तुम समझ गये न? उसने यह सिद्ध कर दिया कि मैंने तो प्रजा को अपनी सतानवत् समझता हूँ, पर मेरे प्यादे सारी खुराफात की जड है। मुनुआ पर जो उसका

आक्रोश था वह भी मिट गया। अब वह इसे बुलाता है। इस तरह मुनुआ का परिवार तो सुरक्षित रक्खा जायगा पर सारा गाँव पीसा जायगा। गाँवभर के किसान यही समझेंगे कि मुनुआ ने ही हमारा सत्यानाश कर दिया है। इस प्रकार मुनुआ अपना विश्वास खो बैठेगा और गाँव अपना एक सच्चा साथी खो कर सत्यानाश के गर्त की ओर लुढक पड़ेगा।"

मेरे पिता जी ने भी थोड़ी बहुत जमींदार की कृपा का सच्चा रहस्य समझ लिया, पर मैं अपने पिता जी को ही सारा गाँव समझने की भूल नहीं कर सकता। मैंने तो घूम-घूम कर देखा कि जबान-जबान पर जमींदार की दयालुता की चर्चा है और एक स्वर से सभी मुझे हठी, दुराग्रही, नासमझ, उज्जड आदि सुन्दर-सुन्दर विशेषणों से स्मरण कर रहे हैं। मेरा हृदय मानसिक क्षोभ से जर्जर हो गया। मेरे लिये गाँव में ठहरना अब असह्य था। पर सन्तू बाबा ने दो-चार दिन रुक जाने का आग्रह किया।

---

(१५)

जमींदार ने मुझे बुलाया था। पिता जी को यह बात मालूम थी। अम्मा के कानों तक भी यह सवाद पहुँच गया था। वे बोलीं—जो पालन करता है वह मालिक है, अगर उसने मुनुआ को पिटवा दिया तो इसमें बुराई क्या है। वह कभी भी बुरी नियत से मुनुआ को दण्ड नहीं दे सकता। यह अभी लड़का है, ना समझ है अपनी किसी बात से इसी ने ही मालिक को नाराज कर दिया होगा।" आँचल फैला कर आकाश की ओर मुँह उठा कर माँ ने कहना शुरू किया—"हे भगवान्, ऐसे दयालु मालिक को हरा-भरा रखना।"

यह दृश्य देखना मेरे लिये असह्य था। ग्रामीण जीवन लाड-प्यार और वड़ों के सत्कार के लिये इतना लालायित रहता है कि चाहे जमींदार इन पर जितना भी अत्याचार करे, जितना भी जुल्म करे, जितनी भी मनमानी करे, पर फिर जरा-सा चुमकार भी दे बस, अपमान का गहरा घाव भर जाता है, जुल्म की याद मिट जाती है, अत्याचार का गहरा रङ्ग उतर जाता है। इन्हें अपने आपको छोटा समझने की ऐसी आदत पड़ गयी है कि इसी अभ्यास के चलते इन्हें पीड़ित रहना पडता है। इनमे इस प्रकार की मनोवृत्ति सदा दवते रहने से पैदा हो गयी है। मैंने अपने ही गाँव मे देखा कि मेरे अपमानित होने का जो क्षोभ किसानों के हृदय में उत्पन्न हुआ था वह जमींदार की चुमकार सुनते ही हिरन हो गया।

अम्मा की वातों से मेरा हृदय अत्यन्त व्यथित हुआ। पिता जी भी वहीं पर खड़े थे। आप बोले, मानो मेरे जले कलेजे पर निमक छिड़क दिया—"सुनती नहीं। सरकार ने हुक्म दे दिया है कि सुरेश जिस समय भी आवें, उन्हें मेरे पास आने दिया जाय। आज तो एक आदमी कह रहा था कि मुनुआ को वे अपने साथ वरावर रखना चाहते हैं। यह रहे तब न! इस वार हमारा भाग्य चमका है, पर मैं तो इस अभागे से परीशान रहता हूँ। अवारा-गर्दी में मारा चलता है। घर का खाता है और गधे की तरह मोटा हुआ जाता है। यदि राजपरिवार में जी लगा कर रह जाय तो फिर हमारी वुढौती तो सुख से कटे। मैं कहे देता हूँ—मुनुआ को समझा दो वर्ना मुझसे खर्च नहीं चलेगा। सरकार के दरवार मे जव वुलाहट है तो जाकर कोई काम ले—दो पैसे कमाने का ढङ्ग सीखना चाहिये न कि इधर-उधर चोर लुच्चों के साथ मारा-मारा फिरना।"

उन्मादित होकर पिताजी व्याख्यान दे रहे थे और मुझे ऐसा

जान पड़ता था कि मानो मुझे बलपूर्वक कड़वा-जहर का घूंट पिलाया जा रहा हो। मैं सोचने लगा कि, हे भगवान्! जमींदार ने ऐसा कौन-सा मन्त्र फूक दिया कि सारा नक्शा ही बदल गया।

अम्मा ने कहा—"चुप रहो, मुनुआ, अब हमे सुख मे बैठा कर खिलायेगा। सरकार ने जब खुद कहा है कि सुरेश को कोई काम दे दिया जाय तो समझ लो कि हमारे भाग्य के कपाट खुल गये। गङ्गामाई ने मेरी मशा पूरी की कि एक सुन्दर सी बहू के साथ जाकर गगामाई की पूजा करूँगी। देखो, तुम ना नू मत करना। कहे देती हूँ। परमात्मा वह दिन तो दिखलावे।"

हायरे न केवल हमारा पतन ही हुआ है, बल्कि हमारी आत्मा का भी सत्यानाश कर डाला गया है। इतना पतन इतनी स्वाभिमान-हीनता—मै क्षोभ और क्रोध से तिलमिला उठा और बिना एक शब्द बोले घर से बाहर हो गया।

अम्मा ने पुकारा, पर मैंने अनसुनी करके अपने आपको खुली हवा मे लाकर खड़ा कर दिया। मै थका-सा, हारा-सा, खुले मैदान की ओर चला। अभी तक मेरे जोड़-जोड़ मे दर्द था—रह-रह कर सिर चकरा जाता था, आँखों के आगे अँधेरा छा जाता था। मैं धीरे-धीरे खेतो की ओर चला। शुक्ल पक्ष का मलिन चन्द्रमा पूर्व दिशा की ओर झलमला रहा था। अभी तक गरम हवा का एकाध झकोरा आ जाता था। दूर दूर तक उदास खेत फैले हुए थे जिन पर चाँद की हल्की रोशनी फैल रही थी—गजब का सन्नाटा था, मनोवेधक निर्जनता थी। मैं चाहता था कि गॉव की छाया से बाहर निकल कर जरा देर बैठूं। गॉव का वातावरण आज मेरा दम घोटने वाला था। मैं जब घर से निकलता तो मेरी ओर उँगलियाँ उठती। कोई आकर जमींदार की दया मे मेरे भाग्योदय होने वाले मे

कपाल की चर्चा चला जाता। किसी ने भी भूल कर यह नहीं पूछा कि तुम्हारी पसली मे कहाँ दर्द है और कौन सा दाँत टूट गया है और छाती दुखती है या नहीं, सिर कहाँ पर फूटा है और तुम्हारे पिता की कमर मे कहाँ चोट है तथा तुम्हारी बहन और अम्मा के मुँह पर ही क्यों गालियाँ सुनाई गई। जो आते वे यही उपदेश दे जाते कि—सरकार ने जब तुम्हें बुलाया है तो कोई नौकरी अवश्य देंगे। आवारागर्दी छोड़ कर कुछ कमाना सीखो। माता पिता को इस बुढ़ौती में तो चैन से बैठने दो। ऐसे उपदेशों से मेरे कान पक गये—दिल पक कर कबाब हो गया। जमींदार ने मुझे बुलाया है जरूर, पर इसके मानी इन देहातियों ने लगा लिये कि अब मैं जमीं-दार की नाक का बाल बन बैठा। मैं ऊब उठा—कभी कभी तो यही जी चाहता कि किसी उपदेशक की नाक पकड़ कर उमेठ दूँ—अरे बेहूदे, मेरी तो यहाँ जान जा रही है और तुम्हें नौकरी की चिन्ता सता रही है। जब समस्त गाँव की यही दशा है तो फिर किस किस से लाठियाँ चलाता फिरूँ।

जैसे ही मैं हरिचरण के खेत के पास पहुँचा तो बद्री चाचा सिर मे अँगौछा लपेटे और दाहिने हाथ मे लोटा तथा बांयी मुट्ठी मे मिट्टी लिये मिले। मैंने चाहा कि एक बगल से आँख बचाकर चल दूँ पर उनकी शनि दृष्टि मुझ पर पड़ ही गयी—ललकार कर बोले—"अभी से यह बेरुखी बच्चा, चाचा, पिता पर ख्याल रखना।" मैंने मतलब समझ लिया। लज्जा से मेरा मन सिकुडता गया। मैं बोला—'प्रणाम चाचा।'

बद्री ने मुँह की सुरती उगल कर कहा—"परमात्मा करें, तुम्हारी मंशा पूरी हो। मै सब जानता हूँ बेटा, जमींदार साहब ने तुम्हें बुलाया है। बस, लो न तुम्हारे पाँचों पजे घी मे हैं। आखिर इसी दिन के लिये न पिता पुत्र को पढ़ा लिखा कर

आदमी बनाता है। एक मेरा है भदैया! साला एक नम्बर का पाजी है। रामायण पढता है और लिखता भी है पर कौडी, काम का नहीं है। बेटा, उस पर भी ख्याल रखना। तुम्हारा बड़ा भाई है। किसी काम मे लगा दोगे तो गरीबी की पीडा कुछ कम हो जायगी।"

मैं बोला—"चाचा, जमींदार ने योही मुझे बुलाया है। नौकरी की बात तो दूर है। उससे मुलाकात हो जाय तो अहा-भाग्य समझो। अभी तो जो पीटा गया हूँ उसी के दर्द से जान जा रही है। सालो ने दुश्मन की तरह मारा है मुझे चाचा!"

बद्री बोले—"मैं सब समझता हूँ बच्चा! मुझसे बहानेबाजी नहीं चलेगी। मुझे पक्का पता लगा है कि तुम्हें जमींदार बुला रहे हैं—कोई अच्छी-सी नौकरी देगे।"

मैं झल्ला उठा। यहाँ तो मेरी जान जा रही है और ये अभागे मगलोत्सव कर रहे हैं। मन ही मन मैं फिर झल्ला उठा कि बिना कुछ बोले आगे बढ गया। बडबडाते हुए मेरे बद्री चाचा भी चले गये। वे कह रहे थे—"भगवान जिसे देता है—छप्पर फाड़ के। पर यह लड़का आवारा है। जमींदार की प्रसन्नता से फायदा उठाना इसके भाग्य में नहीं है। खैर, मैंने ऐसा कृपालु जमींदार नहीं देखा। दूसरा कोई होता तो इसकी जान ले लेता पर उलटे २५) देकर फिर भी बुलाया है।—"लोग बेकार मालिक की शिकायत करते हैं।

बद्री धीरे धीरे बड़बड़ाते हुए आगे बढ़ गये और मैं सीधे नदी तट की ओर चला। नदी का जल सूख रहा था। एक पतली सी धारा बीच मे बहती थी। संध्या ने रात्रि का रूप धारण कर लिया था। सर्वत्र शान्ति थी। मैं धीरे धीरे जल के किनारे पहुँच कर बैठ गया। दूर पर जमींदार के [illegible]

रोशनी इस तरह दिखलाई पड़ती थी मानो आज ही वारी में कोई वारात उतरी है।

मैं चुपचाप जल के किनारे बैठ गया। हवा मे मस्ती थी, उदासी थी, आलस्य था। मेरे सिर पर आकाश था और सामने अन्धकार मे डूवा हुआ वन। जल की कल-कल ध्वनि वहुत ही भली लग रही थी। कोई दूर पर गा रहा था—

"साधो यह मुरदन का गॉव।"

इस गीत मे कवीरदास की आत्मा वोल रही थी। मै एक दम आत्म-विस्मृत हो गया। आधी रात को मुझे चेत हुआ। चारों ओर गभीर निस्तब्धता। सामने निर्जन वन। मैं अनमना सा घर की ओर चल पड़ा।

---

(१६)

भगवान शकर अवढ़र दानी हैं—यह न जाने कव से सुन रहा हूॅ, पर हमारे गॉव को भगवान ने व्यथा का दान दिया, विपत्ति का वरदान दिया, वि नाश का प्रसाद दिया।

दिन जाते देर नहीं लग ती—देखते देखते दो मास व्यतीत हो गये और मै नित्य जमींदार के यहॉ आता जाता रहा। और चाहे जो कुछ हो जमींदार के यहॉ आने जाने से गॉव वालों मे मेरी इज्जत वढ गयी, पर उस इज्जत से सोवरनसाव का दिल नहीं पसीजा। मेरी पढ़ाई के लिये और जमींदार को नहर वनाने के लिये जो २००) दिये गये थे, वह सव सोवरन-साव से कर्ज लेकर। सोवरन ने जव अपनी वही पर नजर डाली तो उसे विश्वास हो गया कि अव यदि अधिक दिनों तक विलम्ब किया जायगा तो सूद और असल दोनों का इतना

विशाल रूप हो जायगा कि मेरे पिता की जायदाद उसकी तुलना में अपर्याप्त प्रमाणित होगी। उसने सध्या समय मेरे पिता जी को बुलवाया। गॉव के मध्यभाग मे एक विशाल पीपल वृक्ष था। इसी वृक्ष के नीचे साबजी का दरबार लगता था। मोटी काया, काला रङ्ग, बडी बडी ऑखे, मैली धोती और एक हाथ मे हुक्का—यही साव जी का साधारण परिचय है। सामने ही घर था—चार-चार कोल्हू चलते थे, घडो तेल नित्य पेरा जाता था। एक बगल मे बैल बॉधे जाते थे। मोटे-मोटे बैल 'नाद' मे थुथना डालकर खली-भूसा का रसास्वादन लिया करते थे। एक फटी-सी दरी पर बैठा और अपने उस चश्मे को जिसकी एक ओर की डडी के टूट जाने से धागा बँधा था, नाक की नोक पर खिसका कर सोबरन साव बैलो का भोजनानन्द देखा करते थे तथा दो चार कर्जदार किसान हर घडी आप के कदमों मे बैठे होते थे। बुलौआ आने पर पिता जी ने सारा रहस्य समझ लिया। उन्होने मुझे साबजी के पास भेज दिया। जिस समय मैं सोबरन साव के सामने पहुँचा, वे कुछ लिख रहे थे। एक किसान चाँदी के दो छोटे-छोटे कडे लिये बैठा था। मेरी सूरत देखते ही उन्होने खीस निकाल कर कहा—"ठाकुर नहीं आये। अच्छा कोई हर्ज नहीं है। आओ बैठ जाओ।" फिर तत्काल उसने उस किसान को लक्ष्य करके कहा—हॉ जी, तीन रुपये असल और दो रुपये तेरह आने सूद के, कुल पॉच रुपये तेरह आने। तुम भी जोड़ लो—दो पैसे का रुपया रोज। समझ गये? डेढ आने रोज—एक मास का कितना सूद हुआ। भैया सुरेश तुमने स्कूल मे पढ़ा है ना, जोडो तो तीस आना और पद्रह आना दो रुपये और तेरह—।"

उस गरीब ने कहा—"दादा, मैं समझता हूँ, पर इतना रु० सूद कैसे चलेगा। पिछले हफ्ता मेरे दो बैल अचानक मर

गये—जमींदार ने भी लूट ही लिया। सोवरन ने अपने गन्दे दाँतो को निकाल कर कहा—तुम्हारा भाई, बैकुण्ठ तो आने रुपये पर कल ही आठ रुपये ले गया है। तुम चीज रख रहे हो इसीलिये मैंने आध आना फी रुपया कहा। यही नियम है। गाँव भर से पूछ लो।"

मैं ऊब उठा। मेरे लिये इस अर्थ पिशाच के पास बैठना असह्य था। पूछा—"साव जी पहिले मेरी ओर ध्यान दीजिये—आपका यह व्यवसाय है। दिन भर भीड़ लगी रहती है।"

सोवरन ने कहा—"हाँ सुरेश बाबू, तुम्हारे पिता जी होते तो मामला तै हो जाता। खैर, मैंने इसलिये लिये बुलाया था कि इधर आठ मास से. सूद नहीं मिली है। दो सौ पचपन सूद के हो गये हैं। नौ सौ तो दूसरे हिसाब में है।"

मैंने कहा—यह सब ठीक है साव जी, पर अभी हमसे एक छदाम भी देते नहीं बनेगा।

"तो"—साव जी बोले—"मैं नालिश करने ही वाला हूँ।"

मैंने रुखा-सा जवाब दिया—"आपकी इच्छा, पर अपनी हानि और लाभ पर पहिले विचार कर लेना।"

साव जी—"इसके मानी ?"

मैं—"इसके मानी तो साफ हैं। हजार डेढ़ हजार की जायदाद भी तो अपने नहीं है—लोगे क्या ? जो कुछ था जमींदार के पेट में चला गया। समझ लो।" साव जी ने उत्तेजित होकर कहा—"बात बनाने आये हो—याद रक्खो मेरा नाम सोवरन साव है।"

मैं भी क्रोधाभिभूत हो गया—"तुम भी याद रखना कि मेरा नाम सुरेश है। जब हमारे पास खाने भर को भी अन्न नहीं है तो फिर तुम्हें कहाँ से सूद दें।"

साव जी बोले—"चोरी करके दो, डाके डाल कर दो,

मैं क्या जानूँ। कल वसूल करूँगा। अपने बाप से जाकर कह दे। "अपनी इज्जत का ख्याल हो तो कल रुपये धर जायँ।"

मैंने चिल्ला कर उत्तर दिया "अबे हट! बडा वसूल करने वाला बना है। अगर तुझ मे हिम्मत हो तो वसूल कर लेना—सूदखोर पापी! तेली का बच्चा!!"

बातो ही बातों में काफी हो-हल्ला मच गया। बहुत से आदमी जमा हो गये। जो सोबरन के कर्जदार थे, वे उसकी ओर से गला फाड-फाड कर चिल्लाने लगे और जो उसके दबाव मे नहीं थे, वे मेरी ओर से वकालत करने लगे। एक घटे के तू-तू मैं-मैं के बाद बात समाप्त हो गयी। पिता जी ने जब यह संवाद सुना तो उन्होंने सिर पीट लिया। कहने लगे—"अभी तक मुनुआ की शरारत नहीं मिटी है। अगर साव जी ने नालिश ठोक दी तो सत्यानाश हो जायगा। तुमने तो मानो घर मे ही आग लगायी। जानते हो, तुम्हारे ही चलते मैं उस पिशाच के चगुल मे फँसा था। तूने तो बडा अनर्थ कर दिया।"

मैं अपने पिता जी से ऐसी बातें सुनने की आशा नहीं रखता था—खास कर उलहना तो बहुत ही भयानक था, कि मेरे ही चलते उन्हें कर्जदार होना पडा। मैं मसोस कर रह गया। सचमुच मुझे कुछ कमाना चाहिये था, पर भाग्य के साथ बहस नहीं छेड़ी जा सकती। स्कूल से निकलते ही मैंने इधर-उधर दौडना भी शुरू कर दिया था, पर प्रभु-ख्याल की दया से जिस अर्माग और आवारागर्दी मे मैंने कुछ साल व्यतीत किये, उसने मेरे जीवन-राग मे ही विकार पैदा कर दिया। मै अपने भविष्य की ओर से निश्चिन्त हो कर आराम से वर्तमान के साथ आँख मिचौनी खेलता जाता था। पिता जी की पीड़ा और मुसीबतों का जब मुझे ध्यान याद आया तो मेरा हृदय बिलख उठा। मैंने सोचा कि अब दिन

नौकरी किये काम चलना कठिन है। यद्यपि मेरी बहन अब अपने ससुराल चली गयी थी और परिवार का भार हल्का हो गया था, फिर भी खेत इतने काफी नहीं थे, जो लगान वगैरह देकर पेट चल जाता—उस पर सोबरन साव का कर्ज और कर्ज पर सूद की दौड़! मै सहसा हत बुद्धि-सा हो गया। शहर मे मैंने भी काफी कर्ज कर लिया था। उड़ाऊ प्रकृति का होने के कारण सदा मुफलिसी का शिकार बना रहना पड़ता था। नाना प्रकार के व्यसनों मे पड जाने के कारण मैं स्वयम् अपने आपसे ऊब उठा था।

लाचार मैंने एक दिन सन्तू बाबा से अपनी विपदा की कहानी सुनाई। वे बोले—"अरे रुपयों की क्या कमी है। तुम तो हमारा साथ देते ही नहीं।"

मैंने उत्सुकता से पूछा—"किस तरह साथ दूँ दादा!"

"बस दिल"—सन्तू बाबा बोले—"परसों हम एक जगह जायँगे। तुम भी चलो—फिर देखो मजा।"

मेरा हृदय धडक उठा। मै समझ गया। दिल ऐसे कामों के लिये गवाही नहीं देता था। ईमानदारी से दो पैसे कमाना—चाहे मुझे मजदूरी ही क्यों न करनी पड़े—मुझे मजूर था, पर चोरी, डकैती तो ...।

सन्तू बाबा बोले—"तू ने कोशिशे कीं, पर कहीं दो रुपये की नौकरी भी नहीं मिली। अब तू बच्चा नहीं है। कल सोबरन मामला दायर कर देगा. फिर सब कुछ स्वाहा! बच्चा, भीख मॉग कर पेट चलाना पडेगा। इस जलील जीवन से तो मर जाना अच्छा है। जमींदार गॉव को उजाडना ही चाहता था। रोज किसी न किसी किसान के खेत की इज्जत जाती है, रोज किसी न किसी गरीब के खेत नीलाम किये जाते हैं।

यह दशा तो जमीन्दार की है। महाजन कर्ज देगा तो किस चीज पर—जब तुम्हारे पास जायदाद ही नहीं बचेगी तो फिर किस बिरते पर उधार मॉगने जाओगे ?"

मैं बोला—"तो फिर क्या करूँ—बतलाओ न तुम्हीं ?"

"वही करो जो मैं कहता हूँ"—सन्तू बाबा ने कहा—"बस, चलो हमारे साथ। भाग्य ने गवाही दी तो फिर मौज से चॉदी काटना, मनमाने मौज उडाना—समझ गये बेटा !"

बात पक्की हो गयी। यह निश्चित हुआ कि कल मैं अपने पिता जी से कह दूंगा कि नौकरी की खोज मे मेरा शहर जाना आवश्यक है। और—और गॉव मे भी इसकी चर्चा चला दूॅगा। इसके बाद चुपके से आकर सन्तू दादा के यहॉ छिप जाऊॅगा।

मैंने यही किया भी। पिता जी ने कहा कि—"जरा मन लगा कर नौकरी की तलाश करना। व्यर्थ इधर-उधर घूम कर घर का ऑटा गीला न करना।" पुजारी जी से भी शहर जाने का सवाद कह दिया, क्योंकि वे हमारे गॉव के बोलते अखबार थे। मैं बिस्तर उठाकर चल भी पडा और दो कोस जाकर जगल की ओर चला गया। जब आधी रात व्यतीत हो गयी तो छिपता हुआ, सन्तू बाबा के द्वार पर पहुँचा। सन्तू बाबा घर—गॉव के एक छोर पर—जगल की तरफ—था ही। मुझे किसी ने भी नहीं देखा—शायद परमात्मा देख रहे हों पर वे किसी से कुछ कहते-सुनते नहीं, इसी लिये मन निश्चिन्त था।

अवारे-गर्दी की हालत मे इधर उधर घूमते रहने के कारण बहुत दिनों से मैं इस दल को जानता हूँ पर क्रियात्मक रूप से सहयोग प्रदान करने का अवसर मुझे शहर मे एक-दो बार मिला था। अब तो सन्तूदादा के आग्रह से बकायदे इस दल में शामिल होना पड रहा है। पहिले—जैसा कि घर मे या समाज

में रहने के कारण मेरा संस्कार था—मैं चोरों और डकैतों आदि को अत्यन्त ही घृणित दृष्टि से देखता था? मैं इन्हें समाज का कलङ्क माने बैठा था और सोचता था कि यदि मैं बादशाह या कोई सर्वश्रेष्ठ पद पर होता तो सभी चोर-डकैतों को तोप से उड़वा देता, पर अब जब अपनी ओर देखता हूँ तो मुझे विश्वास हो जाता है कि अधिकतर पापी अपनी इच्छा से पाप-पथ के पथिक नहीं बने बल्कि वे इस साँचे मे ढलने के लिये लाचार किये गये। समाज सदा अपने आपको अत्यन्त सुन्दर रूप में देखना चाहता है और अपने इस विचार के कारण अपने अङ्गों की काट-छाँट करता रहता है। कटे हुए अङ्ग यद्यपि गल-सड कर समाज के ही वायु-मण्डल को विषाक्त बना डालते हैं पर इसकी चिन्ता नहीं है। समाज ने ससार को न केवल दानी, योद्धा, विद्वान आदि-आदि रत्न दिये हैं बल्कि चोर, डकैत, वेश्या, पाकेट-मार, हत्यारा, व्यभिचारी, शराबी आदि रोग-महारोग भी उपहार स्वरूप प्रदान किये हैं। जिन उच्च शिक्षा-प्राप्त सज्जनों को मैं इस पतित दल मे देखता हूँ वे यदि समाज से खदेड़े न जाते तो उसके गौरव की वृद्धि ही करते पर बेकारी, सभ्य-लूट आदि सक्रामक रोगों ने समस्त ज्ञान को, समस्त शिक्षा को, केवल पेट भरने का साधन मात्र बना दिया है।

मैं पछताता हुआ सन्तू बाबा के दल में मिल गया। चाचा मुकदमा दायर करने सदर गये थे, थोड़े से खेतों मे से आधा वे ही ले लेते। एक कच्चा घर और एक कुँआ। इसका बटवारा भी होता ही। फिर बचता क्या—माँ का आग्रह है कि अगले वर्ष घर मे बहू लाये बिना उन्हें चैन नहीं है। मैं तो वैवाहिक बन्धन मे पडना नहीं चाहता, पर माता की इच्छा, माता की आज्ञा—क्या करूँ। सोबरन सम्भवत इसी महीने मे अदालत

की शरण जाय। मैंने जोड़ कर देखा है १६००) सूद और मूल मिला कर—बापरे! मैं जानता हूँ कि मनुष्य परिस्थिति के फेर मे पड़कर न जाने कौन-कौन से पाप कर बैठता है। पिछले महीने मे—वहाँ, बिसुन नगर की सड़क पर जो एक राहगीर लूटा गया था और दूसरे का खून कर दिया था, उसका क्या हुआ। दारोगा आये, इन्सपेक्टर आये और बड़े-बडे आफिसर आये पर क्या हुआ। जमींदार ने यद्यपि तिरबेनी पासी को पकडवा कर भेजवा दिया, क्योंकि इसने ३, ४, साल पहिले गुमास्ता बहादुरसिंह को पीट दिया था, क्योंकि गुमास्ता आधी रात को इसके घर मैं घुसा जा रहा था जहाँ इसकी बहन और स्त्री रह रही थी। जमींदार ने खून का मुजरिम बना कर तिरबे-निया का चालान करवा दिया, पर सच्चा अपराधी ही लूटे हुए रुपयों से जमींदार का लगान अदा कर के आज एक दुधार गऊ खरीदने की चेष्टा मे है। मैं जानता हूँ कि आज जो खूनी है वह कल अत्यन्त साधु प्रकृति का था। एक चींटी को भी कुचलना उसे मंजूर न था। गाँव का सब से सहृदय, सरल, विनयी, सत्याचारी, धार्मिक व्यक्ति के हाथ आज खून से रगे हुए हैं। जब उसे ३ दिनों तक—लगान अदा कर देने के लिये से बाँध कर रक्खा गया, जूतों से पीटा गया, मुसलमान से मुँह में थुकवाया गया तो लाचार बेचारे ने खून कर के, डकैती कर के जमींदार का लगान अदा किया। नीच जाति का होते हुए भी वह वहुत से ऊँची पगड़ी वालों से उत्तमतर था—वह आज खूनी है, डकैत है—धीरे-धीरे समाज के लिये वह एक अभिशाप बन जायगा।

मैं इसी चिन्ता मे डूब उतरा रहा हूँ कि मेरी जीवननैया किस किनारे पर लगेगी। मन्नू बाबा के साथ जिस महा-जघन्य कृत्य के लिये मुझे जाना पडेगा उसकी भयंकरता का मुझे ज्ञान

है। मैं यह सोच चुका हूँ कि मैं किधर जा रहा हूँ पर अब तो लौटने का मार्ग भी बन्द होने पर है। मैं अनुभव करता हूँ कि कुछ मेरी कमजोरी ने कुछ हृदय की अस्थिरता ने और कुछ आवश्यकता ने मुझे पाप-पथ का पथिक बनाया।

एक दो करके कई व्यक्ति सन्तू बाबा के घर मे जमा हो गये। सभी एक से एक विचित्र, कोई पजाबी बोलता था तो कोई बगला, कोई अंग्रेजी बोलता था तो कोई गुजराती। मैं इस अनमेल-मेल को देख कर चकित हो गया। सभी भुखमरे, सभी समाज से खदेड़े हुए—दुर-दुराये हुए।

---

(१७)

मैं पूछता हूँ आपसे—"सच बतलाइएगा, कभी आपने पाप पथ पर चल कर देखा है? कभी आपने उस दिशा की यात्रा की है, जहाँ पतितों की ही बस्ती है। भुखमरों की ही पैठ लगी रहती है, खून, डकैती, व्यभिचार जहाँ दिन-दहाड़े होते हैं, जूआ, शराब-खोरी एक साधारण सी बात है? क्या कभी आपने समाज की छाती पर लात रख कर विनाश की ओर जाने की कोशिश की है, क्या कभी धिक्कारो की झडी के बीच से सिर ऊँचा कर के आप आगे बढ़े हैं—नहीं, यदि मेरे प्रश्नों का एक ही छोटा-सा उत्तर आपके पास है "नहीं" आप मेरी इस पाप गाथा को मत पढ़िये। आप इसके पेज न उलटें? मैं कहता हूँ कि यह कोई उपन्यास नहीं है जिसमे कवित्व हो, इश्क मुहब्बत के चोंचले हों, मिलन और बिछुड़न का धूप-छाँह हो। यह एक सत्यानाशी जीव की जीवन-गाथा है जिसे उसने अपने खून से लिख कर बीच चौरस्ते पर डाल दिया है।

पथिक इसे पैरो से रौंदे या उठा कर आँखो से लगा ले—लेखक को परवा नहीं ।

हाँ, तो जब अपने काँपते हुए पैरो से हम पाप-पथ पर चलने का प्रयत्न करते हैं तो ऐसा जान पडता है कि यह पथ दुर्गम है, कटकाकीर्ण और ऊबड़-खाबड है । जीवन का छकडा ऐसे पथ पर चल नहीं सकता, पर जब एक बार झिझक मिट जाती है तो फिर ससार के सभी पथों से यह पथ निराला जान पड़ता है । इस पथ पर खूब हवा आती है, खूब प्रकाश मिलता है, इस पथ पर राजा, मुल्ला, पण्डित, उपदेशक सभी बिना विरोध के चलते हुए आपको नजर आयेगे । दिन के प्रकाश मे बैठ कर उच्चस्वर से गीता-पाठ करने वाले रात के अन्धकार मे आपको इस पथ पर अचानक मिल जायगे—यह पथ ससार के सभी पथों से श्रेष्ठ है ।

सन्तू बाबू ने एक बार बाहर झाँक कर देखा और फिर एक-एक करके हम इधर-उधर चले गये । मेरा हृदय धडक रहा था । काले नकाब के भीतर से देखने का अभ्यास न रहने के कारण ठोकरे खा-खाकर आगे बढता था । धीरे-धीरे हम एक खुली सड़क पर आ गये—मोटर खड़ी थी, बैठे और हवा से बातें करते हुए एक ओर भागे ।

जिसके घर को लक्ष्य बना कर हम जा रहे थे वह भी एक महाजन था । कजूस भी था तो पल्ले सिरे का । फूस के कच्चे घर मे रहता था । बडी आसानी से हमने घर मे प्रवेश किया और धमका कर मालमता उठाकर राही हुए । जिस समय हम उस महाजन की मुश्के बाँधकर रुपये माँग रहे थे उस समय की उसकी आकृति हृदय को दहला देने वाली थी । उसकी स्त्री, लडकी एक बड़ा-सा लडका भय से अधमरे से हो रहे थे—लडकी ! नौजवान, सुन्दरी और बड़ी-बडी अनियारी आँखे ! मेरा हृदय

ऐसा द्रवित हुआ कि मैंने उसके हाथ खूब कसकर नहीं बाँधे और मुँह मे कपडा ठूँसने के स्थान पर अपने हाथों से ही बन्द कर रक्खा। यद्यपि यह मेरी कमजोरी थी, सम्भवत. वह आचरण अपने दल के प्रति विश्वासघात भी माना जा सकता है। मुझे याद है, उस सुन्दरी ने पहले तो भयभीत हरिन की तरह चकित होकर इधर-उधर देखा फिर वह मेरे तमचे के सामने थर-थराकर बैठ गयी, मैंने उसे—बड़ा ही निष्ठुर कर्म है—मैंने उसे जब बाँधना शुरू किया तो गिड-गिडाकर बोली—"मुझे छोड दो—मैं पैरों पड़ती हूँ।" मैं बोला—"डर मत—चुप्प।"

उसने कहा--दोहाई माँ बाप की! अम्मा को मत मारो! भैया—बाबा रुपये दे देंगे!"

वह काँप रही थी और मेरे पैर पकड़ने की चेष्टा करती थी पर मैंने तत्काल उसके हाथ पैर बाँध दिये—मुँह पर हाथ रक्खे बैठा रहा।

हाँ, एक बात जरूर है कि चलते समय मैंने महाजन की तोंद पर एक लात जमा दी थी—उसकी सूरत सोबरन साव से मिलती थी। मेरी नजर एक मोटी-सी बही पर पड़ी। मैंने उस बही को भी बगल में दबा लिया—सोचा सैकडों प्राणियों का कल्याण इस बही के नाश हो जाने से संभव है। मोटर के पास पहुँचते ही मैंने थोड़ा-सा पेट्रोल डालकर बही मे आग लगा दी और फिर दो चार झूठी फायरें करके भाग खड़े हुए। इस बार हम शहर की ओर चले। सुबह होते-होते हम दिनेश के घर के दरवाजे पर पहुँच गये—मैंने उष काल के प्रकाश में देखा कि हमारे साथ दिनेश भी था जिसे मैं सारी रात नहीं पहचान सका—मेरे आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा।

दिनेश—दिनेश एक धनी का पुत्र-दिनेश जो आज कालेज

मे शिक्षा पारहा है डकैतो के दल मे—मैं अचकचा गया। दिनेश ने मेरा हाथ पकड़ लिया और धीरे से दबा दिया। क्षण भर मे सभी साथी तितर-बितर हो गये। दिनेश नोटो का बन्डल लिये अपने घर के भीतर घुसा। दिनेश ने कहा—"तुम प्रभुदयाल के यहाँ चले जाओ। उससे कहना कि रात देवनन्दन के यहाँ नाच मे रह गया। देवनन्दन अपना साथी, रात उसके यहाँ उत्सव था। चलते समय उसने गिनकर मुझे बहुत से नोट दिये और कहा यह तो अपना हिस्सा—सँभाल कर रखना—यहाँ रहोगे तो खतरा है। प्रभुदयाल रायसाहब का लड़का है, वहाँ पुलिस नहीं जा सकती। उसे सन्देह भी नहीं होगा कि रायसाहब की कोठी में डकैतों का डेरा रहता है।

मैं तत्काल भागा। सड़क पर निकल कर एक ताँगा किया और फिर प्रभुदयाल की कोठी पर। मेरी सूरत देखते ही प्रभुदयाल दौड़ा—"अरे किधर से टपक पड़े।" मैंने कहा—"भैया मेरी अम्मा मरी जा रही थी—इसी से बिना कुछ कहे सुने भाग गया था—पिछली रात को आया, पर देवनन्दन के यहाँ चला गया। अपना साथी है—रात भर वहीं रहा।"

अच्छा, ठडे हो लो, कह कर प्रभुदयाल मेरे डेरे की व्यवस्था में लग गया। मैं चाहता था कि दो-चार घण्टे एकान्त मे रहूँ। रात की घटना मेरे मन को अस्थिर किये डालती थी। मोटर की दौड़, गाँव, महाजन का घर, लूट, पलायन—और फिर प्रभुदयाल की कोठी। रात शहर से कोई पचास मील पर डाका पडा था—इस समय हम इतनी दूरी पर पैर फैला फैला कर थकावट मिटाने का उद्योग कर रहे हैं। धन्य विज्ञानमयी हमारी नव्य सभ्यता, जो चोरी करने वालों को और चोर पकड़ने वालों को दोनो को समान रूप से सहायता

देती है। उदाहरणार्थ—मोटर को ही लीजिये। इसकी सहायता से हम चोरी भी करते हैं और इसी की सहायता से पुलिस हमे खदेड कर पकड़ भी सकती है। मैंने जब नोटों को गिना तो मुझे यह जान कर बेहद खुशी हुई कि आज मैं आठ सौ रुपयों का स्वामी हूँ। यद्यपि मैं ऐसी जगह पर था जहाँ से घटनास्थल काफी दूरी पर है पर मेरा हृदय पीपल के पत्ते की तरह रह रहकर काँप उठता था। मेरा ध्यान फाटक की ओर था और अपने कमरे के आसपास जब मुझे किसी के चलने फिरने की आहट मिलती थी तो मैं सन्नाटे मे आ जाता था। मैं चाहता था कि अपने पास इतने रुपयों को रक्खूँ पर यहाँ मेरा अपना कौन था—जिसके पास अपने पाप की इस कमाई को सुरक्षित रखता। घर जाने का विचार भी रह रहकर मन में उठता था पर घर का ध्यान करते ही रोंगटे खड़े हो जाते थे। कभी-कभी उस भोली-भाली भयाकुल बालिका का ध्यान हो आता था, जिसे मैंने तमचे के बल से दहला रक्खा था तो हृदय को मानो कोई चुटकियों से मसल देता था। कैसा था उसका रूप-ऐश्वर्य! उसके पिता का धन, उसके उस धन की तुलना मे जिसे निसर्ग ने दिल खोलकर दिया था, तुच्छ था। मैं कभी-कभी अपने मन को धिक्कारता भी हूँ। मैं एक दरिद्र व्यक्ति हूँ—विनाश पथ का पथिक हूँ। मेरा जीवन तो एक मस्तूल और कम्पासहीन जहाज की तरह इस सीमाहीन भवसागर मे इधर-उधर तरंगों पर खेल रहा है। 'प्रेम' की बात तो मुझे सोचना भी नहीं चाहिये। प्रेम ही उन व्यक्तियो का खेल है जो भर पेट खाकर पेट का अन्न पचाने के लिये 'नमक सुलेमानी' फाँका करते हैं। गरीबों के लिये तो प्रेम एक नृशंस विडम्बना मात्र है। मेरा जीवन जो प्रतिकूल परिस्थितियों के साथ धींगा-धींगी करता हुआ अन्त की ओर

प्रतिक्षण अग्रसर हो रहा है प्रेम की दुनिया के बाहर की ही चीज है।

मैं चुपचाप लेटा हुआ दिमाग के चरखे पर विचारों का सूत कात रहा था कि कानो मे सुन्दर बाजे की आवाज आयी। यह आवाज धीरे-धीरे निकट आती हुई प्रतीत होती थी। थोड़ी देर मे मेरी कोठरी के बगल मे—रायसाहब के फाटक पर बजने लगा। कितना मधुर स्वर था। सधे हुए तालसुर से कुछ लोग 'बैण्ड' बजा रहे थे। इसी समय एक चपरासी मेरे कमरे मे घुसा। मैं इस बाजे के सम्बन्ध मे कुछ पूछना ही चाहता था कि चपरासी बोला—"छोटे सरकार आपको याद कर रहे है।"

बात यह थी कि शहर मे एक अनाथालय था। बहुत से अनाथ बच्चे उस अनाथालय की छत्रछाया मे पाले जा रहे थे। समय-समय पर इन बच्चों का जुलूस बना कर 'सहायता' की भीख माँगने के लिये निकाला जाता था। आज राय-साहब के यहाँ यह पार्टी आयी थी। कोई सौ बच्चे रहे होंगे। इन्हीं बच्चो मे कुछ बैण्ड बजा रहे थे—अनाथालय का एक अधिकारी हाथ मे चन्दाबही लिये साथ था। 'बैण्ड' पूरी गत बजा कर चुप हो गया। सर्वत्र सन्नाटा छा गया—उदासी सी छा गयी। प्रभुदयाल ने पाकेट से निकालकर कुछ रुपये उस फैलायी हुई झोली मे डाल दिये जिसे दो लड़के फैलाये हुए 'बैंड' के आगे-आगे चल रहे थे। दो लड़के दो डंडों मे लगे हुए कपड़े का एक साइन बोर्ड लिये हुए थे। काले मखमल के टुकड़े पर सुनहले तारों से लिखा हुआ था—

"बा० कृष्णदास अनाथालय।"

संस्थापित १८८५ ई०

एक बार फिर बैण्ड बजाया गया और यह दल बिदा हो

गया। 'मैंने प्रभुदयाल से पूछा—"यह तो बड़ा ही दारुण दृश्य है।"

प्रभुदयाल—"सो कैसे ?"

मैं—"आप नहीं समझते ? इतने बच्चों को अनाथ की अवस्था में पहुँचा देने का कारण रूप कौन है ?"

प्रभुदयाल—"ईश्वर ! भाग्य !! और कौन ?"

मैं—"यह आप गलत बात सोच रहे हैं।"

प्रभुदयाल—"तो फिर तुम ही सही बात बोलो।"

"हाँ, कहता हूँ सुनिये—" मैं बोला—"इन बच्चों की इस अवस्था मे पहुँचा देने का कारण आप हैं।"

"मैं"—चकित हो कर प्रभुदयाल ने कहा—मैंने इन्हें अनाथ बना डाला। तुम क्या कह रहे हो सुरेश ? एक दम असम्भव बात है।'

"असम्भव बात नहीं है, मेरे मित्र !"—मैं बोला—"आपने ही इन्हें अनाथ बना डाला। देश के धनियों ने ही इन्हें इस अवस्था मे पहुँचा दिया है और अपनी दानवीरता का विज्ञापन करने के लिये या पाप पर परदा डालने के लिये आप लोगों ने अनाथालय खोलने का ढोंग रचा है।'

सिलसिलेवार की लूट के कारण कई लाख बच्चे अनाथ होते हैं, यह बतलाना कठिन है। कितने बच्चों के माँ-बाप रखाना मे दब कर मरते हैं, कितने बच्चों के माँ-बाप सड़क पर मरते हैं, कितने बच्चों के माँ-बाप जेलों मे मरते हैं, कितने बच्चों के माँ-बाप उपवास करके मरते हैं कितने बच्चों के माँ-बाप खेतों पर हल जोत जोत कर मामूली रोग से सड़ कर मरते हैं, कितने बच्चों के माँ-बाप बिना दवा और उपचार के सड़कों पर भीख माँग-माँग कर मरते हैं—यह बतलाना कठिन है, पर ऐसी दुर्घटनाये होती हैं नित्य। शायद आप इस कटु

सत्य को स्वीकार करने में आनाकानी करेंगे, पर सत्य तो अपनी ही जगह पर रहेगा, चाहे कोई उसका आदर करे या ठोकरें मार कर उसे दूर हटा दे।

मैंने देखा कि प्रभुदयाल का चेहरा गम्भीर हो उठा है, मुरझा गया है, लज्जित हो गया है।

---

(१८)

जब-जब मैं दिनेश के यहाँ जाता तो मेरे दिमाग में यह बात हुरदंग मचाने लगती कि आखिर इसने रायसाहब का डेरा छोड़ा क्यों—इतना ही नहीं वहाँ आना-जाना भी बन्द है। एक दिन संध्या समय मैं दिनेश के डेरे पर पहुँचा। आज मुझे खास तौर पर बुलाया गया था—कई मित्र जमा होनेवाले थे।

दिनेश का घर शहर के अत्यन्त घने मुहल्ले मे था, जिस मुहल्ले मे ऐसे लोगो की बस्ती थी, जिन्हे मैं समाज के मुँह का कालिख कह सकता हूँ, जिसे समाज ने अपने हाथ से ही, स्वेच्छापूर्वक अपने लगा रक्खा है। मैं दिनेश के घर की भौगोलिक स्थिति का वर्णन करना नहीं चाहता और न मेरा यही उद्देश्य है कि आपको अपनी गाथा सुना सुना कर थका डालूँ। हाँ, एक बात यहाँ पर कह देना युक्तिसंगत होगा और वह यह कि दिनेश के घर मे हमारे दल की बैठकें हुआ करती और दूर से आनेवाले किसी सम्माननीय अतिथि के सत्कार में जल्से भी हुआ करते थे—अपने दल के सदस्यों से नवागन्तुक सज्जन का परिचय कराया जाता था, और इस प्रकार सम्मानित करके अतिथि भगवान को विदाई दी जाती थी। उस दिन मैं ठीक समय पर दिनेश के द्वार पर पहुँचा। भीतर सन्नाटा-सा था। रात अधिक व्यतीत हो गयी थी।

आकाश घटाओं से भरा हुआ था, रह रह कर बिजली थिरक उठती थी, महाशून्य के ऑगन में। हवा बन्द थी। गलियॉ कीचड़ से भरी हुई थीं। दोनों ओर के कच्चे घरों की नालियॉ गली में अपनी दुर्गन्धि फैला रही थीं—मैं इधर-उधर देख कर घर के भीतर घुमा—दिनेश तथा दो और साथियों को बैठे देखा।

मैं बोला—"भाई, बड़ा अन्धकार है—उफ्।"

दिनेश ने कहा—"हमारे जीवन से भी अधिक ?"

मैं—"नहीं-क्या यह सम्भव है कि हमारे जीवन से अधिक अन्धकार का निर्माण प्रकृति कर सकती है—यह कभी सम्भव नहीं है।"

दिनेश—"अच्छा—तुम्हारे सामने जो भाई बैठे हैं, ये एम० ए० हैं—तुम जानते ही हो। एम० ए० तक शिक्षा दिलवाने में कितना खर्च पड़ता है, इसका अनुमान तुम स्वयम् कर सकते हो कि 'सेकण्डइयर' तक पढ कर तुमने छोड़ा और ग्रैजुएट हो कर मैंने। पिता की सारी सम्पति एम० ए० की सर्वग्रासी ज्वाला मे स्वाहा करके हमारे इन भाई ने दो चीजे प्राप्त की—अकालवृद्धत्व और दरिद्रता या बेकारी जो समझो। इन्होंने पेट की ज्वाला मिटाने के लिये कौन कौन-सा कर्म नहीं किया—ठगी, चोरी, लड़कियों के बेचने का व्यवसाय, जूआखाना पर अन्त मे हमारे दल मे आये। यह सुन कर तुम्हें जरूर कष्ट होगा कि इनकी बड़ी लड़की आज 'छज्जे' पर बैठी हुई है। वह क्या—? एक धनी के यहाँ आप मास्टर हुए और वेतन तै हुआ ५) - धन्यभाग ! एक एम० ए० पास ५) मे नौकरी करे—आश्चर्य ! आप गये थे दूसरे विचार से। खैर, चोरी के इलजाम मे आपको एक साल की सजा हुई। इसी बीच मे इनका परिवार शहर की

और भागा—जमींदार ने खदेड़ दिया। यह लम्बी कहानी है—लड़के अनाथालय में हैं, पत्नी रेल से कट मरी और लड़की कोठे पर बैठी हुई घृणित जीवन व्यतीत कर रही है।

अब बतलाओ सुरेश कि हमारा जीवन कितना अन्धकार-पूर्ण है। आखिर—हम क्या करें। अन्न तो चाहिये ही। नंगे रह सकते हैं—नागा सम्प्रदाय के साधु नंगे रहते हैं, विलायत या अमेरिका में नंगों की बस्ती है। खैर, हम नंगे रहकर वस्त्र की समस्या हल कर लेंगे पर अन्न का क्या होगा ? यह तो जरा सोचो—मैं सोचता हूँ कि · ·· ··।"

दिनेश जोश में आकर कह रहा था—उसकी आवाज धीरे-धीरे ऊँची उठ रही थी। इसी समय एक बिखरे हुए बालों वाला बौडम-सा व्यक्ति भीतर घुसा। यह हाथ में एक लाठी लिये सिगरेट पीता हुआ आया। दिनेश की बातों की लड़ी टूट गयी—नवागन्तुक ने कहा—अरे, यह सभा मंच नहीं है। बाहर तक तुम्हारी आवाज जा रही है—धीरे-धीरे।"

दिनेश ने कहा—"प्रकाश भैया, तुम किधर से आये—तुम्हें तो इस समय जेल में रहना चाहिये।"

मैं सन्नाटे में आ गया। अरे, यह जेल से भागा आ रहा है—बागी। मैंने अच्छी तरह उसका मुँह देखा—गोरा सुन्दर चेहरा, नौजवान गठीला बदन, तितली की तरह चंचल सतर्क दृष्टि।

प्रकाश ने कहा "मैं सचमुच पकड़ लिया जाता, पर तुम्हें मालूम होना चाहिये कि मैं ताड़ पर चढ़ना जानता हूँ।"

सभी ने चकित होकर कहा—"ताड़ पर ?"

"हाँ हाँ ताड़ पर—जब मैंने समझ लिया'—प्रकाश ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा—कि अब भागना असम्भव है तो एक पेड़ से ताड़ पर चढ़ गया। सभी लालटेन ले लेकर इधर उधर

खोज रहे थे और पलक मारते मै १०० फीट ऊपर पहुँच गया—पत्तों के झुरमुट मे। जब गाँव का कोलाहल शान्त पड गया तो धीरे से उतरा—कपड़े फट गये—देखते नहीं हाथों की कैसी दुर्गति हुई है। और साथी तो चम्पत हो गये—मैं बीस मील से आ रहा हूँ। एक महीना दवा कराऊँगा तो ये घाव आराम होंगे—बडी जलन है।"

उसने अपने हाथ दिखलाये तो हम सिहर उठे। सुना कि यह एक धनी का लड़का है। अवारागर्दी से खास प्रेम है। पिता जी ने खदेड दिया तो इधर-उधर मारा-मारा फिरा—इसका बडा भाई भी नहीं पूछता। दो तीन बार शराब पीकर वेश्या के घर मे दगा करने के कारण—बड़े घर की खिचडी खा चुका है। अब बाकायदे चोरी आदि का रोजगार करके पेट चलाता है, शराब पीता है और जूआ खेलता है।

मैंने कहा—"प्रकाश बाबू, आप तो भाग्य से बच गये। खैर, ईश्वर को धन्यवाद।"

प्रकाश बोला—"ईश्वर! ईश्वर कहाँ है। देखो दिनेश मैंने पाँच-छः साल के बाद आज फिर ईश्वर का नाम सुन लिया। गरीबों के लिये आज तक कोई ईश्वर बना ही नहीं है। जानते हो संसार सुन्दरी स्त्री के पीछे पागल बना रहता है, जानते हो वह स्त्री यदि जो अपने पति के मन को अपनी सुन्दर मुट्ठियों मे कैद रख सकती है, क्या नहीं कर सकती। जिस पर उस स्त्री की कृपा दृष्टि होगी उसी पर उसका पति प्रसन्न रहेगा। ईश्वर की स्त्री है लक्ष्मी—सम्पत्ति! जिस पर लक्ष्मी की दया होगी वही तुम्हारे ईश्वर का कृपापात्र होगा। गरीब तो लक्ष्मी के कोप-भाजन हैं, फिर ईश्वर का यदि वे भरोसा रक्खें तो उनकी भूल है। ईश्वर कभी भी गरीबों का साथ नहीं देगा—इतिहास के पृष्ठ उलट कर देखो।" प्रकाश—आहत प्रकाश—ठीक एक

पंडित जी की तरह शान से बोल रहा था। इधर उधर से आकर दो-तीन व्यक्ति और बैठ गये—आवारों की खासी मंडली जम गयी। कोई शराब के नशे मे चूर था तो कोई सिगरेट पी रहा था।

एक व्यक्ति जो अपने जूतों को इसलिये गालियाँ दे रहा था कि उनकी दरार से गोबर कीचड़ ने उसके पैरों को गन्दा बना डाला था, बोला—'तमाशा है। ईश्वर और धर्म की चर्चा सभा मे की जाती है या घर मे बैठ कर। घर का धर्म है टका और ईश्वर है रोटी। भाई, कल मेरी गैर हाजिरी मे सेठ धन्नूमल ने मेरे घर पर धावा बोल दिया। किराये की वसूली के लिये उसने कानूनी कार्रवाई की थी। मेरी लड़की बीमार है—पन्द्रह दिनो से दवा को कौन कहे जलावन के अभाव मे गरम पानी देना भी कठिन है। बरसा हो रही थी—उसने सभी को घर से निकाल दिया। लड़की को तीव्र ज्वर था। होश मे नहीं थी फिर भी सेठ ने दया नहीं की, सड़क पर उसे लाकर सुला दिया—स्त्री ने बहुतेरी मिन्नतें की, आध घंटा ठहरने को कहा पर वहाँ तो जरनैली हुक्म था—"अभी घर खाली कर।"

बगल के घर मे जाते-जाते लड़की भीग गयी। दोनो बच्चे रोते-चिल्लाते माँ मे चिपटे चलते थे। ११ साल की लड़की को गोद कौन उठाये। मेरी स्त्री स्वयम् बुखार से बीमार रहती है। मुहल्ले वालों ने सेठ को समझाया। पर वह था 'मारवाड़ी'। परिणाम यह हुआ कि दो दिनों से बेचारी त्रिदोष में है। हवा लगने से निमोनिया की शिकायत पैदा हो गयी है—यह तो हमारा हाल है। द्रौपदी के चीर हरण होते समय जो कृष्ण थे वे आज कहाँ है—कोई बतलाना तो।"

वह पागल की तरह खिलखिला कर हँसने लगा। दिनेश बोला—"परवा नहीं मातूराम! हम लोग सहायता करेंगे।"

साधूराम—"भैया, तुम्हारी तो आशा ही है, पर मैं तो ससार का हाल बतला रहा हूँ। दया-धर्म पर पढ़े-लिखे आदमी जितने बहस करें, लेख छपवावे, पुस्तकें लिखे पर जहाँ दया-धर्म को रचनात्मक रूप देने की बारी आती है वहाँ एक भी माई का लाल नजर नहीं आता—सभी गधे के सींग की तरह छू-मन्तर हो जाते हैं।"

दिनेश ने कहा—"भाई, बात सही है। आखिर मैंने ही राय-साहब का क्या बिगड़ा था। उनका छोटा लड़का जो क्षमा और दया का पात्र कभी भी नहीं माना जा सकता, अकारण मेरा शत्रु बन बैठा। मेरा घर छूट गया, पिता माता, भाई सभों से नाता तोड देना पड़ा।"

मेरी उत्सुकता एक बारगी जाग उठी, पर मैंने देखा कि दिनेश का चेहरा क्षोभ के मारे तमतमा उठा। नथने फूल उठे और कपाल की नसें खडी हो गयीं। सन्नाटा छा गया।

"आप सोचिये न"—फिर दिनेश बोला—प्रभुदयाल ने अपने बाग के माली की विधवा लडकी को अपने कमरे मे बुला कर बन्द कर दिया। जब मामला थाने तक पहुँचा तो उसे रहीम मियाँ के घर भेज दिया गया—यह रहीम उसका पुराना साईस है। इस कुकर्म मे रायसाहब का भी हाथ था—वंश की प्रतिष्ठा बचाने के लिये एक अबला का जीवन नरक बना डाला गया। मेरे विरोध करने का परिणाम हुआ मेरे जीवन का सत्यानाश कर डालना। मुझ पर चोरी का इलजाम लगाया गया। मैं थाने पर पकडकर भेजा गया—दो सप्ताह जेल में रहा, फिर मुकदमा प्रमाण के अभाव मे मेरे अनुकूल समाप्त हुआ, पर मेरी बदनामी, जिल्लत सीमा पारकर गयी थी। पिता जी ने आत्महत्या कर लेने का प्रण किया। तुम सोच सकते हो, जिस समय मैं जेल की हवालात से बंदी की सूरत मे

आता था कोर्ट में अपने मामा, पिता, भाई और दूसरे रिश्ते-दारों को देखकर लज्जा से अधमरा हो जाता था। इस मुकदमे का हाल अखबारों तक मे छपाया गया। बड़े-बड़े बैरिस्टरों और वकीलो की सहायता से मैं बेदाग तो छूटा पर १०) जुर्माना होकर ही रहा—मै दागी हो गया। यह है अपने निकटतम सम्बन्धी रायसाहब रामप्रसाद का जो मेरे मौसा होते हैं।"

क्रोध से मैं तिलमिला उठा। हफ्तों से मैंने अपनी उत्सुकता को हृदय मे छिपा रक्खा था, पर आज दिनेश की कथा सुनकर मेरी उत्सुकता भयानक क्रोध के रूप में बदल गयी। मैं चिल्ला उठा—"ऐसा है वह पतित प्रभुदयाल—नाश हो उस अधम का।"

दिनेश ने कहा—"इतना ही नहीं सुरेश, वह अबतक मेरे पीछे पंजे झाड़ कर पड़ा हुआ है। मेरे घर के चारों ओर पुलिस मडराती रहती है। मैं सन्देह की दृष्टि से देखा जाता हूँ—और इसकी परवा नहीं, पर मेरा भविष्य तो एक प्रकार से मटियामेट हो चुका है। मैंने सदा के लिये अपने घर को नमस्कार कर दिया। पिता जी की तो नहीं पर माता की याद दिल को रुलाती रहती है। सुरेश! मैं अपना कलङ्कित मुख लेकर गॉव मे प्रवेश नहीं कर सकता। देखें, अब इस जीवन में माता के चरणस्पर्श करने का अवसर आता है या नहीं। कई बार अपने गॉव मे गया हूँ पर चोरी की ताक मे चोर की तरह अपने घर को हसरतभरी नजरों से देखता हूँ—जी चाहता है कि दौड़कर मॉ के चरणों मे लिपट जाऊँ। देखता हूँ—दरवाजे पर लालटेन जल रही है, दो-चार व्यक्ति बैठे हैं, सम्भवतः उनमे पिता जी भी हों, पर हाय! मैं अन्धकार के पर्दे में छिपा रहनेवाला एक चोर हूँ। मैं एक गृहस्थ के घर मे कैसे जाऊँ?

दिनेश की आँखो से गंगा जमुना उमड़ी!

(१६)

जीवन की धारा कब किस ओर प्रवाहित हो जायगी, पता नहीं। दिनेश की कहानी सुनकर मेरा मन रायसाहब की कोठी से ऐसा उचटा कि यहाँ एक क्षण टिकना मेरे लिये पहाड़ हो गया, दूभर हो गया। जो हो, पर दिनेश की आज्ञा थी कि मैं वहीं रहूँ—मेरा वहाँ रहना एक "गम्भीर अर्थ" रखता है। पीछे चलकर मुझे पता लग गया कि वह गम्भीर अर्थ क्या है, पर तत्काल मैंने यही अनुमान किया कि दिनेश मुझे घोषित आवारा बनाने को कतई तैयार नहीं है। रायसाहब के यहाँ रहते हुए भी मैं कोई भला आदमी नहीं कहा जा सकता। प्रभुदयाल के साथ मोटर पर बैठकर बाजारों मे आधी-आधी रात तक घूमना यद्यपि अवारागर्दी का एक प्रधान अग है, पर मोटर पर बैठकर आवारागर्दी करना अवारागर्दी नहीं है। सच्ची आवारागर्दी तो है पैदल चलकर अपनी गरीबी का सेहरा बाँधे अवारागर्दी करना। धन एक ऐसा नकाब है जिसके भीतर भयानक पापी चेहरा भी छिप जाय तो समाज उँगलियां नहीं उठा सकता। याने रुपयों की दीवार की ओट मे बैठकर आप चाहे जो अनर्थ करें—सब क्षम्य है। मैं यदि अकेला रहता और आवारागर्दी कुछ कम मात्रा में भी करता तो हजारों क्या लाखों जोडी आँखे क्रोध और घृणा से मुझे रात-दिन घूरा करतीं और मैं समाज का खतरा करार दे दिया जाता. पर प्रभुदयाल के साथ नरक से भी बुरा जीवन व्यतीत करते हुए भी मैं दूध का धुला हुआ बना रहा। मैं यह सोच पर कभी-कभी घबरा उठता था कि प्रभुदयाल की मित्रता किसी न किसी दिन मेरे गले मे फाँसी की रस्सी बनकर पडेगी और मेरा दम अचानक घुट जायगा। फिर भी—सचमुच मन

कितना स्वार्थी होता है—फिर भी मैं मन ही मन प्रभुदयाल का साथ छोडना पसन्द नहीं करता था। कभी-कभी—जब दिनेश की बाते याद आतीं तो--सिर गरम हो उठता, पर फिर तुरन्त भाव की गर्मी पर तुच्छ स्वार्थ्य का शीतल-जल बरस पड़ता था। दो घडी की मौज जीवन-नैया को अतल-जल मे घसीटे लिये जाती थी, डुबाये जा रही थी, पर खतरे को निकट से देखते हुए भी सँभलने को जी नहीं चाहता था। दिन पर दिन, मास पर मास समाप्त होते-होते वर्ष का अन्तिम छोर जब पहुँच गया तो परिस्थिति को न जाने किधर से एक ऐसा झटका लगा कि नक्शा ही बदल गया।

मैं लगातार अपने गाँव पर जाता और पिता जी को रुपयों से सहायता पहुँचाया करता। चाचा जी अब अलग रहते थे। जमींदार के यहाँ उन्हें एक नौकरी मिल गयी थी। नहर की खोदाई का काम चालू हो गया था—मजदूरों की देख-रेख के लिये बहुत से फालतू नौकर रक्खे गये थे। मेरे चाचा जी भी हाथ मे लाठी लेकर मजदूरो के बीच में अकड-अकड चला करते थे और गन्दी-गन्दी गालियाँ बक कर अपनी हुकूमत के चन्द दिन पूरा किया करते थे। यद्यपि मैं काफी रुपये .। जाता था, पर शहर मे ही अपनी पाप की कमाई का काफी हिस्सा समाप्त कर डालता था। शराब और जुआ—बस, इन दो व्यसनों का मैं व्यसनी था। दिनेश भी यद्यपि एक पथ भ्रष्ट युवक था, पर वह शराब तो छूता भी नहीं था और जुआ का नाम सुनते ही उसकी त्यौरियाँ बिगड़ जाती थीं। प्रभुदयाल में भी शराब और जुए की भयानक लत थी। मैं आगे पलटू के नाम की चर्चा चला आया हूँ—हम पलटू के ही 'मैखाने' में जमा होते थे और सुरा-सुन्दरी के साथ "पी बारह' की बहार देखते थे। पलटू एक मजीब व्यक्ति था।

हमारे लिये वह सदा उत्सुक रहता था। प्रभुदयाल की जेबों पर दृष्टि जमा कर पलटू जिस समय खड़े होकर हमारा स्वागत करता था, उस समय का दृश्य—वाह! क्या कहने हैं।

एक दिन बैठे-बिठाये एक शरारत सूझी। मैंने प्रभुदयाल से कहा—"सुनो जी, कुछ व्यापार करना चाहिये। मैं एक शानदार होटल खोलूँगा—तुम्हारी क्या राय है।"

प्रभुदयाल ने सिर खुजलाते हुए कहा—"भाई बात तो मार्के की सोची है तुमने! वहाँ पर—हाँ, जहाँ कृष्टो बाबू का दवाखाना है—खूब गुलजार जगह है। स्टेशन से भी नजदीक है और आस-पास में कोई होटल भी तो नहीं है। मेरी भी यही राय है।"

मैं—"सो तो आपने ठीक ही कहा, पर प्रारम्भ मे दो हजार का खर्च है—इतने रुपये कहाँ से लाऊँ। हाँ, कुछ तो मैं व्यवस्था करूँगा शेष का भार कौन उठावेगा।"

प्रभुदयाल—"बाबा तो यहीं मर रहे हैं—वर्ना कोई ऐसी बात नहीं है। अच्छा—तो भाई मेरा भी हिस्सा रहेगा। मैं और कुछ नहीं जानता, एक 'रूम' मेरे लिये रिजर्व रहने देना। बड़ा आनन्द आवेगा। शानदार होटल हो जिसमे शहर के नामी-नामी रईसों का आवागमन बना रहे। पलटू जैसे पाजी को घुसने न देना—साला चोर है! पिछले सप्ताह उसने ऐसा तिकड़म भिड़ाया, ऐसी चालबाजी की कि मुझे लाचार होकर सोने के बटनों से हाथ धो लेना पडा। उसकी मेहरिया तो पूरी चुड़ैल है। क्यों जी, सुना है कि पलटू जवान लड़कियाँ चुरा कर मँगवाता है और उन्हें फिर बेंच देता है। क्या यह बात गलत नहीं है?"

मैंने कहा—"मुझे इन बातों से क्या वास्ता। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि वह शराबखाने का ठेकेदार है—बस! मैं

तो आपके ही मुँह से सुन रहा हूँ कि वह बुर्दाफरोशी करता है।"

प्रभुदयाल—"मैंने सपना थोड़े देखा है भाई, एक बार खुद पलटू ने मुझसे ही चर्चा चलाई थी। सचमुच जिस सुन्दरी को उसने मुझे दिखलाया था वह सो क्या हजार में एक थी पर—बहुत रोती थी। हफ्तों से रो रही थी और बेंत से पलटू दिन में तीन-चार बार उसकी फूल जैसी देह को पीटता था—शरीर तिल-तिल घायल था, फिर भी रूप का क्या कहना है। मैं तो बहुत देर तक एक टक उसे निहारता रहा। वह फर्श पर बैठी हुई थी और पलटू बेंत लिये खड़ा था—उसने मेरी सूरत देखते ही सिर झुका लिया तो पलटू ने डपट कर कहा—"सिर उठाओ।" वह निर्जीव पुतली की तरह मेरी ओर ताकने लगी। पलटू ने फिर आज्ञा दी—"खड़ी हो जाओ—सरकार को सलाम करो—"आज्ञा पालन किया गया। मैं . . ।'

प्रभुदयाल में एक आदत है—वह चाहे किसी बात की, संसार की किसी भी चर्चा को चाहे जिस रूप में शुरू करे, पर उसका अन्त होगा किसी रूपवती सुकुमारी की चर्चा के साथ। मैं होटल का गीत गाना चाहता था और प्रभुदयाल ने एक अरहतासुन्दरी की कथायन का राग छेड़ दिया। मैंने पलटू की कहानी को खत्म करने की गरज से कहा—"वह आयी आई कहाँ से?'

प्रभुदयाल बोला—'एक मेले से—बड़े घर की है। सुना है बहुत से गहने थे। जाति में भी ऊँची है पर है—।'

अब क्यों गयी'—मैंने पूछा—"तुम्हें मालूम है?'

'हाँ क्यों नहीं—प्रभुदयाल ने सगर्व उत्तर दिया—

"आज कल वह औरत मौलवी फजरुल्लाहसन के ड्राइवर के पास है—३००) मे बिकी। मैं यदि होटल खुलने की बात जानता तो खरीद लेता। मैं पलटू से कहूँगा—होटल के लिये दो-चार सुन्दर नौजवान दाइयों का प्रबन्ध कर दे।"

मैंने कहा—"मौलवी के ड्राइवर का क्या नाम है?"

प्रभुदयाल—फत्तू खॉ—पठान है, पिछले साल उसकी बीबी मर गयी। घर मे खाने-पीने को है—वह औरत सुख में रहेगी।"

एक ऊँची जाति की स्त्री हो या नीच जाति की। मेरे सामने प्रश्न है मातृत्व के आदर का। स्त्रियॉ न केवल विलास की पुतली हैं बल्कि ससार की उत्पत्ति की कारणमूर्ति और एक प्रकार से मातृ-शक्ति से सम्पन्न हैं। प्रभुदयाल एक धनी का लड़का है। उसे किसी के सुख-दुःख से क्या वास्ता। मेले से एक औरत भुलावा देकर गुण्डों के अड्डे में लायी जाती है और फिर उसे ललना से पूरी पिशाची बनाकर कुतिया-बिल्ली की तरह बेच दिया जाता है। हमारे यहॉ जो अनाचार फैला हुआ है उसका कारणरूप पलटू के दर्जे के व्यक्ति कभी भी माने नहीं जा सकते। प्रभुदयाल की कोटि के जीव ही समस्त अनर्थों की जड हैं—मैं यहॉ पर रुक कर सोचना चाहता हूँ कि अगर ३००) और ५००) देने वालों की कुरुचि पर चट्टान रख दी जाय तो फिर पलटू किसी मेले मे जाकर व्यर्थ को किसी की प्रतिष्ठा लूट न लाते। खैर, इन बातों से इस समय कोई खास मतलब नहीं है पर होटल की बात पक्की हो गयी और यह तै हुआ कि इसी मास मे होटल खुल जाना ही चाहिये। हॉ, एक बात—मै चाहता हूँ कि उस पर विचार न करु पर दिमाग रह रह कर उद्विग्न हो उठता है। तो उस

गरीबनी का क्या हुआ ? कुछ भी हो मुझे क्या मतलब ! पर इन बदमाशों की बदमाशी के सिलसिले को बढ़ाने और कायम रखने का प्रोत्साहन तथाकथित सभ्य समाज से ही मिलता है जो समाज सदा थाने मे इन्सपेक्टर बन कर, कोर्ट मे मैजिस्ट्रेट बन कर, जनसमूह में अगुआ बन कर, विद्यालय मे शिक्षक बन कर, मन्दिरों मे धर्मोपदेशक बन कर सदाचार को कायम रखने का खोखला प्रयत्न करता है और अत्याचारियों के समूल नाश के लिये अपनी बुद्धि, अपना बल लगाता है। एक दिशा से जिस कार्य को कायम रखने और आगे बढाने का प्रोत्साहन जो समाज देता है, दूसरी से उस कार्य को मटिया-मेट कर डालने का भी यही प्रयत्न करता है—क्या मनुष्य अपने आप को ठगते रहना जी से पसन्द करता है ? यह बात नहीं है कि हम अपनी आँखों में स्वयम् धूल झोंक कर सुखी होते हैं। जो तथाकथित सभ्यसमाज पातकों की उत्पत्ति का कारण रूप है, वही पातकों का भयानक विरोध भी करता है यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं है। सर्प बन कर किसी को धीरे से चुटुक लेना और फिर लाठी बनकर अपनी ही लकीर पीटने को उद्यत होना—यह एक अजीब मिसाल है। खैर, मुझे इन बातों से क्या मतलब !

मैंने भी 'होटल' खोलने का विचार स्थिर कर लिया और दिनेश से भी सम्मति प्राप्त कर ली। एक दो करके हमारे दल के सभी मित्रों ने मेरे इस विचार का समर्थन किया, पर आप यह न भूलें कि प्रत्येक समर्थक अपने खास दृष्टिकोण से मेरी इस योजना का समर्थन करता था। उदाहरणार्थ—'प्रभुदयाल ने होटल खुल जाने से 'नाच-रंग' की मौज मे सुविधा समझी तो दिनेश ने अपने खास दृष्टिकोण से लाभ उठाने का मौका खोजा। मैंने उल्लू के पट्ठों को फाँस कर

अपना उल्लू सीधा करने का उचित तरीका—होटल के रूप में समझा! कोई साथी शराब पीने की सुविधा को मद्दे नजर रखकर मेरी योजना मे हाथ बटाता है कि या तो किसी ने कुछ और ही बात सोची। गरज यह कि चारों ओर से समर्थन प्राप्त करके मैंने भी होटल की स्थापना करने का अटल निश्चय कर लिया। इस कार्य की प्रारम्भिक विधियाँ पूरी की गयीं—शहर के धनीमानी सज्जनों से मिल लिया गया, जिनकी उपस्थिति का और सहयोग का मेरे और दिनेश के लिये बड़ा मूल्य था—! मैंने हिन्दी बोलने का अभ्यास कम कर दिया तथा सदा सूट मे ही रहने की चेष्टा करने लगा। सुन्दर विजिटिङ्ग कार्ड छपवाये गये—पर्चे-विज्ञापनों की वर्षा का हाल क्या लिखूँ। गरज यह कि तिल का ताड़ बना डाला गया। कलकत्ते से फर्निचर, प्लेट, काँटे, चम्मच आदि मँगवाने की बात सोची जाने लगी। दिनेश ने भी इस कार्य की ओर भरपूर ध्यान दिया तथा बहुत से सज्जनों ने जी भर कर उत्साहित किया। प्रभुदयाल ने खुशी और उत्साह के मारे अपने पिता की तिजोरी की ताली बनवा ली और भविष्य की ओर से दृष्टि हटा कर तथा घृणापूर्ण भविष्य के कटु परिणाम की चिन्ता भुला कर एक दम २।४ हजार रुपयों के सुन्दर रंगीन नोट अपने अधिकार मे कर लिया। एक दिन दिनेश के यहाँ जब पहुँचा तो वह एक मोटी-सी पुस्तक मे गर्क था। मैंने होटल की चर्चा चलाई तो उसने पुस्तक पर से नजर उठा कर कहा—"नरक का नाटक' मैंने समझा शायद इस पुस्तक का नाम "नरक का नाटक" होगा पर बात दूसरी ही थी। मेरे होटल का पूरा रूप इस एक शब्द मे निहित था। मैं काँप उठा—मैं समझ रहा था मैं किस ओर जा रहा हूँ, पर परिस्थिति मनुष्य का हृदय शून्य बना डालती है। मनुष्य, मनुष्य का नहीं, परिस्थिति का गुलाम होता है।

———

गरीबनी का क्या हुआ ? कुछ भी हो मुझे क्या मतलब ! पर इन बदमाशों की बदमाशी के सिलसिले को बढ़ाने और कायम रखने का प्रोत्साहन तथाकथित सभ्य समाज से ही मिलता है जो समाज सदा थाने में इन्स्पेक्टर बन कर, कोर्ट मे मैजिस्ट्रेट बन कर, जनसमूह में अगुआ बन कर, विद्यालय मे शिक्षक बन कर, मन्दिरों मे धर्मोपदेशक बन कर सदाचार को कायम रखने का खोखला प्रयत्न करता है और अत्याचारियों के समूल नाश के लिये अपनी बुद्धि, अपना बल लगाता है। एक दिशा से जिस कार्य को कायम रखने और आगे बढ़ाने का प्रोत्साहन जो समाज देता है, दूसरी से उस कार्य को मटिया-मेट कर डालने का भी यही प्रयत्न करता है—क्या मनुष्य अपने आप को ठगते रहना जी से पसन्द करता है ? यह बात सही है कि हम अपनी आँखों में स्वयम् धूल झोंक कर सुखी होते हैं। जो तथाकथित सभ्यसमाज पातकों की उत्पत्ति का कारण रूप है, वही पातकों का भयानक विरोध भी करता है यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं है। सर्प बन कर किसी को धीरे से चुटुक लेना और फिर लाठी बनकर अपनी ही लकीर पीटने को उद्यत होना—यह एक अजीब मिसाल है। खैर, मुझे इन बातों से क्या मतलब !

मैंने भी 'होटल' खोलने का विचार स्थिर कर लिया और दिनेश से भी सम्मति प्राप्त कर ली। एक-दो करके हमारे दल के सभी मित्रों ने मेरे इस विचार का समर्थन किया, पर आप यह न भूले कि प्रत्येक समर्थक अपने खास दृष्टिकोण से मेरी इस योजना का समर्थन करता था। उदाहरणार्थ—"प्रभुदयाल ने होटल खुल जाने से 'नाच-रग' की मौज में सुविधा समझी तो दिनेश ने अपने खास दृष्टिकोण से लाभ उठाने का मौका खोजा। मैंने उल्लू के पट्ठों को फाँस कर

अपना उल्लू सीधा करने का उचित तरीका—होटल के रूप में समझा! कोई साथी शराब पीने की सुविधा को मद्दे नजर रखकर मेरी योजना मे हाथ बटाता है कि या तो किसी ने कुछ और ही बात सोची। गरज यह कि चारों ओर से समर्थन प्राप्त करके मैंने भी होटल की स्थापना करने का अटल निश्चय कर लिया। इस कार्य की प्रारम्भिक विधियाँ पूरी की गयीं—शहर के धनीमानी सज्जनों से मिल लिया गया, जिनकी उपस्थिति का और सहयोग का मेरे और दिनेश के लिये बड़ा मूल्य था—! मैंने हिन्दी बोलने का अभ्यास कम कर दिया तथा सदा सूट मे ही रहने की चेष्टा करने लगा। सुन्दर विज-टिङ्ग कार्ड छपवाये गये—पर्चे-विज्ञापनों की वर्षा का हाल क्या लिखूँ। गरज यह कि तिल का ताड़ बना डाला गया। कलकत्ते से फर्निचर, प्लेट, काँटे, चम्मच आदि मँगवाने की बात सोची जाने लगी। दिनेश ने भी इस कार्य की ओर भरपूर ध्यान दिया तथा बहुत से सज्जनों ने जी भर कर उत्साहित किया। प्रभुदयाल ने खुशी और उत्साह के मारे अपने पिता की तिजोरी की ताली बनवा ली और भविष्य की ओर से दृष्टि हटा कर तथा घृणापूर्ण भविष्य के कटु परिणाम की चिन्ता भुला कर एक दम २।४ हजार रुपयों के सुन्दर रंगीन नोट अपने अधिकार मे कर लिया। एक दिन दिनेश के यहाँ जब पहुँचा तो वह एक मोटी-सी पुस्तक मे गर्क था। मैंने होटल की चर्चा चलाई तो उसने पुस्तक पर से नजर उठा कर कहा—"नरक का नाटक' मैंने समझा शायद इस पुस्तक का नाम "नरक का नाटक" होगा पर बात दूसरी ही थी। मेरे होटल का पूरा रूप इस एक शब्द मे निहित था। मैं काँप उठा—मैं समझ रहा था मैं किस ओर जा रहा हूँ, पर परिस्थिति मनुष्य का हृदय शून्य बना डालती है। मनुष्य, मनुष्य का नहीं, परिस्थिति का गुलाम होता है।

———

(२०)

दिन जाते देर नहीं लगती। कोटि-कोटि जीवधारियों को आयु को अपने साथ समाप्त करता हुआ दिन, एक एक सेकण्ड पर पॉव रखता हुआ विनाश की ओर जिस सफाई से अग्रसर होता रहता है, उस पर किसी का ध्यान नहीं जाता।

होटल की व्यवस्था करते-करते धीरे-धीरे छ मास समाप्त हो गये। इन छ. महीनों मे मुझे एक बार भी घर जाने का अवसर नहीं मिला। एक दिन हठात् पिता जी मेरे कमरे पर उपस्थित हो गये। मैं अपने जूतों में पालिश लगा रहा था। अकचका कर मैंने उनकी ओर देखा। सूखा चेहरा, दाढी बढी हुई मानो छ मास से जेल की हवालात मे हों, कोटरगत् ऑखें जिनसे मानसिक क्षोभ प्रकट हो रहा था, क्षीण शरीर और धूलभरे हुए दोनो पैर जिनमे जूते तक नदारत। इस सूरत मे अपने पिता जी को देखने का यह मेरे लिये पहला ही मौका नहीं था, आज वे कुछ विशेष रूप से कुचले हुए से दिखलाई पड़ते थे। पैर धोने के आग्रह करने पर उन्होंने रुखाई से अनिच्छा प्रकट की तो मेरा मन शका से भर गया। वे मेरे खाट पर थके हुए से वैठ गये। मै इतना डर गया था, मन ही मन इतना सहम गया था कि कुछ पूछने की हिम्मत नहीं होती थी। मेरा निर्बल मन किसी अशुभ सम्वाद को सुनने के लिये कतई प्रस्तुत न था। यह मेरी हद दर्जे की निर्बलता थी कि मैं सत्य को छिपाना चाहता था—उसकी रूप-रेखा की कल्पना करके ही मैं साहस छोड़ रहा था। कुछ देर ठहर कर पिता जी ने कहा—"तुम यहाॅ बैठे हो और गॉव मे आग धधक रही है।"

आग! आग धधक रही है—यह कैसी बात है? मैंने सहमते हुए पूछा—"सो कैसे?"

"जमींदार हमें चैन की नींद लेने नहीं देना चाहता"—पिता जी बोले—"पिछले सप्ताह उसकी कचहरी मे डाका पड़ा। परमात्मा जाने डकैत किधर से आमरे, पर आधा गाँव आज पुलिस के पजे मे पडा तड़प रहा है।"

मैंने कहा—"कौन-कौन मुद्दालेह बनाया गया है?"

पिता जी—"कितने नाम गिनवाऊँ—रामधन, प्रताप, जीवन, ईदन चाचा के दोनों लड़के, हरिया, जगन, सिद्धू, मैं।"

मैं चिल्ला उठा—"अरे आप भी?"

"हाँ, हाँ, मैं भी"—पिता जी ने कहा—"और शायद तुम भी।"

मैं सन्नाटे मे आ गया। मैं तो जानता भी नहीं कब डाका पडा—पर मुझे सन्तू बाबा के यहाँ कुछ भनक मिली थी और—और हाँ, उस दिन एक नक्शा भी देखा था। एक दिन दिनेश ने सो रुपये देकर मुझसे कहा भी था कि "यह लो अपना हिस्सा।" क्या तमाशा है। मैं सचमुच इस जीवन से घिना-सा उठा था, पर यह ऐसा रास्ता है कि पीछे लौटने का कोई उपाय नहीं रह जाता। समाज ऐसे पापियों को पूछता नहीं और न कानून ही शरण देता है। क्षण भर मे मैंने सारी परिस्थिति का मन ही मन अध्ययन-सा कर लिया और फिर खाँस कर गला साफ करते हुए कहा—"परवा नहीं। मैं समझ लूँगा।" सचमुच मेरा मन क्रोध से भर गया था। मैं उठ कर खडा हो गया और चिल्ला कर बोला—"पिता जी, आप चिन्ता न करें। जब हम डकैतों की श्रेणी मे बल पूर्वक ठेल-धकेल कर पहुँचा ही दिये तो फिर किसकी चिन्ता।"

पिता जी ऐसी नजरों से मेरे चेहरे की ओर देख रहे थे

मानों वे मेरे भीतर उठने वाले तूफानी मनोभावों को पढ़ रहे हों या पढ़ने की चेष्टा कर रहे हों। वे धीरे से बोले—"मुनुआ, पढ़ लिख कर भी तू नादान का नादान ही बना रहा—अरे वंश में दाग लग जायगी तो फिर मुँह दिखलाने लायक नहीं रह जायँगे।"

मेरे हृदय में प्रतिहिंसा की ज्वाला धधक रही थी। मैं अपने मन की स्थिरता खो चुका था, बोला—"आप भी कैसी बातें कर रहे हैं। जिस दिन मैं जूतों से पिट गया, आपने उन कमीनों की लात खायी, माँ-बहन के मुँह पर गालियाँ सुनीं, मुश्कें चढ़ायी गयीं। सोबरन साव के जूते खाये, और न जाने क्या-क्या बेइज्जती उठानी पड़ी, उसी दिन वंशमर्यादा जहन्नुम में चली गयी। अब वंशमर्यादा के गीत गाना कोरी विडम्बना है, मेरा बेहयापन है। अपनी नामर्दी पर पर्दा डालना है।"

पिता जी ने कहा—तो क्या करना चाहिये।"

"करना यही चाहिये कि"—मैंने कहा—"जमींदार को उसके किये का फल चखाना चाहिये। अगर भले आदमी साहस करके बदमाशों का बदमाशी से विरोध किया करें तो फिर संसार से अन्याय और अत्याचार का नाम मिट जाय। डर कर परिस्थिति को टाल कर दुष्टों की शरारतों को बर्दाश्त करके हम उन्हें शैतानी करने के लिये एक प्रकार से अधिकाधिक प्रोत्साहित करते हैं।"

पिता जी ने कहा—"इतना ही नहीं मुनुआ! मैं तो छिपा रहा था। परसों खुद जमींदार आया। मैं पकड़ कर मँगवाया गया, और भी लोग मँगवाये गये। हमें पीटा गया—देखो न!"

पिता जी ने अपनी पीठ खोल कर दिखलाई तो मैं काँप उठा। पीठ कोड़े की मार से छलनी बन गयी थी—नीले और काले दाग पीठ भर में भरे हुए थे। मेरी आँखों से आँसू छलक

पड़े। बुढ़ाई में ऐसी पीडा, ऐसी बेइज्जती, ऐसा अत्याचार ऐसा जुल्म ! मैं थर-थराकर वहीं बैठ गया। क्रोध, क्षोभ, मनस्ताप से मैं विकल होकर बच्चों की तरह रो उठा। पिता जी की आँखों से भी आँसू छलक पड़े। मैंने अपने दोनों हाथों से अपना मुँह ढाँप लिया। कुछ देर के बाद मन स्वस्थ हो जाने पर मैंने कहा—"क्या हमारा गाँव पतितों की बस्ती है ? जग्गन की विधवा लडकी को जमींदार ने उडा दिया फिर भी सभी चुप रहे और जब मॅगरू की बहू को नगी करके पीटा गया तब भी सभी चुप हो रहे और जब आप लोगों की यह दशा की गयी फिर भी आप लोगों ने प्रतिवाद नहीं किया। ऐसी बेशर्मी से भरी हुई जिन्दगी से तो अच्छी बात यही है कि आप लोग जहर खाकर मर जाते। जमींदार क्या शेर है जो चबा जाता। उसे यदि अपनी सम्पत्ति का बल है तो आप लोगों को भी अपनी गरीबी का, मनुष्यता का, इज्जत का बल है।"

पिता जी सिर झुका कर बैठे थे और मैं न जाने क्या-क्या कह रहा था।

संध्या हो गयी, रात भी हो गयी तो मैंने पिता जी से कहा—"आप मेरे साथ चलिये। अब सहा नहीं जाता।"

वे बोले—"घर पर न जाने क्या हो रहा होगा। अभागी बिटिया भी घर पर ही आ गयी है। और भी जी लगा हुआ है। जमींदार तो मानो खुल कर खेल रहा है।"

अपनी बहन की चर्चा सुनते ही मैं छटपटा उठा। मैंने रोष भरे स्वर मे कहा—"आप क्या कह रहे हैं ? इस आफत मे उसे घर पर छोड़ कर आप यहाँ क्यों आये ?"

पिताजी ने कातर स्वर में जवाब दिया—"भैया, क्या करूँ। जी नहीं माना। सावधान करने चला आया। शायद तुम्हें पुलिस अचानक पकड ले जाती तो—!"

मैंने कहा—"तो क्या होता। मै कौन पर्दे मे रहनेवाला हूँ जो प्रतिष्ठा चली जाती। ले जाती तो ले जाय—आपने यह काम बहुत ही नासमझी का किया है—अफसोस।"

मेरे हृदय की विकलता इतनी बढी कि मैं उसी दम घर जाने को प्रस्तुत हो गया। मै जमींदार और उसके पालतू मनुष्यों को जानता हूँ जो खुद किसान होते हुए—मजदूर श्रेणी के होते हुए, खुद किसी न किसी गॉव की प्रजा होते हुए भी आज एक जमींदार के पालतू है और जिस गॉव मे अधिकार पूर्वक जाते हैं 'मार्शल लॉ' जारी कर देते हैं। इन्हें सदा इसी तरह के उदाहरण मिलते गये है। न जाने अधिकार और अत्याचार मे इतना निकट का नाता कब से है? अधिकार के साथ ही साथ अत्याचार की भावना का पैदा हो जाना भी नितान्त सभव है।

मैं व्याकुल हो उठा। दिनेश से पिताजी की मुलाकात करवाना चाहता था, पर अब च्चण भर भी ठहरना मेरे लिये कठिन हो गया। पिता जी की नासमझी पर रह-रहकर मन झुँझला उठता था। करीब ११ का समय होगा—रात काली थी। मैंने पिता जी को अपने साथ चलने को कहा। बड़ी कठिनता से दिनेश के घर पर पहुँचा। एक मुद्दत से अपने जिस रूप को पिता जी से छिपा रहा था उसे आज सहसा प्रकट कर देना पड़ा। दिनेश बडे ही अदब से पिता जी से मिला—चरण छूये और कुशल सवाद पूछा। और भी कुछ सहयोगी नित्य की तरह इधर से आकर एकत्रित हुए। दिनेश ने राय दी कि आप सपरिवार शहर चले आवे। अधिक दिनों के लिये नहीं तो एकाध साल यहाँ रहकर लौट जायँ। खेतों की ममता बिसार दे। यदि ऐसा न कीजियेगा तो प्रतिष्ठा पूर्वक जीवन व्यतीत करने की कल्पना ही दिमाग से निकाल डालिये।

दिनेश को मेरे पिता जी ने वर्षों के बाद देखा था। उन्होंने सुन रक्खा था दिनेश रंगून या इससे भी दूर-देश चला गया है, पर आज एक हट्टे कट्ठे सुन्दर नवयुवक के रूप में दिनेश को देख कर पिता जी की आँखों से आनन्दाश्रु छलक पडे। चलते समय पिता जी ने कहा—"क्यों बेटा दिनेश, क्या अम्मा याद नहीं आती? तुम्हारे पिता तो पगले की तरह दिन भर दीवारों और छप्पर से बातें किया करते हैं—मामा है जो गृहस्थी खड़ी है नहीं तो छप्पर पर फूस भी नहीं रह जाती। सामने जो नजर बाग था—उसमे आक और रेंढ के पौदे नजर आते हैं। न दरवाजे पर गऊ रही और न एक भी घोडा। गाँव मे जो तुम्हारा हिस्सा था वह भी बिक गया—तुम यहाँ पडे हो और वह तुम्हारी सोने-सी गृहस्थी मिट्टी मे मिल रही है।"

दिनेश ने कहा—"चाचा, मैं चोर हूँ। तुम्हें मालूम है प्रभुदयाल ने मुझे चोरों की मडली मे ले जाकर बिठला दिया। इस शहर का बच्चा-बच्चा जानता है कि दिनेश चोर है। मैं हवालात में बन्द किया गया। पुलिस के जूते खाये और वह भी प्रभुदयाल के सामने। वह मेरा भाई है—अब मैं किस मुँह से गाँव की धरती पर कदम रक्खूँ। पिता जी ने कहा था कि—'मैं निर्वंश रहता तो ये दिन देखने नहीं पडते।' कहाँ की अम्मा और कहाँ के पिता जी! अब मेरे लिये ससार सूना है नहीं तो कोने कोने आबाद हैं। मै चोर बनाया गया और आज एक पक्का चोर हूँ, मै शैतान बनाया गया और आज मुझसे बडा शैतान इस प्रान्त मे दूसरा कोई नहीं है चाचा जी!'

दिनेश के शब्दों से मानों आग झडती थी। वह बोलते-बोलते भयकर-सा हो उठा। उसकी ऐसी उग्रमूर्ति मैंने कभी

नहीं देखी थी। यद्यपि दिनेश मेरा सोदर भाई जैसा ही था, पर मैं खुद डर गया। उसकी सुप्त पीड़ा को छेड़ कर जगाना बुरा हुआ। मैं समझता हूँ कि अब कई दिनों तक दिनेश का दिमाग ठीक-ठीक काम नहीं करेगा। एक दिन यदि वह काफी उत्तेजित हो जाता तो उसकी उत्तेजना मिटते-मिटने दस-बीस दिन लग जाते थे। उसकी प्रकृति कवियों जैसी कोमल और भावुकतापूर्ण थी। किसी बात को वह इतना सोचता था कि उसकी रूप रेखा ही बदल जाती थी—अपनी भावुकता और विशाल चिन्ताशीलता के कारण दिनेश गृहत्यागी बन कर इधर-उधर मारा चल रहा है

पिता जी हृदय में एक नयी उमंग लेकर दिनेश के यहाँ से लौट पड़े—वह जवानों की तरह छाती तान कर चल रहे थे। और आँखों से दृढ़ता टपकती थी। कुछ घण्टों मे ही मेरे पिता जी में ऐसा परिवर्तन आ गया कि मैं मन ही मन चकित हो गया। सुबह की मोटर से वे घर की ओर चले। मैं शहर मे ही ठहर गया—यही सभों की राय भी थी।

---

(२१)

मेरा मन गाँव की ओर लगा हुआ तो था ही, पर होटल की चिन्ता भी कुछ कम न थी। मैं डर रहा था कि डकैती वगैरह के मामले मे जमीन्दार ने मुझे फाँस लिया तो बदनामी हो जाने के कारण सारी व्यवस्था ही नष्ट हो जायगी इसीलिये प्रभुदयाल को आगे किया। रायसाहब के पुत्र होने के कारण वह उच्च समाज मे काफी समादृत था और साथ ही उसकी शिरकत का बड़ा मूल्य भी था।

ठीक रामनवमी—चैत्र में—के दिन होटल खुलने का निश्चय कर दिया गया। क्लर्क, सहकारी मैनेजर, भोजन-इन्चार्ज, रूमइन्चार्ज के लिये विज्ञापन छपवाये गये। जो मकान लिया गया वह चार तल्ले का था। चालिस कमरे थे। बिजली का नल आदि का प्रबन्ध था। दो सौ मासिक किराया। मैने बेकारी—शिक्षितों की बेकारी-का अनुभव तब किया जब मेरे पास हजारों की सख्या मे दरख्वास्तें आयीं। २०) के पद के लिये एम० ए० और एम० ए०, बी० एल वालों ने प्रार्थनापत्र भेजे। मैंने सोचा कि ५ व्यक्तियों को बुलाना चाहिये। ५ प्रार्थियों को आने का समय दिया और शेष प्रार्थना पत्र को रद्दी की टोकरी मे डाल दिया। मुझे बाहर के एक भी नौकर को अपने होटल मे स्थान देना मजूर न था, पर समझदारों की आँखों मे धूल झोंकने के लिये विज्ञापनबाजी करना आवश्यक ही था। हम अपने साथियों मे से ही क्लर्क आदि चुन लेना पसन्द करते थे, पर अप्रत्यक्ष रूप से कुछ करने से सम्भवत प्रभुदयाल के दिल मे खटका पैदा हो जाता। ठीक समय पर एक प्रार्थी आये—दुबला शरीर, पिचका चेहरा, चश्मा, स्त्रियो की तरह कोमल-कोमल हाथ पैर, पर फटी कमीज पर सिल्क का एक चादर डाले ५ फीट का एक नौजवान, जिसकी छाती दबी हुई थी और जो हताशदृष्टि से इधर-उधर देखता था, मेरे सामने आया। इस नौजवान ने बी० ए० पास किया था—पिता जी इनकी पढाई मे समाप्त हो गये। आप डिपुटीगिरी से लेकर चपरासीगिरी तक के सभी काम करने की इच्छा रखते है। चौबीस साल की उम्र है, पर तीन चार ब्याह कर चुके है। पहिला ब्याह ६ साल की उम्र मे, दूसरा आठ साल की उम्र मे, तीसरा दस साल की उम्र में—इस बीबी से ६ बच्चे हैं—बीबी थाइसिस से मरणोन्मुख है। यह बीबी

यदि अन्य दो बीबियो की तरह मर गयीं तो आप चौथा व्याह भी जरूर करेगे, क्योंकि ६ बच्चों का लालन-पालन कौन करेगा साथ ही भारत की आबादी चीन से कम रहे यह आपको कतई मञ्जूर न था।

दूसरे सज्जन आये—एम० ए०। काठ की तरह ऐठा हुआ शरार। घुसी हुई आंखे। बीड़ी पीने के शौकीन और विनोदी बनने को असफल चेष्टा करने वाले। इन एम० ए० को देखकर मुझे ऐसा जान पड़ा कि यह अपने चेहरे पर की मूर्खता की छाया को छिपाने का तथा अपने को सुसंस्कृत प्रमाणित करने का सतत चेष्टा कर रहा है। कोट, पैण्ट, टाई और सम्भवत मॅगनी के जूते। क्योंकि मैंने देख लिया कि जूते पैर के नाप के नहीं थे। हिटलर जैसी मूछें और मुँह से बीड़ी की भयानक दुर्गन्ध !

आप पहिले दारोगा हुए पर इन्सपेक्टर से झगड़ गये, रेलवे में T. T. I. हुए तो स्टेशन मास्टर का मुँह नोच लिया, वकालत पढ़ने का विचार किया तो प्रोफेसर को डांट दिया। गरज यह कि आप अन्याय के विरुद्ध में सदा रहते थे पर अपनी वेकारी से आपने कभी भी शत्रुता नहीं की। किराये के घर मे रहते हैं और दो चार बच्चों के बाप भी बन चुके हैं। कभी-कभी—होली दीवाली में यों ही थोडी-सी पी लिया करते, पर कोई खास शौक नहीं है। हाँ, सिगरेट की लत है पर मामूली "पासिङ्ग शो" या 'सीजर' नहीं—वही "हाथीमार।" गरीब हैं पर गरीबी से घुले-मिले हुए हैं !!!

तीसरे सज्जन बी० ए०, बी० एल० आये। वकील साहब को होटल की मैनेजरी करने का कारण पूछा तो आपने अकारण हँसने का प्रयत्न करते हुए कहा—'वकालत मे क्या रक्खा है। वकालत दल्लालों के बल पर चलती है। मैं दल्लालों का

मुँह देखना पातक समझता हूँ—और किसी प्रतिष्ठापूर्ण काम करने में शर्म नहीं होनी चाहिये। मैं तो मजदूरी करना भी पाप नहीं समझता।

आप पास के देहात में रहते हैं—कभी जमीन्दार से मिल कर असामियों का सत्यानाश किया तो कभी असामियों से मिल कर जमींन्दार को झूठे-सच्चे मुकदमों से विकल कर डाला। यही आपका पेशा रहा—एक मुद्दत तक यह रोजगार बड़े आराम से चलता रहा, पर नये जमीन्दार ने गाँव में इनकी उपस्थिति को ही दुर्भाग्य का कारण समझा। उसने एक ऐसा मुकद्मा वकील साहब के सिर पर ढकेल दिया कि जालसाजी के कारण आपकी सनद जब्त हो गयी—अपनी दृष्टि से यद्यपि आप निरपराध हैं, पर क्या करें। ससार मे न्याय करनेवाला कोई नहीं है। तब से आप शहर में ही रहते हैं। स्त्री को मरे दस साल हो गये। दूसरी शादी भी नहीं की पर ४।५ छोटे छोटे बच्चे घर की रौनक बढा रहे है। सबसे बडा बच्चा नौ साल का है और छोटा सात मास का—आश्चर्य! चौथे और पाँचवें सज्जन भी कुछ इसी तरह के जीव थे। शिक्षित समुदाय की दशा देखकर मेरा हृदय विकल हो उठा। मैं ही कौन खुशहाल हूँ—पाप के पैसे से पेट भर रहा हूँ और होटल के नाम पर पाप का ही नाटक खेलने वाला हूँ। कितनों की जान, इज्जत होटल के पहले मे फँस कर नष्ट होगी, कौन जानता है। कितनों की पाकेट मारी जायगी, तिजोरियाँ तोड़ी जायँगी, आज बतलाना कठिन है पर होंगे यही सब कृत्य!

धीरे-धीरे होटल की सजावट की गयी और एक दिन ऐसा भी आया जब वह खुल गया। नाम रक्खा—"दि किंग होटल। उद्घाटन समारोह बड़े ही धूमधाम से किया गया—शहर

के धनी-मानी सज्जन बड़ी तादाद में पधारे और होटल की सजावट देख कर प्रसन्न हुए। मैंने प्रधान मैनेजर का आसन ग्रहण किया। दिनेश के दल का केशवप्रसाद बी० ए०, जो एक अभागा और चिरदरिद्र ग्रेजुएट था, मेरा सहयोगी बना—और कुछ अनुभवी 'व्याय' भी रक्खे गये तथा भोजन-विशारदों की टोली भी मँगाई गयी। शराब के लिये खास तौर से आज्ञा मँगवाई गयी। पुलकित वदन प्रभुदयाल ने सभी व्यवस्था अपने हाथ से की। गरज यह कि सभों की दृष्टि से होटल शुभमुहूर्त मे खुला पर आगे चलकर आपको विश्वास हो जायगा कि शायद 'लङ्का' की नींव जिस मुहूर्त मे डाली गयी थी उसी मुहूर्त मे मेरे इस पाप के अड्डे का द्वारोद्घाटन हुआ। दो चार दिनों मे भीड़ जुटने लगी और कन्धे पर तौलिया डाले "व्याय" इधर उधर दौड़ने लगे। टेलीफोन की घटियाँ भी हर घड़ी घनघनाने लगीं तथा साइकिल पर रईसों के घर-घर बोतलें पहुँचाई जाने लगीं। मैं दिनेश से नित्य मुलाकात करता था और वह होटल की उन्नति का समाचार सुनकर बगलें बजाने लगता था। मैंने एक दिन पूछा—"यह कैसा तमाशा हुआ भैया।"

दिनेश ने कहा—"कुछ दिन और चलने दो।"

मैंने कहा—"तो क्या इसका अन्त भी कर देना पड़ेगा।"

"अवश्य"—दिनेश ने कहा—"जिसका प्रारम्भ ही बुरे विचार से किया गया है उसमें स्थायित्व कहाँ से आया। बुरे विचार से यदि अच्छा काम भी किया जाय तो उसका परिणाम बुरा ही होता है।"

बात सिद्धान्त की थी—मै मन ही मन सिहर उठा। सच पूछिये तो होटल के प्रति मेरे हृदय मे मोह उत्पन्न हो गया था, पर दिनेश की यह प्रकृति थी कि वह सिद्धान्तों के लिये अपने

लक्ष्य की उपेक्षा करना पसन्द नहीं करता था। वह उन्हीं सिद्धान्तों को मानता था जो उसके उद्देश्य की सिद्धि मे सहायक हों-उसके पूरक हों। यों तो मैं भी अवसरवादी हूँ-सिद्धान्तवादी नहीं पर मानवीय दुर्बलता ने मेरे हृदय मे भी स्थान प्राप्त किया है यह एक जन्मजात गुण है। जब प्रभुदयाल चला जाता तो दिनेश के पास मैं इसकी सूचना भेज देता—वह तत्काल होटल मे चला आता। कुछ देर बैठता—शराब की बोतलें खाली होतीं और पिछली रातको चला जाता। धीरे धीरे होटल मे एक जुआखाना भी खुलगया। साधारण कोटि के जीव नहीं-बड़े बड़े धनी जुआ खेला करते। जैसे सेठ धरनीमल्ल! सेठ जी शहर के नामी धनी और साथ ही बदनाम कजूसो मे थे। सूदखोर तो शायद शेक्सपीयर के 'साइलौक' के चाचा की कोटि के। दिन भर नाक पर चश्मा चढ़ा कर मोटी-मोटी बहियों के पेज उलटते रहते—शहर की बडी बडी कोठियों मे से अधिकांश सेठजी के यहाँ गिरवीं समझिये। कोन ऐसा रईस न होगा जो धरनीमल्ल का कर्जदार न हो। ग्राह के मुख से निकल भागना सम्भव है पर धरनी महाराज जिसे अपने चगुल मे फँसाते उसकी चमडी तक उतार लेते। लेन देन का कारोबार था। सुना है कि उसके पिता मारवाड से भीख माँगते पधारे थे पर पधारे थे शुभ क्षण में। वे तो जन्मभर दिवाले पर दिवाला मारते रहे और इस अव्यर्थ उपाय से अपने पुत्र हमारे धरनीमल्ल जी के लिये बैंक मे १० । १२ लाख नकद छोड गये—फिर क्या था. इन्होंने भी सूदखोरी की ही ओर ध्यान दिया।

सेठ जी किसी सभा में सभापति बनना भी पसन्द करते थे और इसलिये सभा के चन्दे में कुछ दान भी दिया करते थे। मैंने होटल के उद्घाटन समारोह मे आपको ही प्रधानपद पर बैठाया था। और वह भी बिना कुछ लिये दिये। यही

कारण है कि सेठ जी कभी-कभी होटल में भी पधारते। अपने मित्र एक लँगड़े वकील साहब के साथ, जिनकी वकालत से अधिक किरासन तेल की ठेकेदारी चलती थी और ठेकेदारी से अधिक चलती थी बेइमानी! वकील साहब तबीयतदार आदमी थे और सदा सेठ जी को लूट लेने की ही ताक में रहते थे।

'लूट' शब्द सुनकर आप यह न समझिये कि लाठी, छुरी, तलवार के सहारे लूट लेना। सभ्य समाज में लूट के कई तरीके हैं, जैसे किसी मुकदमे मे फँसा कर लूटना, किसी जाली कम्पनी के शेयर खरिदवाकर लूट लेना, शराब जुआ आदि की लत लगा कर लूट लेना, गृहकलह पैदा करा देना या नाच मुजरे का रसिक बनाकर अपना उल्लू सीधा कर लेना। सेठजी थे पूरे व्यापारी मारवाडी भाई। जैनी होने के कारण शराब आदि के निकट भी नहीं फटकते थे और मांस का नाम सुनते ही पैतडे बदलने लगते थे। यद्यपि आप पशुओं की कच्ची खालों का खरीदना बेंचना इतना बुरा नहीं समझते थे। जब आपकी दुकान पर दो-चार सज्जन बैठे होते तो आप अपने नौकर से चिल्लाकर कहते—अबे, चौरस्ते पर घास डाल आ। गउओं के आने का समय हो गया—जल्दी कर साला! खडा क्या है।" उपस्थित मडली यद्यपि यह जानती कि सेठ जी धर्म के रग मे कितने सराबोर है, पर वह चुप रह जाती या कभी-कभी कुछ प्रशसात्मक शब्द कह उठती—जैसे—"धन्य है—इतना धर्म प्रेम।" सेठ जी तत्काल खीस काढ कर कहते—"भैया, जब नर शरीर धारण किया है तो कुछ आगे के लिये भी जमा कर रखना चाहिये।"

सदा टका जोड़नेवाले सेठ जी स्वर्ग के खजाने मे भी कुछ रोकड़ जमा करने की बात के अतिरिक्त और कल्पना ही क्या

करते थे। उनके लिये इससे अधिक सुखकर कल्पना दूसरी हो भी तो नहीं सकती। कहने का तात्पर्य यह कि अगर धरनी-मल्ल के सामने भगवान विष्णु प्रकट हो जाते तो आप 'वर' माँगने या दर्शन करने के पहिले यही अनुमान लगाते कि "कौस्तुभ मणि" कई हजार की होगी और पीताम्बर कई आने गज का होगा।"

वकील साहब के साथ सेठ जी आने जाने लगे और 'तास' खेलकर मन बहलाने लगे।

एक दिन वकील साहब एक वेश्या के साथ पधारे और आये सेठ जी। सारी रात वकील साहब शराब पीकर ऊधम मचाते रहे और सेठ जी भी अपनी भाषा मे गीत गाते रहे। बन्द किवाड़ से मैं इतना ही देख सका। 'वेटर' ने बतलाया कि आज १६) रुपये का बिल हुआ। मैं चकित हो गया। मुफ्त का ठण्ढा पीने-वीने वाले सेठ जी २ बजे रात को १६) रुपये मेरी मेज पर रख कर थके हुए से घर की ओर रवाना हुए। मैं भाँप रहा था कि रोशनी की ओर पीठ करके सेठ जी मेरी मेज के सामने खड़े हैं ताकि मैं उनका मुँह न देख सकूँ।

दिनेश से मैंने जब यह हाल कहा तो उसने पुलकित होकर कहा—"देखे जाओ इन पतितों की लीला। सभी चोट्टे हैं। हम इनसे अच्छे हैं।"

दिनेश और दूसरे साथी भी एक कमरे मे जमा होने लगे तथा इधर-उधर के फरारों का भी जमाव होने लगा। रात की—पिछली रात की—चोरी पाकेटमारी के माल का बटवारा भी होना आरम्भ हुआ। यह सब काम इतनी सफाई से होता था कि किसका मजाल जो जरा-सा भी पता लगा ले—हाँ भविष्य सब कुछ देखता था और जानता भी था, पर हम अपनी धुन मे मस्त थे। बाहर से आकर ठहरने वालों के

लिये विशेष प्रबन्ध किया गया था। हम होटल में ही भाँप लेते थे कि कौन मालदार असामी है और कौन मामूली। पाकेट-कटों को इसका पता बतला दिया जाता था और शहर में घूमते हुए उनकी जेबें तराश ली जाती थीं। जब कोई मुसाफिर रोता पीटता लौटता तो हम मगन हो जाते कि काम हो गया।

इस तरह की कमाई की यद्यपि हद नहीं थी, पर स्वयम दुर्व्यसन मे लिप्त रहने के कारण हमारे पास पैसा टिकता नहीं था। कुछ तो अपने बेकार साथियों के लिये हमे खर्च करना पडता था और कुछ जुए मे या शराब मे गवाँ बैठते थे। यद्यपि दिनेश इन व्यसनों मे नहीं फँसा था और मैं भी कुछ-कुछ सँभला ही हुआ था, पर इससे क्या हुआ। जब पूरी की पूरी मडली ही दुराचार मे गर्क है तो फिर अपनी दशा कब सुधरी रह सकती है। गरीबी समस्त अवगुणों की जड है और हमारी मडली ऐसे गरीबो की थी, जिन्हे समाज ने अपने सरक्षण से बाहर कर दिया था।

---

(२२)

होटल की व्यवस्था ठीक करके मैं गाँव की ओर गया। साथ मे कुछ रुपये भी लेता गया।

मैंने देखा कि गाँव का रूप ही बदल गया है। सारा गाँव उजाड-सा दिखलाई पडता। मन्दिर की रौनक चली गयी है—पुजारी जी गठिया-बात के चलते स्थावर बन गये हैं। सभी किसान रो रहे हैं। केवल मोयरन साव की हालत ज्यों की त्यों है। मैंने साव जी को दूर से देखा। स्तूपीकृत पातक की तरह

अपनी पुरानी गंदी दरी बिछाये वह अभागा पीपल के वृक्ष के नीचे मूर्तिमान पिशाच की तरह बैठा है। सन्तू बाबा ने अपनी राममड़ैया के स्थान पर एक मंजिला मढ़िया-सा घर बनवा लिया है।

मैंने पिता जी से पूछा—"उस डकैती के मामले का क्या हुआ ?"

इधर-उधर देखकर पिता जी बोले—"सन्तू चाचा की करनी थी। बडी सफाई से बुड्ढा खुद तो बच गया पर ३।४ किसान जो निरपराध थे, आज जेल की हवा खा रहे हैं। जमींदार सारे गॉव पर बिगड़ उठा है। चौथे दिन उसके दो आदमियों को अँधेरी रात मे गॉव वालों ने मिलकर इतना पीटा कि बेचारे अस्पताल मे पड़े हैं। पुलिस आई और भजन, मँगरू, दयाल के लड़के को और रामप्रताप को पकड़ कर ले गयी।"

मैंने कहा—"तब तो यहाॅ का वायुमण्डल भी सनसनी से भरा हुआ है।"

पिता जी ने गम्भीरता पूर्वक सिर हिला दिया।

बात यह थी कि नहर की खोदाई जारी थी। गॉव के गरीब किसान मजदूरों के साथ काम में लगे थे। जो काम करने के योग्य थे वे सभी नहर के निर्माण मे लगा दिये गये। याने सौभाग्य-सरिता से नहर खोद कर अपनी ऊसर भाग्य-भूमि को उर्वरा बनाने मे सभी तन्मय थे। स्त्रियाॅ भी काफी तादाद मे काम करती थीं—बच्चे भी छोटी-छोटी डलिया उठाते नजर आते थे। इस प्रकार गॉव के अधिकांश किसान मजदूरी करने लग गये थे। दो-तीन साल के अवर्षण ने भयंकर सस्ती के दिनो की कठोरता को घटा ही दिया था। कुछ प्रकृति ने सत्यानाश किया और वर्ष मे ३। बार जमींदार

ने अपने खीमे गाड-गाड़कर बची-खुची रौनक को भी समाप्त कर दिया। गॉव मे जहाँ आनन्दपूर्ण वातावरण था वहाँ आतङ्कपूर्ण वातावरण पैदा हो गया। शान्त प्रसन्न किसान उद्विग्न और झल्लाये हुए नजर आने लगे। कुछ तो जमींदार की ओर से और कुछ अपनी ओर से गॉव मे ऐसी फूट फैली कि एक दूसरे को टेढ़ी नजरो से देखने लगा। स्नेह, सद्भाव, भ्रातृत्व का अन्त हो गया। सरलता, उदारता, कोमलता का भी अन्त हो गया। इन गुणो के स्थान पर विरोध, कटुता आदि की मानों हवा सी बह गयी। जमीन्दार के गॉव को एक प्रकार से अपने दोनो प्रबल पराक्रम बाहों से पकडकर बुरी तरह झकझोर दिया कि वहाँ के सभी सुव्यवस्थाये क्षण भर मे ही तहस-नहस हो गयी—यह हाल है मेरे गॉव का।

नहर—इस नहर को कोढ़ में खाज कहा जाय तो उपयुक्त होगा। मामूली मजदूरी पाकर बेकार किसान मिट्टी गोड़ने के लिये दौड पड़े। स्त्रियां और बच्चो को भी बाद नहीं दिया गया। ९।१० तक के बच्चे (जिनमे लड़कियाँ भी होतीं) अपने मॉ-बाप के साथ मजदूरी किया करते। गॉव के उपकार के लिये जमींदार ने न तो व्यायामशाला बनवायी और न पाठशाला, न पुस्तकालय खुलवाया और न कोई ऐसे कार्य का आगखेरा किया जिससे किसाना की मानसिक जडता मिटे और वे अपने को ससार के प्रधान अग के रूप मे देखकर गौरव अनुभव करे। उपज बढाने के लिए और जगलों को आबाद करने के लिए व्यवस्था काम मे लायी जा रही है वह तो महज आय बढाने के लिए ही—आय भी बढ़ेगी तो किसानो की न हो जमींदार की।

मुझे बतलाया गया कि पिछले सप्ताह भजन अहीर की

मेहरिया, जो नहर में काम करती थी—मारी गयी। मैं सोचता हूँ कि यह मार-पीट कोई उतनी गम्भीर बात नहीं है। देहातों में तो यह एक साधारण घटना मात्र है। फिर भजन की मेह-रिया को यदि जमींदार के बहादुरों ने पीट दिया या अपमानित कर दिया तो गाँव के दूसरे लोग या खुद भजन ही क्यों इस तुच्छातितुच्छ मामले को तूल देने चले। बात यह थी कि भजन की स्त्री अन्तःसत्वा थी—सातवें महीना समाप्त करके वह आठवें में कदम रखनेवाली थी। भजन ने पहिले ही मेरे चाचा साहब से, जो आज नहर खोदाई के जमादार बने हुये थे, प्रार्थना की कि उसकी मेहरिया को काम पर न बुलया जाय। गाँव के रहने वाले भजन ने इसीलिये चाचा पर अपना नैतिक अधि-कार समझा पर उसे यह मालूम ही न था—जमींदार की दया से परमपद प्राप्त कर लेने के बाद वे गाँव या रिश्ते को भूल गये थे। मेरे चाचा साहब का कथन था कि "मैं वंशहीन हूँ। मेरे लिये नाता-रिश्ता का पचड़ा व्यर्थ है—मेरा सबसे बड़ा अपना है पैसा।" इसी सिद्धान्त के अनुसार चाचा जी ने भजन को डपट कर भगा दिया। लाचार भजन की मेहरिया काम पर आ गयी। शारीरिक अवस्था अलग रखने के कारण बेचारी न तो भारी डलिया उठा सकती थी और न दूसरी मजदूरिनो की तरह फुर्ती दिखला सकती थी। गरीबी ने उसके शरीर को भी चूस कर अस्थिवत् बना डाला था। पीला शरीर—धँसी हुई आँखें—पतले-पतले हाथ पैर और पाँच बच्चों की अम्मा—यह हाल था भजन की मेहरिया का। उस पर उसे दिन दिन भर नहर में काम करना पड़ा। कड़ी मेहनत बर्दाश्त नहीं कर सकी—डाँट पड़ने-पड़ने को हो गयी। इसी समय उस पर मार पड़ी—एक लात पीठ में ऐसी लगी कि औंधे मुँह गिर पड़ी। शरीर खून से भर गया—एक दाँत भी टूट गया

—मजदूर बिगड़ उठे और डलिया फेंक-फेंककर अपने-अपने घर चलते बने। बिगड़ कर दो-चार प्यादो ने मारा पीटा पर उनका गरम रुख देखकर केवल गालियाँ बक कर ही संतोष कर लिया। समझदार प्राय. ऐसा ही किया करते हैं। यह शुद्ध भारतीय तरीका है। इससे खतरा नहीं होता।

इसके बाद—? इसके बाद रात को कुछ प्यादों ने गाँव के मजदूरों को घेर लिया। इसके बाद गोधनलीला शुरू हुई। दो चारहाथ दोनो ओर से चले पर मजदूर चिढ़े हुये थे—बेचारे प्यादे पिट गये और पिट गये तो बुरी तरह। अस्पताल की खाट आबाद करने को लाचार होना पड़ा।

मैं दो-तीन दिन गाँव मे ठहर गया और देखा कि जमींदार के मैनेजर आये और हम सभो को बुला भेजा। मैं भी गया। मैनेजर साहब कुर्सी पर बैठे और हमे खाली जमीन पर-धूल मे-बैठने का आदेश दिया गया। कम्पितगात् हाथ बाँधे अर्धचन्द्राकार बैठ गये और उद्ग्रीव होकर आदेश सुनने को प्रस्तुत हो गये। सिगरेट सुलगा कर मैनेजर साहब बोले—"मैंने तुम लोगों को इसलिए बुलाया है कि गाँव का तारीका बिगड़ता जा रहा है—मालिक तुम लोगों पर सख्त नाराज हैं। उनकी आज्ञा है कि अगर तुम लोगों ने अपना रुख नहीं बदला ।। तुम्हारे खेतों मे गधे का हर चलवा दिया जायगा—यह याद रखना।"

बस देहूदी धमकी सुनकर मेरा जी जल गया। मैंने निवेदन किया—"यह आपकी कृपा है जो हम लोगो को परिस्थित का ज्ञान करा दिया पर—!"

मैनेजर ने कहा—तुम कौन हो जी! वकील हो क्या?"

मैं—"जी, एक किसान हूँ। वकील बैरिस्टर रहता तो यहाँ क्या करने आता।"

मैनेजर—"तुम चुप रहो—मैं तुम्हारे जैसे आदमियों से कुछ नहीं पूछता।"

इधर किसानों मे कानाफूसी शुरू हुई। एक दबी हुई अस्पष्ट ध्वनि गूँज उठी।

मैंने फिर कहा—"हुजूर! मैं निवेदन करना चाहता हूँ कि किसान तो आपकी प्रजा हैं। उन्हें—।"

मैनेजर ने रोब गाँठने की गरज से डपट कर कहा—"मैं जानता हूँ कि किसान इस्टेट की प्रजा हैं पर गोली मार देने के काबिल हैं।"

मैनेजर के इस वाक्य ने सभा मे बिजली की सी तडप पैदा कर दी। एक साथ ही सब उठ खड़े हुए। तरह तरह की आवाजो से मैदान गूँज उठा, जैसे—"कौन गोली मारेगा? जब गोली मारने के लिये बुलाइयेगा तभी हम आवेंगे। हमे सब तरह से लूट लिया अब गोली मारने आये हैं। हम देख लेंगे गोली मारने वाले को।'

मैनेजर का चेहरा फक हो गया—उसने एक बार फिर रोब गाँठने का प्रयत्न किया। उसने चिल्ला कर कहा—"तुम्हें मालूम होना चाहिये कि तुम्हारी यह शोखी ऐसी है जो तुम्हारा सत्यानाश किये बिना नहीं रहेगी।"

किसानों की ओर से उत्तर मिला—"हम गरीब हैं। हमारा क्या बिगडेगा। खेतों पर तो आपकी डिग्री हो ही रही है—हम कलकत्ता जाकर मजदूरी करेंगे। बस, पर अपनी बात सोचिये।"

मैंने सभों को समझा बुझा कर शान्त किया।

मैनेजर ने फिर नर्मी से कहा—'तुम्हें शान्त हृदय से मेरी बातों पर ध्यान देना चाहिये। मैं हित की कहने आया हूँ।"

किसानों ने उत्तर दिया—"शान्त कैसे हों सरकार! आपने

तो हमारे सोने से गाँव को नरक बना डाला। न बहू बेटी की इज्जत खतरे से खाली है और न गाँठ का पैसा। हम तो समाप्त हो रहे हैं। जिसका खपरैल था वह फूस की झोपड़ी में पड़ा लवन कर रहा है।"

वालों का रूप बिगड़ते देख कर मैंने कहा—"मैनेजर साहब, आज अभी इन्हें जाने दीजिये। इनका हृदय दु:खित है। खिन्न हृदय वाला मनुष्य नीति की बात नहीं सुनता।"

मैनेजर चुपचाप कुर्सी छोड़कर जमीन्दारी कचहरी के भीतर चला गया और शोर मचाते हुए किसानों का झुण्ड मन्दिर की ओर चला। सभी चिल्ला-चिल्लाकर अपना अपना वक्तव्य दे रहे थे। मैं झुण्ड का साथ छोड़कर नदी की ओर चल पड़ा।

चैत का महीना था। पतझड़ के दिन थे। हवा में आलस भरा हुआ था। दूर-दूर से कोयल की कूक सुन पड़ती। निर्जन नदी तट पर दो-चार ग्रामीण स्त्रियाँ जल लेने या बरतन माँजते नजर आती थीं। चैती हवा के मादक झकोरों से मन अलसा रहा था। अपने लड़कपन की बातें एक एक करके याद आने लगीं। यहीं बैठ कर दिनेश के साथ ताड़ी पीता था, यहीं पर पहिले भज्जू अहीर का घर था और सामने—उस तरफ जो खलिहान है वहीं दोपहर भर जुआ खेला करता था। होली में कितना उत्सव होता था।

दिन डूब गया। मैं भी थका हुआ सा घर लौटा। पिता जी पञ्चायत से लौट कर आये। पूछने पर कहने लगे—"सभी नहर की खुदाई का विरोध कर रहे हैं। विचार है कि जमींदार के अत्याचारों की शिकायत लिखकर सरकार में भेजा जाय। मैं समझता हूँ कि बड़े से बैर करना अपना दुर्भाग्य बुलाना है।" संक्षेप में इतना कह कर पिता जी चुप हो गये।

किसानों की मनोवृत्ति का अध्ययन मैंने खूब किया है। मैं आज भी जानता हूँ कि वे कितने गहरे पानी मे तैर सकते हैं या गोता लगा सकते हैं। जमीन्दार के जुल्मों से बचने के उपाय चाहे जो भी हों पर इन नपुंसक उपायों से जुल्मों का जनाजा नहीं निकल सकता। आशावादी लोग ईश्वर पर विश्वास रखते हैं पर ईश्वर का निवास है सबल हृदयों मे। निर्बल हृदय का मनुष्य ईश्वर की कृपा का कतई अधिकारी नहीं हो सकता। परिस्थिति ने किसानो को न केवल दरिद्र ही बना दिया है बल्कि उनके हृदय को भी मोम की नाक बना कर छोड़ा है—जो चाहें उसे जिधर मोड ले। जरा-सी गर्मी लगी न कि मोम की नाक पिघल गयी—तनिक सी सर्दी लगते ही जम कर फिर सख्त हो गयी। मैं इस प्रश्न पर यहाँ कुछ लिखना नहीं चाहता। मै तो यह सोच सोच कर ही चकित था कि दुःखो ने किसानो के भावों मे कितना परिवर्तन पैदा कर दिया है। क्या पीडा मे भी शक्ति का निवास है। कुछ भी हो मुझे इससे मतलब ?

---

(२३)

सुना है कि पूर्वकाल के राजा महाराजा सगीत की ध्वनि से ही सोते और जागते थे पर मैं तो आज जागा एक भारी गले की कर्कश आवाज से। कोई पुकार रहा था—"सदेश है।"

मैं हकबकाया सा बाहर निकला और आँखें मलता हुआ देखता हूँ कि ४। ५ पुलिस के जवान और जमीन्दार के आठ-दस प्यादे मेरे द्वार पर खडे क्या हैं, एक प्रकार से मेरे घर को घेरे हुए हैं। मैं सन्नाटे में आया—यह अनभ्र वज्र-

पात ! मुझे देखते ही शिकारियों का दल लपक पड़ा—"यही है साला", "पकडो", "पकड़ो, "निकलने न पावे" आदि-आदि के नारे बुलन्द किये गये। जब तक मैं सँभलने का प्रयत्न करने लगा तब तक किसी ओर से मेरे मुँह पर चादर डाल दी गयी, किसी ओर से आकर रस्सी मेरे कमर मे लिपट गयी, हाथों में आनन-फानन हथकड़ियों के शीतल स्पर्श का अनुभव किया। फिर एक जोरदार झटका लगा और मैं कूदकर गली मे खड़ा हो गया। देखते-देखते नाटक का यह प्रथम दृश्य समाप्त हो गया। मेरे लिये यह एक नया अनुभव अचरज भरा—अनुभव था !

मैंने मुंह पर से चादर हटने पर देखा कि गाँव भर के किसान दौड़े आ रहे हैं। देखते देखते हमारे चारों तरफ एक उत्तेजित भीड़ इकट्ठी हो गयी। पुलिस के सिपाही और जमीं दार के प्यादे एक जगह सिमट गये। भीड पतली गली मे इस कसरत से जमा हो गयी कि मैं स्वयम् उससे दब गया।

गोकुल पासी ने चिल्लाकर कहा—'छीन लो भाइयो, मुनुआ को ये ले न जाने पायें।"

दूसरी ओर से आवाज आयी—"मुनुआ निरपराध है।"

तीसरी ओर से किसी ने ललकार कर कहा—"छीन लो " को—जमीन्दार इसे इस बार मार डालेगा।"

अब सिपाहियों का कंठ फूटा—"याद रक्खो, सरकार से तुम नहीं जीत सकते।"

भीड़ ने कहा—"सरकार तो जमींदार के इशारे पर मुनुआ को गिरफ्तार कर रही है—दोषी जमींदार है।"

एक सिपाही ने कहा—"मैं सरकार का हुक्म पाकर आया हूँ।"

गोकुल पासी ने कहा—"मुनुआ ने क्या कुसूर किया है ?"

सिपाहियों मे से एक ने उत्तर दिया—"हम नहीं जानते—इसके नाम से वारन्ट है। मैं कहता हूँ—हटो, रास्ता दो।"

जमींदार के प्यादों ने धक्के मार-मारकर भीड़ को हटाना शुरू किया। मैं चुपचाप सारा तमाशा देख रहा था। धक्के खाकर भीड़ भागी नहीं, वल्कि कुछ अधिक उत्तेजित हो गयी तो मैं वोला—"भैया, मुझे जाने दो। क्या तिल का ताड बनाना चाहते हो।"

किसी ने कहा—मुनुआ ठीक कहता है।

एक ने कहा—"जाने दो। सरकार से खुद न्याय होगा।"

एक ओर से तीखी आवाज आयी—"छीन लो मुनुआ को जमींदार ने इसे पकड़वा दिया है।"

विलम्व देखकर सिपाहियों ने अपना अभ्यस्त रूप दिखलाया—सभी एक साथ चिल्लाकर वोले, "हम जाते हैं। हिम्मत हो तो रोको। याद रक्खो घन्टे भर मे पलटन चढ आयेगी—चलो जी।'

भीड़ को धक्के मारते हुए सिपाहियों ने आगे वढना तै किया। पलटन के जादू ने किसानों के उठते हुए जोश पर मानो वम पटक दिया। फिर भी लोग तने थे। इसी समय मैंने देखा कि भीड़ के पिछले हिस्से मे भगदड़ मच गयी—गिरते पडते कुछ भागे। कुछ ईदन वावा के घर मे घुस गये और कुछ जिधर सींग समाया भाग खडे हुए। भीड़ में आतंक फैल गया।

वात यह थी कि भीड़ एकत्रित हो जाने की खबर वहाँ पहुँची जहाँ मैनेजर के साथ दारोगा जी वैठे मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। दारोगा जी दो-तीन पुलिसमैनों के साथ दौड पड़े और भीड़ के पास पहुँच कर धडाधड गिरफ्तारियाँ शुरू कर दी और वेतों की वर्षा करने लग गये। ४।५ किसान पकड़

लिये गये—दस-बीस पर बेंतो की मार पड़ी—बस भगदड़ मच गयी। २।३ सौ आदमियों की गरम भीड़ देखते देखते हवा हो गयी। सपना की तरह मिट गयी। मैंने अपने आपको १५।१६ ऐसे सिपाहियों से घिरा पाया जो विजयी वीर की तरह लाठियाँ उठाये मुझे घसीटते हुए गली के बाहर होने के लिये जल्दी कर रहे थे। दरोगा जी भी आये। क्रोध के मारे दरोगा साहब थर थर-थर-थर काँप रहे थे। आपने अनेक परिश्रम से जिन गालियों को रट-रट कर याद किया था, उनकी फुलझरी छोड़ रहे थे और बीच-बीच में order भी देते जाते थे, जैसे—"गाँव को घेर लो, सभी को पकड़ लो, गोली चलवा दो।"

मैं मन ही मन मुस्करा रहा था। सारा गाँव एक प्रकार से घबरा उठा था—कहीं किसी की सूरत भी नजर नहीं आती थी, मानों यह भूतों का गाँव है। हाड-मांस का एक भी पुतला यहाँ नहीं रहता। एकाध बच्चा यदि किवाड़ खोलकर बाहर निकलता भी नजर आया तो दूसरे क्षण किसी स्त्री को उस बच्चे को पकड़कर घर के भीतर जल्दी-जल्दी घुसते देखा—ऐसा आतंकमय वातावरण मैंने कभी नहीं देखा था। आगे—कुछ दूर आगे बढ़ने पर जगन ने दारोगा जी को सलाम करके कुछ कहना चाहा। आज्ञा हुई—"यह भी साला डकैत है पकड़ लो।" मेरे पिता जी ने भी दारोगा साहब से कुछ निवेदन करना चाहा पर आप की पीठ पर 'सड़ाक'—से एक बेंत पड़ा। पीठ सहलाते हुए बेचारे उछल कर दूर खड़े हो गये। एक गरजती हुई आज्ञा मिली—"यह भी बागी है। पकड़ो—जाने न पाये।" गरज यह कि जमींदारी करते करते जाते जाते कोई डेढ़ दर्जन व्यक्ति पुलिस के घेरे में आ गये।

दारोगा जी ने आज्ञा दे दी कि "जिसे जमीन्दारी कचहरी के आसपास देखो—पकड़ लो।"

हम सभी बैठाये गये और फिर गालियों की वर्षा शुरू हो गयी। मैनेजर ने भी याद करके दो-चार गालियाँ प्रदान की पर दारोगा जी तथा दूसरे रक्षक प्रहरी तो इस तरह गालियाँ दे रहे थे मानो वर्षों से उन्हें ऐसा अवसर ही नहीं मिला हो, गालियाँ देने के लिए मानो वे तरस रहे हों और आज अचानक अवसर मिलते ही मन की भूख मिटाने के लिये कसम खाकर बैठ गये हों। मुझे बतलाया गया कि जमींदार के प्रति किसानों के हृदय में घृणा के भाव भरने, उन्हें हिंसात्मक कार्यों के लिये उत्तेजित करने तथा शान्ति भंग करने के अपराध में पकड़ा गया है। और ये बेचारे १६।१७ किसान दंगा करने के लिए भीड़ को उत्तेजित करने और सरकारी आज्ञा के प्रतिकूल पुलिस के हाथों से अपराधी को बलपूर्वक छीन लेने का प्रयत्न करने के अपराध में गिरफ्तार किये गये हैं।

एक घंटे में चार पांच किसान गाँव से पकड़-पकड़कर मंगवाये गये। नहर में काम न करने की राय देने वाले जितने अगुआ थे वे एक एक करके सभी चुन लिये गये। थानेदार साहब ने गाँव के कुछ लोगों के बयान भी दर्ज किये। मैं यह देख कर चकित और मर्माहत हुआ कि गाँव से ही बहुत से ऐसे गवाह मिल गये जिन्होंने हमारे मुँह पर झूठी गवाही देकर यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया कि "हम जमींदार के घोर शत्रु हैं और जमींदार के प्रतिकूल हिंसात्मक तरीकों से काम लेने की सलाह गाँव भर को देते हैं। इन गवाहों में मन्दिर के पुजारी बाबा थे—मैं उस वृद्ध ब्राह्मण के बयान को सुनकर सन्नाटे में आ गया। आप गठियावात के कारण डोली पर लाद कर लाये गये थे। उन्होंने बयान दिया—

हमारे सामने मुनुआ ने गाँव के नौजवानों की एक पचायत की और उन्हें इसने समझाया कि जमीन्दार के कैम्प मे आग लगा दो तो वह फिर लौटकर गाँव में नहीं आवेगा। इसके बाद एक दिन इसने भज्जू भगत को यह बतलाया कि किस तरह रात को जमींदार की कचहरी मे डाका डालना चाहिये। अँधेरी रात में यह सब बातें होती थी—शङ्कर भगवान जानते हैं। मैं अस्सी साल का हुआ। झूठ नहीं बोलता।"

यद्यपि पुजारी बाबा सोलहो आने झूठ बोल रहे थे, पर बीच बीच मे भगवान शङ्कर की याद करके आप अपने बयान को ठोस बनाने का प्रयत्न करते जाते थे। पुराने पापी थे—सैकड़ो बार बयान दे चुके थे। मुनि के रूप मे हमारे गाँव के द्वार पर पुजारी बाबा पूरे राक्षस हैं—यह मैं नहीं जानता था। मैं तो इस अप्रत्याशित घटना को घटित होकर देखकर इतना चकित हुआ कि जब दारोगाजी ने मुझसे मेरा नाम पूछा तो मैं कुछ क्षण तक अपना नाम याद करता रहा। पिता जी बोले—"मुनुआ, यह वृद्ध पुजारी तो बडा नीच है।" मैं चुप रह गया पर रामप्रताप ने कहा—"अच्छा पुजारी, लौट कर आने दो। हमने खून नहीं किया है जो फाँसी हो जायगी। ...ठा-साला।"

दारोगा जी ने घुड़क कर कहा—"तुम लोग गवाह को धमकाते हो ?"

रामप्रसाद ने कहा—"सरकार, हम आपकी प्रजा हैं, फाँसी दे दीजिये पर यह साला चाडाल हमारे मुँह पर बैठकर झूठ बोल रहा है।—कब्र मे पैर लटकाकर बैठा है, पर झूठ बोलते शर्म नहीं आती।"

दारोगा जी ने हमे समझा दिया कि मैजिस्ट्रेट के कोर्ट में गवाहों पर जिरह करने का अवसर मिलेगा। यहाँ काम में

बाधा पैदा करना उचित नहीं होगा। मुझे अपने होटल की चिन्ता सता रही थी—मैं इस आफत मे फँसने को कतई तैयार न था। न जाने किस अशुभ क्षण मे मैंने शहर से प्रस्थान किया था। सन्तू बाबा से मैंने दिनेश के पास यह संवाद भेजवा दिया।

गवाहियों का नाटक समाप्त हुआ तो हमारा चालान सदर में कर दिया गया—अट्ठारह बास किसानों के साथ मैं सदर की ओर रवाना हुआ। पिता जी भी साथ-साथ गये, पर मैंने देखा कि उनके चेहरे से किसी तरह का दु.ख नहीं प्रकट होता था। वे जवान की तरह तनकर कर चल रहे थे और बड़े गर्व से हमारी विदाई का दृश्य देख रहे थे। कुछ देर थाने की हवालात मे रहकर हम जेल भेजे गये। जेल की कोठरी मेरे लिये एक नयी चीज थी।

---

(२४)

ऊँची ऊँची चहारदीवारी के भीतर जो जेल की दुनिया आबाद है वह बाहर की दुनिया से कई विशेषतायें रखती है। मैंने इस जीवन मे सबसे पहिली बार जेल का दृश्य देखा था—आतङ्कपूर्ण वायुमण्डल, हुकूमत का घृणित रूप, मनुष्यों को पशुओं की कोटि मे परिणत कर देने योग्य अवस्था!

कई दिनों तक हम जेल मे बन्द रहे—बाहर क्या हो रहा था इसका पता नहीं। हमारे दल मे—हम नौ-गिरफ्तारों मे—एक नवयुवक था प्रकाश। प्रकाश यद्यपि कालेज का शिक्षा-प्राप्त नवयुवक नहीं था, पर स्कूल मे वह जब तक पढ़ता रहा बराबर फर्स्ट रहा। अध्ययनशीलता और चंचल बुद्धि के

कारण वह बी० ए० तक की योग्यता रखता था। जब-जब मैं घर पर आता तो प्रकाश मुझसे ले लेकर किताबे पढ़ा करता और वर्तमान समस्याओं पर बहस भी किया करता। हमारी बहस सस्ती, गरीबी, बेकारी, किसानो की अवस्था आदि विषयों पर होती। प्रकाश के विचार सुनकर मुझे कभी कभी आश्चर्य होता। वह प्रत्येक विषय पर अपने जो विचार व्यक्त करता था उससे उसके हृदय का क्षोभ प्रकट होता था—वह एक प्रकार से संसार पर भी झल्ला उठा था, दुनिया ही उसके नजरों मे किरकिरी की तरह गडा करती थी। इधर कुछ दिनो से वह गम्भीर बना रहता था—हद दरजे की गरीबी के कारण या बेकारी के कारण उसके हृदय से स्फूर्ति का नामोनिशान तक मिट गया था। २२। २४ साल का एक सुन्दर ग्रामीण युवक अकालवृद्धत्व का शिकार बन गया था। आँखो के नीचे काली गहरी लकीरें पड गयी थीं, शरीर सूखता जा रहा था और दृष्टि साग्नी तथा उग्र हो गयी थी। प्रकाश कही एकान्त मे बैठ कर न जाने क्या सोचा करता था—वह मानो अपने भीतर छिपा ऐसी चाभी की खोज निरन्तर करता था जिससे वह अपने भाग्य का ताला खोल सके। सोचते-सोचते कभी एक अँगडाई लेता हुआ बोल उठा—"खैर, देखा जायगा।"

प्रकाश बिना विरोध के पकड लिया गया, बिना एक शब्द व्यय किये थाने की हवालात मे रहा, जेल की हवालात में पहुँचकर भी वह न तो खिन्न हुआ और न प्रसन्न। एक बार इधर उधर देखकर उसने कहा था—"बुरी जगह नहीं है।"

मैने पूछा—'तो क्या तुम्हे यहाँ रहना रूचता है।"

प्रकाश बोला—"धीरे-धीरे तुम्हे भी रूचने लगेगा भैया?

मैने कहा— मैं यहाँ रहना पसन्द नहीं करूँगा—तुम रहो।

प्रकाश—'संसार के सभी सुन्दर स्थानों मे यह श्रेष्ठ है।

देखते नहीं कैसी सनसनी फैली रहती है। हवा थहरा कर यहाँ घुमती, प्रकाश दबे पैरों यहाँ प्रवेश करता है। मनुष्य, मनुष्य के पीछे किस तरह नोन सत्तू बाँधकर पड़ा हुआ है—उसी का एक प्रमाण है जेल।"

मैं देखता था कि प्रकाश न्त्र एकान्त मे बैठा रहता था। हमारे दूसर साथी जो महज किसान या मजदूर मात्र थे, गाय कोलाहल किया करते थे। किसी का भाई वकील के साथ आता तो किसी का दामाद आता पर प्रकाश तूफानेवद ।जीजी से पाक था। घरमे एक विधवा बहिन थी जिसकी उम्र प्राढ़ थी - छुटपन में ही पिता मर गये थे और माता जमींदार की कचहरी स प्यादों के बर्तन माँजा करती थी, झाड़ू लगाया करती थी, पर एक दिन वह सहसा गायब हो गयी। उस समय प्रकाश ८। १० साल का था। इसे यह भी पता नहीं कि अम्मा किधर गयी, क्या हुआ—साथियों के मुँह से इसने ताने के तौर पर कई बार सुना कि "तेरी अम्मा शहर के एक मुहल्ले मे सत्तू की दुकान करती है - २। ३ लड़के भी है।" गाँव की पाठशाला मे इनकी बहिन ने इसे बैठाल दिया और फिर दिनेश के पिता जी ने प्रयत्न करके इसे स्कूल मे फ्री नाम लिखवा दिया। गाँव में दिनेश के पिता जी ही एक ऐसे सज्जन थे, जो सबके हिताहित पर पूरा ध्यान रखते थे पर दिनेश के गृहत्याग ने उनके दिमाग में हलचल पैदा कर दी, हृदय बैठ गया, शरीर में घुन लग गया। धीरे धीरे वे एक प्रकार से पागल ही हो गये। चुपचाप एक कोने में बैठे रहते।

जेल में प्रकाश उसी तरह निश्चिन्त था जैसा मैं उसे अपने गाँव में, नदी तट पर, देखा करता था। दो चार दिनों के बाद कोर्ट की बारी आयी—हम नित्य कोर्ट में भेजे जाते और फिर सध्या को जेल में लौट आते। गाँववालों की भीड़ भी खूब

कारण वह बी० ए० तक की योग्यता रखता था। जब-जब मैं घर पर आता तो प्रकाश मुझसे ले लेकर किताबें पढ़ा करता और वर्तमान समस्याओं पर बहस भी किया करता। हमारी बहस सस्ती, गरीबी, बेकारी, किसानों की अवस्था आदि विषयों पर होती। प्रकाश के विचार सुनकर मुझे कभी कभी आश्चर्य होता। वह प्रत्येक विषय पर अपने जो विचार व्यक्त करता था उससे उसके हृदय का क्षोभ प्रकट होता था—वह एक प्रकार से संसार पर भी झल्ला उठा था, दुनिया ही उसके नजरों में किरकिरी की तरह गड़ा करती थी। इधर कुछ दिनों से वह गम्भीर बना रहता था—हद दरजे की गरीबी के कारण या बेकारी के कारण उसके हृदय से स्फूर्ति का नामोनिशान तक मिट गया था। २२। २४ साल का एक सुन्दर ग्रामीण युवक अकालवृद्धत्व का शिकार बन गया था। आँखों के नीचे काली गहरी लकीरें पड़ गयी थीं, शरीर सूखता जा रहा था और दृष्टि तीखी तथा उग्र हो गयी थी। प्रकाश कहीं एकान्त में बैठ कर न जाने क्या सोचा करता था—वह मानो अपने भीतर किसी ऐसी चाभी की खोज निरन्तर करता था जिससे वह अपने भाग्य का ताला खोल सके। सोचते-सोचते कभी एक अँगड़ाई लेता हुआ बोल उठा—"खैर, देखा जायगा।"

प्रकाश बिना विरोध के पकड़ लिया गया, बिना एक शब्द व्यय किये थाने की हवालात में रहा, जेल की हवालात में पहुँचकर भी वह न तो खिन्न हुआ और न प्रसन्न। एक बार इधर उधर देखकर उसने कहा था—"बुरी जगह नहीं है।"

मैंने पूछा—"तो क्या तुम्हें यहाँ रहना रुचता है।"

प्रकाश बोला—"धीरे-धीरे तुम्हें भी रुचने लगेगा भैया?'

मैंने कहा—'मैं यहाँ रहना पसन्द नहीं करूँगा—तुम रहो।'

प्रकाश—"संसार के सभी सुन्दर स्थानों में यह श्रेष्ठ है।

देखते नहीं कैसी सनसनी फैली रहती है। हवा थहरा कर यहाँ घुसती, प्रकाश दबे पैरों यहाँ प्रवेश करता है। मनुष्य, मनुष्य के पीछे किस तरह नोन सत्तू बाँधकर पड़ा हुआ है—उसी का एक प्रमाण है जेल।"

मैं देखता था कि प्रकाश प्रायः एकान्त मे बैठा रहता था। हमारे दूसरे साथी जो सहज किसान या मजदूर मात्र थे, प्रायः कोलाहल किया करते थे। किसी का भाई वकील के साथ आता तो किसी का दामाद आता पर प्रकाश तूफानेबहादुरजी से पाक था। घरमे एक विधवा बहिन थी जिसकी उम्र अधिक थी - छुटपन मे ही पिता मर गये थे और माता जमींदार की कचहरी मे प्यादों के बर्तन माँजा करती थी, झाड़ू लगाया करती थी, पर एक दिन वह सहसा गायब हो गयी। उस समय प्रकाश ८।१० साल का था। इसे यह भी पता नहीं कि अम्मा किधर गयी, क्या हुआ—साथियों के मुँह से इसने ताने के तौर पर कई बार सुना कि "तेरी अम्मा शहर के एक मुहल्ले मे सत्तू की दुकान करती है - २। ३ लडके भी है।" गाँव की पाठशाला मे इनकी बहिन ने इसे बैठाल दिया और फिर दिनेश के पिता जी ने प्रयत्न करके इसे स्कूल मे फ्री नाम लिखवा दिया। गाँव मे दिनेश के पिता जी ही एक ऐसे सज्जन थे, जो सबके हिताहित पर पूरा ध्यान रखते थे पर दिनेश के गृहत्याग ने उनके दिमाग मे हलचल पैदा कर दी, हृदय बैठ गया, शरीर मे घुन लग गया। धीरे धीरे वे एक प्रकार से पागल ही हो गये। चुपचाप एक कोने मे बैठे रहते।

जेल मे प्रकाश उसी तरह निश्चिन्त था जैसा मै उसे अपने गाँव मे, नदी तट पर, देखा करता था। दो चार दिनो के बाद कोर्ट की बारी आयी—हम नित्य कोर्ट मे भेजे जाते और फिर सन्ध्या को जेल मे लौट आते। गाँववालों की भीड़ भी खूब

जुटती—दोनों ओर से वकीलों ने खूब वहसें की और पूरी मिठाइयाँ डकार-डकार कर गवाहों ने रंगविरंगे बयान दिये। गाँव के ही दर्जनों गवाहों ने हमें अपराधी प्रमाणित कर दिया। जब मेरे चाचा जमींदार की ओर से गवाही देने खड़े हुए तो मेरा सिर चकरा गया—आँखों के आगे अन्धकार-सा छा गया। मेरे चाचा—इतने नीचे गिर गये! दूसरे पालतू बनकर आज मुझे ही चबा जाने को प्रस्तुत हैं! मैं नहीं जानता कि गुलामी या गरीबी मनुष्य को इतना कायर, इतना पतित, इतना मुरदा बना डालती है। चाचा जी ने बयान दिया—"सुरेश को जानता हूँ। यह मेरा सगा भतीजा है। यह लड़कपन से ही आवारा है। शहर मे रहता है और जब-जब गाँव मे आता है, किसानों को जमा करके जमींदार के खिलाफ उभाड़ता रहता है। अखबारों में से पढ़-पढ़कर ऐसी-ऐसी खबरें सुनाता है जिससे यह जाहिर होता है कि अमुक देश मे किसानों ने जमींदार का गला घोंट दिया, अमुक प्रान्त के मजदूरों ने मिल में आग लगा दी या अमुक गाँव मे एक महाजन को लूट लिया गया जो बड़ा ही धनी था और गाँव मे कर्ज लगाया करता था।

इस मुकदमे के सम्बन्ध मे जानता हूँ कि सुरेश ने एक दिन मन्दिर पर किसानों को जमा करके भडकाना आरम्भ किया और कहा कि ईंट का जवाब पत्थर से दिये बिना जमींदार सीधे रास्ते पर नहीं आवेंगे। उसी रात को जमींदार के तीन प्यादे बुरी तरह पीटे गये। सुरेश गाँव मे एक सभा कायम करके बराबर जमींदार के प्रतिकूल वातावरण कायम रखने का प्रयत्न करता है।" चाचा जी का यह बयान आदि से लेकर अन्त तक मिथ्या था। मेरे वकील के जिरह करने पर चाचा जी ने कहा कि—"मैं अपने भाई से सुरेश के कृत्यों के चलते

अलग हुए। चोर-डकैतों का साथ रखना इसे प्रिय है। मेरे घर में रात-रात भर अनजान व्यक्ति आते रहते थे, बङ्गाली जैसे भी कुछ परदेसी आते थे। मैंने अपने भाई को बहुतेरा समझाया पर सुरेश उनके अधिकार-क्षेत्र से बाहर निकल गया था—लाचार अपनी खैरियत के लिये मुझे घर छोड़ देना पड़ा। मैं जानता था कि किसी न किसी दिन सुरेश फाँसी पा जायगा—मैं जो कुछ कह रहा हूँ धर्म से।"

मैं देख रहा था कि जिस समय मेरे चाचा बयान दे रहे थे, उस समय पिता जी सिर झुकाये बेंच पर बैठे थे—शायद रो भी रहे हों। मैं तो अवाक् था।

जमींदार की जमादारी वर्दी डाटे शान से मेरे चाचा जी कठघरे में खड़े थे और कसमें खा खाकर झूठ बोल रहे थे—क्या यह दृश्य कुछ कम हृदयद्रावक था। हम में से कोई यह नहीं जानता था कि मेरे चाचा जी इस रूप में हमारे सामने उपस्थित होंगे। कोई दो मास तक मुकदमे का नाटक होता रहा। ऐसी भी कुछ अनजान सूरतें गवाही के 'कठघरे' में देखी गयीं जिन्हें हमने कोर्ट के बाहर कभी भी नहीं देखा था—नाम भी नहीं सुना था। एक पुराने दागी चोर ने आकर गवाही दी कि मैंने (सुरेश ने) उसे जमींदार के यहाँ संध काटने के लिये बुलवाया था। तात्पर्य यह कि हम पर सभी दृष्टियों से अपराध प्रमाणित करके ही छोड़ा गया। अब फैसला सुनाना बाकी रहा। इसी बीच में एक दिन हमारी पार्टी के एक किसान ने रोते हुए कहा—"भैया सुरेश! मैं निरपराध फाँसा गया। उन्हें बहुतेरा समझाया, पर होनी होकर ही रही। राजा से लड़ाई मोल लेकर हम कौड़ी के तीन हो गये। मेरे बच्चे अभी छोटे-छोटे हैं।"

उसकी इस बात की चोट मैं सहने को कतई तैयार न था। पर खून की घूँट पीकर बोला—"सो कैसे गोविन्द! मैंने न तो खुद किसी के खिलाफ लड़ाई छेड़ी और न तुमने ही बगावत का झंडा ऊँचा किया। मेरे सिर पर कलंक क्यों लाद रहे हो।" गोविन्द उस समय बैठा अपने सिर के जूएँ मार रहा था। कुछ देर ठहर कर बोला—"आग किसने लगाई है? हम लोग तो सदा से जमींदार के आज्ञाकारी बने रहे। आज एक-एक बीड़ी के लिये तरस रहे हैं—सुरती मिलेगी?"

आग लगाई है तुम लोगों की मूर्खता ने—मैंने कहा-"जरा समझदारी से काम लो। यदि प्रारम्भ से ही अपनी दब्बू प्रकृति का घृणित परिचय तुम लोग नहीं देते तो आज यह बारी ही नहीं आती। तुम लोगों ने ही जमींदार को ताण्डव नृत्य करने के लिये उत्साहित किया।"

गोविन्द—"सो कैसे?"

मैं—"अच्छी तरह। उसके प्यादों ने नादिरशाही मचा रक्खी थी—गाँव की ओर से कभी नम्र प्रतिवाद भी हुआ? नहर के नाम पर लूट शुरू हुई, तुम लोगों ने कभी सींग पूँछ हिलाई, बहू-बेटियों का घर से झाँकना भी दूभर हो गया, कभी तुम लोगों का खून खौला। बेशर्मी की जिन्दगी व्यतीत करने में हमारा गाँव संसार के सभी गाँवों से बाजी मार ले गया। हम आज जेल मे हैं पर इन १८।१९ आदमियों मे कितने हैं जो सच्चे अपराधी कहे जा सकते हैं। गाँव के खास खास व्यक्तियों को चुन कर यहाँ बन्द करवा दिया गया है। तुम्हारे ही गाँव के जितने गवाह गुजरे हैं वे सभी तुम्हारे खिलाफ गये हैं। जिस जगन्नाथ को जूतों से पीटा गया, उसकी मेहरिया को खेत से पकड़ कर मँगवाया गया और खुली जगह पर उसे भर पेट पीटा गया—वही जगन्नाथ आज कसमें

खाकर कह रहा है कि सुरेश वगैरह एक दिन उसे लगान बन्द कर देने के लिये कहने गये थे, धमकाने गये थे और सामाजिक वहिष्कार का भय दिखलाने गये थे। यह बात सरासर झूठ है। तुम जगन्नाथ के यहाँ भले ही गये हो पर मैं तो आज तक कभी भी उसकी गली में भी नहीं गया। मैं क्या कहूँ—जगन्नाथ हमारा अकारण शत्रु बन गया।" गोविन्द ने एक लम्बी साँस ली और कहा—"देखें क्या होता है। मेरे घर मे प्रसव होने वाला है। विधवा लड़की पहाड की तरह सिर पर घहरा पड़ी है। परमात्मा उनकी रक्षा करें। छोटे-छोटे ४।५ बच्चे हैं। सभी विना अन्न के मर जायँगे। कौन उन्हें खिलावेगा। मैं तो मजदूरी करके कुछ पा जाता था। हाय, सभी बेमौत मरे। क्यों भैया, एकाध बीड़ी मिलेगी। बीडी न हो तो थोडी सी सुरती चूना ही सही—।" मैंने देखा कि एक कोने मे बैठा प्रकाश एक लम्बे और मोटे से कैदी से बातें कर रहा है। यह कैदी लम्बा और मोटा था। सिर के बाल कड़े और रूखे थे। चेहरा घिनौना, झाड़ की तरह मूछें और तेज आँखें। प्रकाश से बाते करते करते यह इधर-उधर बड़ी फूर्ती से देखता जाता था। इधर करीब एक सप्ताह से प्रकाश घुल-घुलकर इस विचित्र व्यक्ति से बातें करता नजर आता। मैं भी कुछ उत्सुक हो उठा हूँ।

जो भी हो, पर मैं अपने होटल के विषय मे चिन्तित रहने लगा। एक साल का होटल था और मैं था प्रधान मैनेजर। मेरी बदनामी से होटल पर आँच आने का खतरा था। कोर्ट मे दिनेश ही नहीं प्रभुदयाल तथा होटल के दूसरे कर्मचारी भी आते थे। प्रभुदयाल का चेहरा उतरा हुआ तथा चिन्तित-सा दिखलाई पड़ता था। एक दिन मेरे पूछने पर प्रभुदयाल ने कहा था कि—"होटल पूर्ववत चल रहा है। चिन्ता की

बात नहीं है, पर पिछले सप्ताह एक कमरे में एक यात्री मरा पाया गया। जाँच से यही तै हुआ कि उसने अफीम खाकर आत्महत्या कर ली है। उसके पास १५०) निकले जिसे पुलिस मे जमा करा दिया गया।"

मैं सन्नाटे मे आ गया। मैं समझता था कि उस अभागे की मृत्यु कैसे हुई, पर मन की बात को होठों पर लाकर खतरा मोल लेना मुझे कतई स्वीकार न था। मैंने इतना ही कहा कि—"सावधान रह कर सब काम करना। होटल की बदनामी न हो, इस पर पूरा ध्यान रक्खा जाय।"

प्रभुदयाल ने धीरज बँधाते हुए कहा था—"मुझसे जहाँ तक बन पड़ता है, करता हूँ। भाग्य की बात कौन जाने। पिछले महीने २५०) लाभ हुआ केवल तुम्हारे हिस्से मे। तुम्हारे पिता जी को रुपये देकर रसीद ले ली गयी है।" मैंने संक्षेप में उत्तर दिया था—"तुम्हारा ही सहारा है।" मैंने देखा था कि प्रभुदयाल की आँखें छलछला गयीं। उसने कहा—"भाई, परमात्मा का सहारा है। तुम चिन्ता मत करना—छूट जाओगे वकील कहते हैं कि मामले का रुख अच्छा है।"

मैं अपने आपको शान्त रखने का प्रयत्न करता था पर जब यह सुना कि हमारे दल के पाँच व्यक्ति रिहा कर दिये गये और शेप को सेशन भेज दिया गया, जिनमे एक मैं हूँ तो मेरा हृदय बैठ गया। प्रकाश भी सेशन भेजे जाने वाले अभागों के साथ था। लाचारी थी—क्या करते।

दो-तीन महीने के बाद सेशन जज के कोर्ट मे हम हाजिर किये गये। आठ दिन मुकदमे की सुनवाई मे लगे। इसी बीच मे एक कांड हो गया। मेरे चाचा फिर गवाही देने आये तो मैं अपने हृदय के उद्वेग को नहीं दबा सका। मैंने सेशन जज

को सम्बोधन करके कहा—"महाशय, इस दुःखद नाटक का जल्द अन्त कर दें। मैं नहीं चाहता कि अपने चाचा और पिता को इस तरह पापी पेट के फेर में पड़कर बार-बार झूठ बोलते देखूँ। मेरे लिये यह दृश्य अत्यन्त हृदय-विदारक है जो मैं फिर अपने निकटतम रिश्तेदारों को झूठी गवाहियाँ देते और खुले कोर्ट में मनुष्यता का मुँह काला करते देख रहा हूँ। आप मुझे चाहे तो फाँसी पर लटका देने का हुक्म दे दें पर इस जलील दृश्य की पुनरावृत्ति न होने दें।"

मैंने देखा कि विचारपति का गम्भीर चेहरा अतिशय गम्भीर हो गया। मेरे चुप हो जाने पर एक मिनट तक भरे हुए कोर्ट में सन्नाटा-सा छा गया। घूमने वाले बिजली के पंखों की हलकी आवाज कमरे में गूँज रही थी—घोर सन्नाटा।

---

(२५)

जनाब जज साहब बहादुर ने हम में से ६ अपराधियों को छोड़ दिया, शेष आठ को १० से लेकर चार साल तक की कड़ी सजा का हुक्म एक दिन सुना दिया। मैंने देखा कि जूरियों की कतार में सेठ धरनी मल्ल जी भी बैठे थे जिन्होंने भी हमें "अपराधी" बतलाया था। जब मेरे चाचा साहब का यह हाल था तो धरनीमल्ल का क्या भरोसा था। दिनेश को भी मैंने कोर्ट में सिर झुकाकर बैठे देखा था—सूखा हुआ पीला चेहरा और दाढ़ी-मूँछ के बाल बढ़े हुये, ठीक पागल की तरह सूरत में। बड़ी शान्ति से हम लोगों ने अपने भाग्य का निपटारा देखा, बड़े साहस से हम लोगों ने अपने जीवन का फैसला सुना। गोविन्द कोर्ट में ही चिल्ला कर रोने लगा। मैंने देखा कि

प्रकाश पूर्ववत् स्थिर है। न खुशी और न नाराजी। मेरे पिता जी भी चट्टान की तरह अटल थे, पर उनकी आँखों से मानों अंगारे झरने ही वाले हो। प्रभुदयाल ने तो दोनों हाथों से मुँह छिपा कर रोना शुरू कर दिया। मैं भी क्षण भर के लिए उत्तेजित-सा हो उठा। बोला—"विचारपति महोदय धन्यवाद। हम आपके चिर कृतज्ञ रहेंगे।" मुझे तो ऐसा जान पड़ता था कि सारा शहर और हमारा गाँव मुकदमे का फैसला सुनने के लिये उमड पड़ा है। मैंने कोर्ट से बाहर निकलने के बाद अपने चाचा को जब देखा तो उन्हें दरवाजे के बगल मे खड़ा होकर रोते पाया। वे दीवाल की ओर मुँह करके—फूट-फूट कर—रो रहे थे। मैंने चिल्लाकर कर कहा—"चाचा जी, विदा दीजिये। आप भी धन्यवाद के ही पात्र हैं। हाथो मे हथकड़ियाँ पडी हैं वर्ना आप के चरण स्पर्श जरूर करता।"

जिन्हें-जिन्हें सजा सुनाई गई थी उनके रिस्तेदार, मित्र इधर उधर चिन्तित मुख लिये खड़े नजर आये। बेचारा गोविन्द कदम-कदम पर बैठ जाने का उपक्रम कर रहा था, पर प्रकाश उत्सुकता पूर्वक भीड़ को देखता हुआ आगे बढ़ा। जब मैंने उससे कहा—"घबराना मत प्रकाश! १० वर्ष समाप्त होने पर भी हम जवान ही बने रहे रहेंगे। डर बुढ़ौती का है, जेल का नहीं। कल के छोकरे हो, साहस रखना।" प्रकाश गंभीर स्वर मे बोला—"भैया, घबराऊँगा क्यों। मुझे तो आनन्द आ रहा है। तुम्हारे साथ रहने का अवसर मिला। अच्छा हुआ जो मैं भी १० साल के लिये ही बड़े घर भेजा गया।"

प्रभुदयाल बोला—"भैया, अपील करूँगा—परवा नहीं। तुम्हें छुडा लूँगा चाहे जितने रुपये लगे।"

मैंने कहा—"मेरे पिता जी पर कृपा रखना—मैं तो जेल मे या बाहर एक जैसा ही हूँ।"

आज तक मैंने किसी के सामने दया, भिक्षा के लिये हाथ पसारे हों यह मुझे याद नहीं। प्रभुदयाल की कोठी में मैं दो-दो दिन उपवास किये हैं। एक-एक सप्ताह तक ज्वर में बदहोश रहा हूँ वह भी विना दवा के, पर कभी भी हाथ पसार कर कुछ नहीं माँगा—न अपने लिये और न अपने परिवार के लिए, पर आज मेरे मुँह से जो मेरी कमजोरी प्रकट हो गई उसका मलाल जन्म भर रहेगा या ३।४ जन्म तक यह सर्वान्तर्यामी ही जाने। मैं भरे हुए हृदय से प्रभुदयाल से दया-भिक्षा माँग कर फिर मन ही मन बहुत ही लज्जित हुआ। यह क्षणिक भावुकता की उमग थी जो खास-खास अवसर पर मानवीय-निर्बलता के रूप मे प्रकट हो जाती है। कोई १५।१६ साल से मैं प्रभुदयाल की कोठी की छाया मे हूँ पर आज मुझे ऐसा लगा कि मैं अपनी सब से बडी हार कर जेल जा रहा हूँ।

इस बार जेल मे पहुँच कर मैंने उसे नये दृष्टिकोण से देखा। आज हम एक अपराधी के रूप मे जेल की ओर जा रहे हैं। हमारे ऊपर हत्या का षड्यन्त्र, डकती का षड्यन्त्र, आग लगा देने का षड्यन्त्र, जमींदार के खिलाफ हिंसात्मक उपायों को काम में लाने की उत्तेजना प्रदान करने का अपराध, इसी तरह न जाने कई भयानक "धाराओं" (Act) मे पडकर हम इतनी दूर बहते हुए चले गये कि वहाँ से घर लौटते-लौटते १० साल लगेंगे—बापरे कितना लम्बा पथ है। पता नहीं कूल किनारा भी कहीं है या केवल एक व्यापक हाहाकार, व्याप्त नीरवता।

आज तक मैंने कभी भी जीव, ब्रह्म आदि के पचडे मे नहीं पड़ा। यद्यपि दिनेश से आध्यात्मिक पुस्तके ले लेकर मैंने खूब स्वाध्याय किया है और दर्शनशास्त्र का काफी अध्ययन भी किया है पर जेल के भीतर कदम रखते ही मेरा सारा दर्शन-शास्त्र उमड पडा। पिता तथा बहुत से व्यक्ति हमे जेल के

फाटक तक पहुँचाने आये थे—एक प्रकाश ही ऐसा था जिसे न तो किसी ने मुकदमे मे सहायता पहुँचाई और न बिदा देने ही आया। वह मित्र आत्मीय सहायहीन एक ऐसा जहाज था जिस पर न तो कोई माँझी था और न पतवार। सागर की तरङ्गों को चीरता हुआ वह हवा के रुख पर इधर-उधर बहता चलता था। प्रकाश—नवयुवक प्रकाश—अपनी अवस्था पर भी विचार नहीं करता था। गाँव मे भी वह अत्यन्त गम्भीर बना रहता था। जब जब मैं घर पर जाता तो प्रकाश से मुलाकात होती। वह सदा कुछ न कुछ पढ़ा करता था या घोर निर्जन स्थान में जाकर चुपचाप बैठा आकाश देखा करता था। गाँव के समझदार व्यक्ति उसे पागल कहते थे—बहुतो की तो यह राय थी कि किसी प्रेत ने ही उसकी ऐसी दशा कर रक्खी है। गरीब होने के कारण वह सभी की नजरों से ओट मे था और यही अवस्था उसके लिये सुखद भी थी। कोई देख कर भी उसकी ओर नहीं देखता था। जेल मे—सजा हो जाने के बाद—प्रकाश ने एक बार गम्भीर दृष्टि से मेरी ओर ताक कर कहा –"क्यो भैया, लगातार १० वर्ष तक इसी घर मे रहना पड़ेगा ?"

मैंने कहा—"शायद दूसरे-तीसरे स्थान मे बदली-बदली हो जाय—पर रहना पड़ेगा जेल मे ही।"

प्रकाश ने फिर चुप्पी साध ली। मैंने देखा कि वह मन ही मन कुछ खोज रहा था। उसकी आँखो से विलक्षण स्थिरता प्रकट होती थी– मेने पुस्तकों मे अरविन्द बाबू के जेल जीवन की गाथा पढ़ी थी, सोचा कि क्या प्रकाश भी कोई अमरज्योति पा गया या किसी परमज्ञान की इसे उपलब्धि हो गयी। मैंने प्रकाश के विषय मे सोचना बन्द कर दिया—उसकी कठोर उदासीनता मेरे लिये भी कष्टदायक सिद्ध होती थी। एक

प्रकाश ही पढा लिखा साथी था जिससे मन बहलाया जा सकता है पर उसे भी समाधिस्थ देखकर न जाने मन कैसा हो जाता था। हमारे दूसरे साथी दिन भर घर का रोना रो रोकर मेरे मन में निर्बलता के भाव सचारित कर रहे थे। एक रात को भदई बड़े जोर से रोता हुआ उठ बैठा। मैंने अकचका कर पूछा—"क्या हुआ ?"

आँखे मलता हुआ बोला—"अरे बापरे ! अरे बाप रे !!" दूसरे कैदियों की भी निद्रा भङ्ग हुई। "वार्डर'—दौडे। पूछने पर भदई ने कहना शुरू किया—मुझे ऐसा जान पडा कि मेरी—हाँ जी, सीताराम की अम्मा एकाएक रेल से कट गयी और रेल का इजन घोड़ा बन कर घास चर—इसी समय वार्डर ने लपक कर अपने अभ्यस्त हाथ से एक तमाचा भदई के गाल पर जड़ दिया, इसके बाद "बाप रे बार" का आर्तनाद सुन पड़ा और फिर शान्ति। कुछ दिनों के बाद हमे काम मे लगा दिया गया और ४।५ महीनों के बाद सुना कि हमारी अपील नामंजूर हो गयी—हमे अब १० साल तक जेल मे रहना पड़ेगा ही। धीरे धीरे मैं जेल का सच्चा रूप देखने लगा। आप बाहर से जो ईंटों की चहारदीवारी और भीतर की इमारतों मे से किसी का ऊपरला खड देखते है वह जेल नहीं है। सच्चा जेल है वार्डरों की गालियों में, लात जूतों मे, अकारण जुल्मों मे जिनके कारण सच्चा और सीधा कैदी भी अपने हृदय मे एक भयानक हाहा-कार भरे जेल से लौटता है। एक दिन किसी मामूली से अपराध पर प्रकाश को इतना पीटा गया कि ३।४ दिनों तक उसके मुँह से खून जारी रहा और बायी आँख का कोना तो २।३ मास तक लाल रहा। इस शारीरिक पीड़ा पहुँचाने के बाद भी विश्राम नहीं। चोट खाकर प्रकाश की दायीं कलाई

मोच खा गयी थी पर फिर भी उसे गेहूँ के बोरे उठाने ही पड़ते थे। मोच खायी हुई कलाई से भार कैसे उठाया जा सकता है यह एक सीधी-सी बात है, पर जेल मे इतनी मामूली बात पर कोई ध्यान नहीं देता।

प्रकाश की मार ने हमे दहला दिया। मैं देखता था कि ३।३ वार्डर मिल कर शत्रुओं की तरह उस गरीब लड़के को डडों से पीटते थे—वह उठता और फिर गिरता था। मूर्छित हो जाने पर उसकी देह पर लातों से प्रहार किया जाने लगा। मुँह से खून की धारा वह चली तो मैंने समझा कि प्रकाश अनत मे विलीन हो गया। पर जेठ की कडी धूप मे वह खुली जगह मे पड़ा था। एक बार उसने कराहा। फिर करवट बदलने का प्रयत्न किया फिर मेरी ओर कातर आँखों से देख कर दोनों हाथ फैला दिये—हाय मैं चक्की घर में वन्द चक्की चला रहा था, क्या करता! फिर उसने बड़ी कठिनता से पानी माँगा पर कहाँ पानी देने की फुर्सत थी। दैवात् एक मेहतर बाल्टी में पानी और झाड़ू लिये उसी ओर से निकला। उसने प्रकाश के ऊपर आधा बाल्टी जल डाल दिया और दो चार गालियाँ देता वह आगे बढ गया! मैं आत्मज्ञान हीन-सा बना यह सब देखता रहा। होश आने पर प्रकाश खिसकता हुआ दीवाल के पास छाया मे चला गया। वह अच्छी तरह बैठ भी नहीं सका था कि दो तीन वार्डर फिर आये और प्रकाश को घसीटते हुए ले चले—मैं तब तक देखता रहा जब तक वह मेरी आँखों से ओझल न होगया। मेरी चिन्ताकुल अवस्था देख कर एक साथी कैदी बोला—"आप पहिली बार जेल आये हैं?"

मैं बोलना चाहता था पर क्रोध और करुणा से मेरा गला रूँधा हुआ था। मेरी आँखों से अश्रुप्रवाह जारी हो गया।

कैदी ने कहा—"छिः छिः, आप रोते हैं। मैं १४ साल के लिये आया हूँ--खून का जुर्म था। छः साल व्यतीत हो गये। बीसों बार पिट चुका हूँ। एक बार जान की बाजी लगा कर मैंने भी एक वार्डर को तसलो से पीट दिया—उसका चेहरा जख्मी हो गया। मुझे १६ बेत की सजा मिली और पिटा तो ऐसा गया कि कोई ६।१० दिनों के बाद आँखे खोलने का होश हुआ। यह जेल है—जेल कहते हैं नरक को।"

मैं उस साथी कैदी की बातों को कतई नहीं सुनता था। मेरे मन-प्राण सभी प्रकाश की खोज मे लगे हुए थे। हाय—बड़ा ही गरीब लड़का था! साथी कैदी से मैंने पूछा—"प्रकाश को वे कहाँ ले गये ?"

"शायद जेलर के पास—" उस कैदी ने कहा—"उसे कुछ और सजा दी जायगी।"

मैं सिहर उठा—उफ्! इतने से भी उन यमदूतों को संतोष नहीं हुआ जो और सजा दिलवाने के लिये व्याकुल है।

सात आठ दिनों के बाद प्रकाश आया। पीला चेहरा और सिर मे तथा हाथ मे पट्टी बँधी हुई। बाईं आँख मे लाली और पलक पर काला-नीला दाग। गाल सूजे हुए। सामने के दो दाँत गायब! वह बड़ी कठिनाई से काँपता हुआ चल रहा था।

मैंने घबरा कर पूछा—'प्रकाश' कहाँ थे तुम ?"

प्रकाश ने कहा—"भैया, काल कोठरी मे बन्द रहा एक सप्ताह। बड़ी शान्ति थी वहाँ—अच्छी जगह है। एकान्त है और ठंडी भी है, हाँ, मच्छड़ बहुत है। तथा बड़ी भयानक बदबू है—पर है बड़ी शान्ति।"

मैंने पूछा—"तुम्हें क्या बहुत पीटा गया ?"

प्रकाश—"बहुत—मै मर क्यों नहीं गया, आश्चर्य।"

मैं—"किस अपराध पर, बतलाना तो।"

"अपराध"—प्रकाश ने कहा—"अपराध तो इतना ही था कि जब वार्डर ने मुझे गालियाँ दी तो मैंने भी एक घूसा जमा कर कहा—"भले आदमियों की तरह बातें करना सीखो—बस।"

"बस, इतना ही अपराध—" मैंने चकित होकर पूछा—"तुम झूठ तो नहीं बोलते।"

प्रकाश चिढ़कर कहने लगा—"मैं झूठ बोलता हूँ? मैं झूठा हूँ?"

मन ही मन लज्जित होकर और फिर मिलावट के ढङ्ग पर मैंने कहा—"प्रकाश, मेरा मन विकल है। तुम्हें बड़ा कष्ट भोगना पड़ा—उफ्!"

"कुछ नहीं"—प्रकाश ने कहा—"कष्ट क्या है। मैं इसकी परवा नहीं करता मैं महान की ओर जा रहा हूँ, इन तुच्छ बातों की ओर ध्यान देना मूर्खता है।"

मैं प्रकाश की बातें सुन कर अकचका गया। वह सिद्ध योगियों की तरह गम्भीर शब्दों में बोल रहा था।

मैंने देखा कि उसे प्रेस में भेज दिया गया। कागज काटने का काम मिला। रात को हम एक ही बैरक मे सोते थे और दिन को भिन्न भिन्न विभागों मे काम करते थे। दिन डरावना और रात प्यारी!

एक दिन मैंने प्रकाश को २।३ कैदियों से घुल मिल कर बातें करते देखा। जिन कैदियों से वह बाते कर रहा था उनमें से एक था पुराना चोर! कई बार वह जेल यात्रा कर चुका था। प्रकाश को मैंने अत्यन्त तन्मयतापूर्वक जिन कैदियों से बातें करते देखा था वे सभी चोर, डकैत और खूनी थे। हमारे वार्ड में एक से एक धत्तेड कैदी थे। किसी ने तलवार चलाई थी तो किसी ने डके की चोट से डाके डाले थे, किसी ने हजारों

का माल हजम कर लिया था—३१४ ट्रेन डकैत भी थे। प्रकाश इन्हीं दागी असामियों के सम्पर्क में धीरे धीरे दूध मिश्री की तरह घुल मिल गया।

---

(२६)

धीरे धीरे दूसरा वर्ष समाप्त होने होने पर हो गया। हमारे साथियों में से २।३ इधर उधर दूसरे जेलों में भेज दिये गये—मैं, गोविन्द, प्रकाश, बस इन तीन मूर्तियों का यहाँ निवास रह गया। मैं भी दो बार पिट चुका तो मन एक प्रकार से निर्भय-सा हो गया। इसी समय मेरे बैरक में एक नौजवान कैदी कहीं से बदल कर आया। एक नये साथी का हम सभों ने दिल खोल कर स्वागत् किया। यह अत्यन्त उद्धत और निर्भय स्वभाव का था। आते ही हमसे कहा—"आप लोग जेलवालो को ठीक करना नहीं जानते। देखिये—यह कोठरी कितनी गन्दी है। मुझे तो जन्म भर यहीं रहना है। फिर अपना स्वास्थ्य कैसे नष्ट होने दूँ।"

दूसरे ही दिन मैंने देखा कि हमारा वह नूतन साथी टहल टहल कर अखबार पढ़ रहा है। मेरे आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा—जेल में अखबार! नरक में बचाव? मैंने कहा—महाशय जी, इधर भी दया कीजियेगा।

कहा—"क्यों नहीं, यह लो—" कहते हुए दो पेज निकाल कर आपने हमारी ओर लापरवाही के साथ फेंक दिया। मैं तो इतना चकित हो गया था कि कभी अखबार की ओर देखता तो कभी छत की ओर। रविवार था और जेल में हद रौनक थी। मार पीट, गाली गलौज बन्द

थी। कैदी कपड़े साफ कर रहे थे—सिर मुँडवा रहे थे, बदन की मैल छुडा रहे थे। अखबार का पढ़ना समाप्त करके उसने एक सिगरेट मुँह मे लगाया और कोने मे बैठ गया। मैं इतना विस्मयविमूढ हो गया कि सहसा उठकर खडा हो गया—अरे यह मनुष्य है या प्रेत, जादूगर, देवता या सी० आई० डी०। इसके बाद मैंने देखा कि उसके पास, साबुन, सेफ्टीरेजर, मक्खन, रुपये, सिगरेट, फल, मिठाइयाँ, अखबार सभी पहुँच रहे हैं—मानों मन्त्र पढ कर उसने चुटकी बजाई कि अला-उद्दीन के जादू भरे चिराग के करिश्मे शुरू हो गये। हम सभों के मानो दिन पलट गये। इसके बदले मे दूसरे कैदी काम कर देते और वह योंही मामूली काम अपने हाथों से कर लिया करता। एक सप्ताह के बाद पता लगा कि यह एक ट्रेन डकैत है। अब धनी असामी है—तीन साल से जेल मे है। २२ साल की सजा हुई है। धीरे-धीरे हम एक दूसरे से घुल मिल गये। प्रकाश को मैंने देखा कि वह इसकी ओर भी अग्रसर हुआ। धीरे-धीरे परिचय हो गया। एकाध बार दिनेश के यहाँ मैंने इसे देखा था—यह अत्यन्त चचल और साहसी विद्यार्थी था। दरिद्रता के कारण पढ़ना छोडकर नौकरी की चिन्ता मे मारा चला पर कहीं भी सिर छिपाने को जगह नहीं मिली। घर परिवार से भरा हुआ था। स्त्री, बच्चे, विधवा माँ, विधवा चाची और न जाने कौन-कौन—दोनों जून १६ आदमियों की रोटी की व्यवस्था।

दिनेश ने इसकी कथा सुनाई पर बाहर यह दाढी और मूछों से भरा हुआ चेहरे वाला एक भयानक शैतान-सा दिख-लाई पडता था पर यहाँ न तो दाढ़ी और न मूछे—सब साफ। सुन्दर सुडौल शरीर, तेज आँखे और कठोर, दया-ममता हीन क्रूर चेहरा। कर्कश पर गूँजती हुई आवाज। एक एक कदम

से दृढता शान। यह भी सदा चुप रहता था—धीरे-धीरे इसने अपना ऐसा जाल फैलाया कि ६ । ७ भयानक-भयानक कैदियों की एक पार्टी बन गयी। रुपयों की खनखनाहट भी सुन पडने लगी और सिगरेट और गाँजे की महक भी आने लगी—मैं अकचकाया कि यह क्या तमाशा है। मैं सोच भी नहीं सकता था कि जेल मे रुपयों के साथ गॉजा-सिगरेट कैसे प्राप्त किये जा सकते हैं पर जब ध्यान रुपयों की खनखनाहट की ओर गया तो सारी परिस्थिति साफ हो गयी। प्रकाश और दूसरे कैदियों के साथ मैं भी इस चडाल-चौकडी मे भरती हो गया। जिस विलक्षण कैदी ने आते ही जेल के सभी नियम कानूनों पर अपना "सिक्का" बैठा दिया और—देखते-देखते एक गिरोह का सरगना बन बैठा उसका नाम था—शङ्कर।

शङ्कर बलात्कार किसी स्त्री को चुराकर बेंच देने के अभियोग मे आया था। लम्बा, भडकीला बदन, गोल गोल आँखें और सूजा हुआ-सा चेहरा, सामने के कुछ दाँत टूटे हुए बरसाती मेढक-सा पीला रङ्ग, दिन भर मे २५ । ३० बार पेशाब खाने की ओर दौडनेवाला—यही शङ्कर की विशेषता थी। जेल की एक एक ईंट शङ्कर को पहचानती थी। जैसे ही शङ्कर ने जेल मे प्रवेश किया—सर्वत्र एक हलचल-सी फैल गयी। शङ्कर चाचा, शङ्कर भैया, शकर दादा की पुकार मच गयी। वार्डरों ने बढकर सलामी दी और हेड वार्डर ने तो पूछा कि "कितने दिनो के लिये आये सरऊ—।"

शकर ने कहा—"पॉच साल—समझ गये न हुजूर।"

हम सभो ने उत्सुक नेत्रों से शकर जी का स्वागत समारोह देखा। मेरे वार्ड मे भी हलचल मच गयी—आप यहीं रक्खे गये। शकर जी से परिचय प्राप्त करते देर नहीं लगी। दल-

वरिया के स्वामी पलटूराम, वद्दल आदि से शंकर की दाँत काटी रोटी थी—वडा स्नेह था। तत्काल उसने मुझे भी पहचान लिया। बोला—अरे तुम सुरेश? अच्छा—कितने दिनों के लिये?"

मैं—"वस, दस, वारह साल के लिये।"

शकर—"कितने साल अभी बाकी हैं।"

मैं—अभी केवल दो साल सजा काटी है भैया, वडी कठिनाई से जी रहा हूँ। साल मे दो चार वार पिटा जाता हूँ या काल कोठरी मे भेजा जाता हूँ। मैं देखता हूँ कि जेलवाले मुझे जीने नहीं देगे? काम भी कडा मिलता है।

शकर—अवे साला तू नहीं जानता कि ये तुझे क्यो सताते है? इन्हें मालूम है कि तू मालदार असामी है—वस!"

गाली सुनते-सुनते यद्यपि अभ्यस्त हो गया था, पर शकर के मुँह से अचानक 'साला' सम्बोधन सुनते ही मैं झल्ला उठा—गरम होकर वोला—"तुमने गाली क्यों दे दी।"

शकर—"विगड गये तनिक सी वात पर—तुमसे यह जेल काटे न कटेगा। ऐसी तुनुक-मिजाजी। जानते नहीं—एक वार मैंने अपने चाचा को साला कह दिया था। जेलर, वार्डर सब को साला कहता हूँ—कोई बुरा नहीं मानता। यह तो प्रेम का सम्वोधन का। प्यार से वच्चों को लोग कहते है—साला वडा वदमाश है।"

इस स्नेह-सभापण का रहस्य मैं पहिले नहीं जानता था। शकर पहिले पुलिस की नौकरी करता था। रात को चोरों के साथ यह अभागा भी सेंध पर पकडा गया। यह २५ साल की पुरानी घटना है। पलटूराम कहता था। नौकरी जहन्नुम मे गयी और उलटे दो साल के लिये वडे घर की हवा खानी पडी। यहाँ पलटू और शकर का साथ वडे-वडे दिग्विजयी चोरों

डाकुओं ने हुआ । संक्षेप में मैं शंकर के विषय में इतना ही जानता था । जिस वार्ड में मैं था वह लम्बी सजा भोगने वालों के लिये ही था । इस लम्बी कोठरी की ईंटों को यदि बोलने की क्षमता मिल जाय तो मैं कहता हूँ कि सरकार को इन ईंटों पर १४४ तत्काल लगाना पड़े । न जाने कितने अभागों ने यहाँ क्या-क्या सोचा होगा, कितनों ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों को इसी कोठरी की कड़ियाँ गिन-गिन कर समाप्त किया होगा । कौन कह सकता है कि इस कोठरी की फर्श में कितना आँसू-सूखा होगा, हवा में कितनी लाचार-आहें भरी होंगी, छत से कितनी बेबश आँखें टकरा-टकरा कर थकी होंगी, दीवारों से कितने पगले सिर टकराये होंगे—कौन कह सकता है !

हम छब्बीस कैदी आज इस कोठरी में बैठ कर अतीत और भविष्य के बीच में जो भयानक खाई है उस पर वर्तमान का पुल बना रहे हैं ।

गाँजा, सिगरेट, भंग, पान, सुरती, तास और छक्के-पंजे सभी कुछ सामान यहाँ सुलभ हो गये हैं—तिकड़म की बदौलत नरक को स्वर्ग बनाने का उपक्रम किया जा रहा है ।

जिस कैदी की चर्चा आगे चला आया हूँ उसका नाम था 'परेश' । नाम बंगालियों जैसा था । शंकर से उसकी मैत्री तत्काल हो गयी—प्रकाश भी एक अनुभवी कैदी की तरह सँभल-सँभल कर कदम रखने लगा । हमें काम भी हल्के मिलने लगे और दिन आराम से कटने लगे—इसी समय एक दुर्घटना हो गयी ।

एक कैदी न जाने कैसे दीवार फाँद कर चलता बना । जेल में तहलका मच गया, पर वह कैदी किधर भागा यह पता नहीं लगा—भागते-भागते उसने दो वार्डरों को जख्मी भी कर दिया । छोटे-छोटे रोड़े चला कर उसने बन्दूकों की कुण्डलियाँ

कर दी। पता लगा कि जेल का मोटा सीखचा काट कर यह कांड किया गया। शंकर जी ने उत्साहित हो कर कहा—"वाह बहादुर, कमाल है।" परेश चुपचाप बैठा कुछ सोच रहा था—वह बोला—"अच्छा हुआ! कल से परसों तक दो कैदी और भगेंगे—इसके बाद मैं।"

मैं घबरा-सा गया। शकर बोला—"भाई मैं तो भागता-वागता नहीं—कौन बैठे-बिठाये अपने को संकट मे डाले।" मैंने देखा कि प्रकाश कभी परेश और कभी शकर का मुँह घबराया-सा देख रहा है। मैं तो एक प्रकार से किंकर्तव्य-विमूढ़-सा बना हुआ चुप रहता था।

मैंने देखा कि एक सप्ताह के बाद एक कैदी फिर भागा, पर वह दीवार से ऐसा गिरा कि परिणाम भयंकर हुआ। सिर चकनाचूर हो गया और उस अभागे ने स्वजन परिजन से दूर, मित्र-बन्धु से परे गालियों की बौछार मे और बन्दूकों से घिरे रहते हुए तड़प-तड़प कर दमतोड़ दिया। जेल के सभी अधिकारी खड़े रहे, पर वह एक हिचकी के बाद स्वतन्त्र हो गया। उसकी देह को छोड़ कर सभी अपने-अपने विश्राम-स्थान की ओर गये।

मैंने परेश से पूछा—"क्यों बाबू, यह बलिदान तो अच्छा हुआ तुमने ?"

परेश कहा—"क्या बच्चों की सी बात कहते हो—मैं इस छोटी-सी घटना को महत्व नहीं देता। जीवित मनुष्य की कीमत करोड़ रुपये आँकी जा सकती है, पर जब मर गया तो फिर उसकी चिन्ता क्या ! मुरदे का मूल्य ही कितना होगा।"

हम पर पहरे की कड़ाई कर दी गयी। पुराने वार्डर बदल दिये गये। नये-नये ज्वान आये। शकर ने इन नये प्रहरियों को भी मिला लिया।

देखते-देखते हमारे कुछ साथी दूसरी-दूसरी जगहों मे बदल दिये गये। मेरा वार्ड एक प्रकार से खाली जैसा ही हो गया। परेश, प्रकाश और मैं तीन पुराने साथी बचे और ६।७ नये-नये असामी पहुँच गये। एक वार्डर ने खबर दी कि मेरी बदली भी सम्भवत अगले महीने एक-दम दूसरे प्रान्त में कर दी जायगी।

---

(२७)

चुपके से दिनेश को यह संवाद भेजा गया। दिनेश ने उत्तर दिया कि—"चुप रहो। बस, मुक्ति करीब है। साहस करना—इति।" मेरा हृदय नित्य धडकता रहता था—कैसे यह मास समाप्त होगा। मन हठात् उचट गया। एकाध बार किसी वार्डर से उलझ भी पड़ा और पीटा भी गया, पर मेरा ध्यान अब खुली हवा मे निकल कर साँस लेने की ओर लगा हुआ था—मैं एक क्षण भी जेल में रहने को तैयार न था। २॥ साल तक एक ही स्थान एक ही प्रकार का भोजन, एक ही तरह का शासन, एक ही विचार के साथी, वही आकाश और वही हलका-सा प्रकाश, विषादपूर्ण, गम्भीर वातावरण।

जब बरसात आती और जेल के आँगन मे बूँदे गिरने लगती तो मै दरवाजे के पास आकर इसलिये खड़ा हो जाता कि हवा के साथ उडती हुई जल को एकाध कण इस अभागे पर ही गिर जाय। हवा से सोंधी-सोंधी महक आकर कभी-कभी मुझे विकल कर डालती थी। मेरी आँखों के सामने अपना गाँव और लड़कपन का चित्र-सा खिच जाता था। वह

उमड़ती हुई घटायें, नदी का छलकता हुआ यौवन, हरे-भरे खेत और वृक्षों के धोये-धोये पत्ते।

मैंने २॥ साल से न तो सूर्योदय का दृश्य देखा था और न सूर्यास्त का। आँखें भरकर न तो जलभरी घटाओं को देखा था और न एक बार भी नदी, तालाब, खेत देखने का ही मौका आया था। कभी न तो गऊ का रँभाना सुना और न किसी स्त्री की या बच्चे की आवाज सुनने को मिली। २॥ साल से केवल गालियाँ सुनते-सुनते कान पक से गये थे। वही डॉट-डपट, शोरगुल, रोदन क्रन्दन—मै ऐसा घबरा उठा था कि एक दो बार तो आत्म-हत्या कर लेने का भी विचार हुआ, पर मौका ही नही मिला। जेल ऐसी जगह है, जहाँ मरने की स्वतन्त्रता भी नहीं रह जाती, जीने की बात तो राम जाने।

जब रात को चाँदनी खिल उठती—दूर-दूर से 'पी-कहाँ' की आवाज आती और कभी-कभी पुरवा का एकाध शीतल झोंका मोटे-मोटे सीखचों के भीतर चला आता तो मेरा हृदय ऐसा तड़पता कि नींद हिरन हो जाती। ऐसा जान पड़ता कि अस्थि पंजर तोड़कर हृदय बाहर निकल पड़ने का उपक्रम कर रहा है। गाँव का जीवन—आह, कितना मधुर, कितना कवित्व-पूर्ण कितना मनोरम! कैसे लिखूँ।

छत से लटकती हुई धुँधली लालटेन लम्बे चौड़े वार्ड में मन्द प्रकाश फैला रही है। कतार के कतार कैदी सो रहे है। सीखचों के बाहर एक बरामदा है और उसके बाद खुला हुआ मैदान। मैं चुपचाप बैठा आकाश की ओर देख रहा हूँ—आकाश का थोड़ा-सा भाग दिखलाई पड़ता है—टिम-टिम तारे जेल की लालटेन की तरह टिमटिमा रहे है। बादल का एक टुकड़ा एक ओर से आकर दूसरी ओर चला जाता है। ताक रहा हूँ—दूसरा टुकड़ा भी आवे, पर नही आता। थोड़ी देर

बाद एक काला बादल धीरे-धीरे आता है। सामने का मैदान कुछ मिनटों के लिये अन्धकार में डूब जाता है, फिर हल्का प्रकाश और इसके बाद धुली हुई चाँदनी हरी-हरी दूबों पर खेलने लगती है। इसी तरह रात समाप्त हो जाती है और मेरी आँखें भी लग जाती हैं।

इसी प्रकार एक-एक करके जेल की याद आती और चली जाती है।

मेरा मन कभी कभी ऐसा ऊब उठता था कि उसे समझाना कठिन हो जाता। बस असम्भव भी कहें तो आप विश्वास कर लीजिये।

एकरसता भयकर चीज होती है। एक ही तरह का भोजन एक ही स्थान का रहना, एक ही प्रकार के कपड़े पहनना, एक ही तरह के वायु मण्डल से साँस लेना—ऊफ्। ऊफ्॥ मन में शान्ति हो तो कैसे, शरीर को सुख मिले तो कैसे। यह भी कोई जीवन है।

दिनेश का एक पत्र आया तिकड़म से। पत्र लम्बा था। दिन में चपरासी पर से छिपाकर पढ़ा। लिखा था—

"पत्र पढ़कर घबरा न जाना। कहे देता हूँ। पहिले हृदय मजबूत करलो तब आगे की सतरों को टटोलना।"

मैं तो इस चेतावनी से घबरा उठा। जल्दी-जल्दी पढ़ने लगा।

'तुम्हारे पिता जी का शरीरान्त हो गया। छन्ना अपनी लड़की के यहाँ चली गयी। नौरतनमल के साथ तुम्हारे पिता जी का जो मुकदमा चल रहा था उसी ने तुम्हारे परिवार का नाश कर दिया। तुम्हारे पिता जी सीधे-साधे जीव थे। ८००) उन्होंने गाँव के दो चार गवाह रख कर उसे दिये थे, पर इस महाजन ने हैंडनोटी पर दस्तखत करा ली। गवाह भी कचहरी में जाकर मुकर

गये। फलत. तुम्हारे पिता जी के खिलाफ मोवरनसाव की डिग्री हो गयी २५००) की। जमीन्दार ने मोवरन की डिक्री खरीद कर तुम्हारे खेतो पर कब्जा कर लिया। तुम्हारे पिता जी गये, मिन्नते की, पर कोई फल नहीं हुआ। एक दिन अचानक सरकारी प्यादो को साथ लेकर जमीन्दार के आदमी आये खेतो पर अपना 'झडा' फहराने। तुम्हारे पिता जी के लिये यह एक प्रबल आघात सिद्ध हुआ। एक तो तुम उनसे अलग हो गये, उस पर यह प्रहार! वे हाय,करके जो खाट पर गिरे सो पॉचवे दिन गॉव वालो ने उनका मृत्युसंवाद ही सुना!

आज तुम पितृहीन हो—मैं तुम्हे किन शब्दो मे सान्त्वना दूं।

इस पत्र ने मुझे ऐसा झकझोर दिया कि मै चक्की छोड कर अलग खडा हो गया। आँखो के नीचे अन्धकार-सा छा गया।

मै देखता हूँ कि मेरे भाग्य मे कभी भी सुख की नींद सोना लिखा ही नहीं है। जन्म से लेकर आज तक विडम्बना ही मेरी सहचरी रही है, कष्ट ही मेरा अपना रहा है, विपदा ने ही साथ दिया है। मेरा जीवन आकाश मे उडते हुए एक वायुयान की तरह है, जिसके पाइलट ने ऊपर ही आत्म-हत्या कर ली हो। उस वायुयान के भविष्य के विषय मे कोई क्या सोच सकता है। वह नाक की सीध पर कब तक उडता जायगा, कहाँ उसकी गति का अन्त होगा और किस स्थान पर गिर कर वह चकनाचूर हो जायगा, यह बतलाना असम्भव है। मै भी ऐसे ही वायुयान की तरह आज आकाश मे हाहाकार करता हुआ, वायु चीरता हुआ, मेघो को टुकडे-टुकडे करता हुआ तीर की तरह चला जा रहा हूँ, पर कब पृथिवी की कठोर छाती से टकराकर चूर चूर हो जाऊँगा यह कौन कह सकता है।

कब तक मैं आँधी के साथ आँधी बना रहूँगा यह कैसे कहा जा सकता है।

दिनेश के पत्र ने मेरे धैर्य-गढ़ पर वज्रपात का काम किया। जिस धैर्य को मैं अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में हृदय से लगा कर रखता था, जिस धैर्य को मैंने अपना सब कुछ स्वाहा करके प्राप्त किया था, जिस धैर्य का प्यार ही मेरे लिये सब कुछ था, जो रोने की अवस्था आने पर पिता बन कर, जीवन-समर में पराजित होने के अवसर में मित्र बन कर, कर्म से विमुख होते समय मन्त्री बन कर, कठिनाइयों के आने पर ईश्वर बन कर मेरा साथ देता था, वही धैर्य आज शत शत खंड होकर बिखर गया—मैं अपने पिता के चिर वियोग से जितना विकल नहीं हुआ, उतना आघात लगा मेरे हृदय में धैर्यहीन होने से। मैं दोनों हाथ उठाकर जन्मजन्मान्तर के संचित पुण्य को पुकारने लगा, अपने पापों को पुकारने लगा, पर कोई सामने न आया। चक्कीघर में मैं सिर पर हाथ रख कर बैठ गया, पैरों के नीचे से मानो धरती खिसक गयी। मेरे साथी कैदी ने कहा—"समय हो रहा है। चक्की पीस लो जल्दी।"

मैं चुप रहा। उसने झल्लाकर कहा—"अरे, कहता हूँ काम खत्म करले तब शोक मनाना, नहीं तो सिर पर जूते पड़ेंगे।"

मैंने कहा—"मैं चक्की नहीं चलाता। मुझ पर वज्रपात हुआ है और इसे चक्की की सूझी है।"

उसने कहा—"बेटा खाल खींच ली जायगी। जमादार आ रहा होगा। चिट्ठी पुर्जी देखेगा तो बेंतों से मार-मार कर हलाल कर देगा।"

मेरा ध्यान भङ्ग हुआ। मैंने पत्र उठा लिया, पर चक्की पर नहीं छुआ। शरीर ही ऐसा हो गया था कि उठ कर खड़ा

होना कठिन था। वह अकेला कैदी कितना पीसता। भारी चक्की ठहरी। जहाँ तक हो सका उसने पीसा, पर जब तोल होने लगा तो वजन पूरा नहीं हुआ। मैं सिर झुकाये खड़ा रहा। प्रश्न हुआ—'वजन पूरा क्यों नहीं होता।" जब तक मैं उत्तर देने के लिये सिर उठाऊँ तब तक तीन पाव का एक चमरौधा जूता धाँय से सिर पर पड़ा—नाक से खून की धारा बह निकली। फिर एक-दो तीन-चार। मुझे तो ऐसा लगा कि किसी मशीन में जूते बाँध दिये गये हैं—किसी मनुष्य में इतनी फुर्ती कहाँ जो प्रति मिनट दो-सौ से भी ज्यादा जूते मार सके। तीन-चार मिनट के बाद मैं मूर्छित होकर गिर पड़ा। होश में आने पर अपने आपको छोटे से तंग कमरे में क्या पिंजड़े में पाया। न रोशनी और न बिस्तर! टाँगे पसार कर सोने भर की जगह भी नहीं थी। अन्धकार में टटोलकर देखा कि मेरा सारा कपड़ा भीगा हुआ है—मैं नहीं समझता कि यह खून है या पानी। क्या चमड़े की तरह मुझे पानी में भिगो-भिगो कर कूटा गया। रात है या दिन इसका भी पता नहीं था। उठने लगा तो बड़े जोर से सिर किसी कड़ी चीज से टकरा गया—शायद छत थी। पैरों में बेड़ियाँ थीं और हाथों में झनझनाती हुई हथकड़ियाँ। सिर पर टोपी भी नहीं थी—मेरा माथा ठनका। मैंने सोचा—टोपी में ही तो था। यह एक नयी आफत सामने आयी।

मैं अपने वर्तमान जीवन से ऊब उठा था—चाहता था कोई जान लेकर भी मुझे इस आफत से छुटकारा दिला दे तो मैं उस उपकारकर्ता का चिर ऋणी ही हूँगा। भले ही वह दुष्ट विचारों से प्रेरित होकर मेरी हत्या करे। अपने जीवन के प्रति मेरा जो कुछ मोह था, आकर्षण था, अपनापन था नष्ट हो गया। मैं चाहता था कि एक बार खुली हवा में साँस

लूँ, एक बार तारों से भरे हुए आकाश के नीचे मैं खड़ा होऊँ, एक बार अपनी इच्छा से दो-चार कदम चलूँ—चाहे मेरा पथ पाप का ही क्यों न हो। मेरा मन विकल था मुझ पर हुकूमत करने के लिये और मैं विकल था मन की हुकूमत मानने के लिये। स्वाधीनता के माने क्या है। सभी पराधीनों के हृदय में एक आग जलती रहती है मुक्ति की, छुटकारा की, आजादी की। मैं सोचता हूँ कि सरकारी हुकूमतों से छूट कर मनुष्य अपने मन की हुकूमतों में रहने को ही आजादी कहता है। मैं व्याकुल हो गया—पिता जी के निधन के समाचार ने मेरी उस व्याकुलता में बल उत्पन्न कर दिया जिसके उकसाने से मैं जेल जीवन को बुरा समझने लगा था।

जेल के नियम के अनुसार अभी मैं तीन मास पत्र पाने का अधिकारी नहीं था—घरवाले खबर दें तो कैसे—यदि दिनेश का पत्र नहीं आता तो शायद मैं २।३ मास अपने पिता जी की मृत्यु का संवाद न सुनता—मुलाकात भी बन्द करा दी गयी थी। बाहर की खबर जानने का कोई उपाय नहीं था।

---

(२८)

जब जेल सुपरिंटेन्डेन्ट के सामने मुझे खड़ा किया गया तो मुझे विश्वास हो गया कि मैं एक बड़े भारी इञ्जन के सामने खड़ा हूँ। यदि धक्-धक् कर के धीरे-धीरे लाइन पर चलने वाले ऐसे इञ्जन के सामने किसी को मुँह बाँध कर और हाथ बाँध कर के रख दें तो उसकी मनोदशा का वर्णन करना मेरा काम न हो कर किसी रस-सिद्ध कवि का काम हो सकता है। जाने दीजिये—मुझे जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट के सामने खड़ा

किया गया। मैंने इस नये साहब को नहीं देखा था। नाटा ठिगना कद। खूब फूले हुए गाल, नीली-नीली आँखे भीतर घुसी हुई। दो-चार हिन्दी गालियों का भी अभ्यास था।

जब साहब जेल मे आये तो सर्वत्र भूकम्प-सा आ गया। कैदी, वार्डर, बड़े बाबू, छोटे बाबू, सभी तितली की तरह थिरकने लगे। हवा मे गजब का आतङ्क भर गया, अजीब सनसनी भर गयी। आगे-आगे दो-चार वार्डर दौड़े आ रहे है और पीछे पीछे जेलर, नायब जेलर वगैरह-वगैरह और बीच मे बड़े साहब फौजी चाल से चल रहे हैं—अजब नज्जारा है। जेल मे तूफान-सा आ गया है—हलचल मच गयी है—मन ही मन सभी राम या रहीम से दया भीख माँग रहे है। बड़े जमादार ने सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब से अपने गम का परिचय दिया—

साला कामचोर। पूरा हुज्जती। हुक्म नहीं मानता। चोट्टा। साथी कैदी की रोटी चुरा कर खा जाता है। काम पूरा नहीं करता—कल पूरा आँटा नही पीसा। पूछने पर एक कैदी को मार बैठा।"

'किधर है रे टेकना चमार।'

कतार से निकल कर टेकना चमार हाजिर हुआ। मैंने आज से पहिले सूरत नहीं देखी थी सो बात नहीं है। मेरे साथ यही चक्की घर में था।

हेड जमादार—'कहाँ मारा ?'

टेकना अपना दाहिना गाल दिखला कर—"यहाँ पर मारा सरकार।"

हुक्म हुआ जाओ। टेकना कतार मे चला गया। मै सोच रहा था कि अब चिट्ठी की चर्चा चलेगी पर न जाने क्यों उस प्रसग को ही दबा दिया गया। बड़े साहब के कानो तक चिट्ठी

की बात पहुँचाना एक प्रकार से जेल के स्टाफ की बदनामी थी—कैसे चिट्ठी आयी, किसने लायी, जाँच पड़ताल का परिणाम जेलवालों के ही प्रतिकूल प्रकट होता तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

मेरी हिस्ट्री टिकट माँगी गयी। हुक्म हुआ—एक सप्ताह काल कोठरी, "पेनल डायट"। मैं मन ही मन यह सोच ही रहा था कि किसी तरह मुझे एकान्त नसीब हो—मैं दो चार दिन चुपचाप पड़ा रहकर दिल और दिमाग को शान्ति देना चाहता था। मुझे इस समय शान्ति की जरूरत थी। काल-कोठरी मेरे लिये "स्वर्ग-कोठरी" प्रमाणित हुई—किसी किसी समय बुरी से बुरी चीज अपने मन को सुख पहुँचाने का कारण बन जाती है। मनुष्य अपनी अवस्था के अनुसार भली-बुरी चीजों का रूप स्थिर करता है। काल कोठरी कष्ट पहुँचाने के लिये बनाई गई थी पर आज मेरे लिये वह आनन्द की प्रतिमूर्ति बन गयी। मेरी मानसिक अवस्था ही ऐसी थी कि मैं एकान्त चाहता था। चाहे भूखा ही क्यों न रक्खा जाऊँ, पर मुझे चाहिये था एकान्त ही। मैंने बड़े साहब के कोप को उनकी उदारता के रूप में ग्रहण किया। कभी कभी अभिशाप भी वरदान बन जाता है, कभी कभी ज्वाला की बर्फ बन जाता है। मनुष्य शरीर में मन एक ऐसा तत्व है जो नरक को स्वर्ग और स्वर्ग को नरक का रूप प्रदान कर सकता है। आज मेरे मन ने नरक को स्वर्ग के रूप में ग्रहण किया। मैं कालकोठरी में भेज दिया गया।

काल कोठरी भी एक मजेदार स्थान है। आसमान का एक छोटा-सा कोना भी यहाँ से दिखलाई नहीं पड़ता। प्रकाश भी इतना नहीं कि जिससे शरीर में स्फूर्ति का संचार हो। नमी और दुर्गन्ध। मच्छरों की तो बात ही न पूछिये। करीब एक

सप्ताह तक न तो किसी प्रकार की आवाज ही सुन पड़ी और न किसी की सूरत ही नजर आयी।

पड़ा-पड़ा ऐसा जान पड़ता था कि मेरे हृदय की—धड़कन की आवाज मेरे कानों को सुनाई देती है। इस गम्भीर सन्नाटे ने मुझे और भी अधमरा कर दिया। यद्यपि मैं पहिले इस एकान्त कोठरी को मन ही मन पसन्द करता था। पर एक दिन के बाद मैंने अपने आपको और थका हुआ पाया—यह वह सजा थी जिससे कैदी को प्रत्यक्ष रूप से कोई शारीरिक पीड़ा का अनुभव तो न हो पर भीतर ही भीतर एक मर्मान्तक विकलता पैदा हो जाय। यह एक मनोविज्ञानिक दण्ड था जिसे मैं २।३ दिनों से अधिक भोग नहीं सका—घबरा गया। ऐसा विश्वास हो गया कि मेरे समस्त शरीर का रक्त जम कर सिर पर चढ़ गया है और—और मैं मानो मर रहा हूँ। धीरे-धीरे मैं मूर्छित-सा होने लगा। मैं औंधे मुँह गिरा। कुछ देर तो मुझे केवल समुद्र का गर्जन-सा शब्द सुनाई पड़ता रहा और इसके बाद मैंने अनुभव किया कि छोटा-सा 'सेल' धुँधले प्रकाश में पिशाच की तरह हँस रहा है। इसी प्रकाश में मैंने देखा कि दो-तीन मूर्तियाँ चारों ओर घूम रही हैं। एक के गले में रस्सी बँधी हुई है। मुँह से रक्त की धारा बह रही है, आँखों में भी खून की बूँदें टपक रही हैं। आँखें निकल कर बाहर गालों पर—लटक रही हैं। जीभ ऐंठी हुई और बाहर निकली हुई है। एक मूर्ति थी पीले रंग की सूखी हुई। हड्डियों का ढाँचा मात्र—खाँस रही थी। मुँह से बदबू निकल रही थी। इस तरह की ३।४ मूर्तियाँ तो धुँधले प्रकाश में दिख गयीं और [illegible] मेरे सामने खड़ी हो गयीं—मैं मानो सपना देख रहा था। एक मूर्ति जिसके रस्सी बँधी हुई थी—बोली—'देख, मेरी ओर देख मैं पलटू राम हूँ—देख इस रस्सी की ओर! फाँसी पा

गया—खून किया था। मेरे दामन में रक्त के गरमागरम धब्बे अब भी लगे हुए हैं—फाँसी! हाँ, फाँसी—बस, एक बार, बस एक बार फाँसी, फिर सदा के लिये निडर निश्चिन्त हैं। मैंने खून किया था, बदल को तुम जानते हो—वह भी था। उस मारवाडी का क्या नाम है? भूल गया हूँ—वही जो तुम्हारे होटल में जाता था। माल तो काफी मिला पर अन्त में पकड गया। बडी पीडा—बडा कष्ट—खून और फाँसी—'

मैं चीख उठा—बेडियाँ झनझना उठीं। आँखें खोल कर देखा तो घोर अन्धकार—बाहर साय-साय हवा चल रही थी। जेल की चहल-पहल से दूर मानों अन्धेरे कूएँ में मैं ढकेल दिया गया होऊँ। यह एक विचित्र सपना था। कहाँ पल्टू और कहाँ धरणीधर मारवाडी! कुछ भी हो, इस एकान्त गुफा में कुछ मनोरंजन तो हुआ—स्वप्न ही सही, विभीषिका ही सही। मैं तो इसलिये प्रसन्न हुआ कि आज पाँचवें दिन मनुष्य की सूरत देखने को मिली—वह सूरत प्रेत की हो या पिशाच की, देवता की हो या शैतान की। आँखों का मन बड़ा ही चपल होता है। वह उन्हें चैन लेने नहीं देता—कहता है—उधर देखो, इधर देखो, इधर देखो, उधर देखो! जहाँ आँखों को मन बहलाने का साधन नहीं मिला वहाँ उनकी व्याकुलता की हद नहीं रह जाती। मेरी आँखों ने स्वप्न देख कर ही तृप्ति लाभ किया—कैसी विकलता थी, कैसी बेबसी थी!

लित विक्षित रूप मुझे जेल मे देखलाई पड़ता था, पर जब तनहाई की अवस्था में कैद किया गया तो कैदियो से भरे हुए 'वार्ड' की ही स्मृति मुझे तड़पाने लगी। जिस स्थान से मैं पहिले ऊब उठा था, वही स्थान एक बार फिर मुझे प्रिय जान पडने लगा—सोचने लगा, बला से गालियाँ सुनता था, पिटा जाता जाता था, पर रहता था, कितने आनन्द मे। दो-चार साथियों के साथ गप्पें होती थीं, कोई गाता था, कोई रोता था, कोई किस्से-लतीफे सुनाता था—यह तनहाई तो पागल बना डालने के लिये है।

भोजन आया और भोजन देनेवाले ने चुपके से एक पत्र भी दे दिया और कहा—"पढ़ कर इस खत को खा जाना। एक टुकड़ा कागज भी न रहे—नहीं तो आफत है।"

मेरा कलेजा धड़कने लगा। किसका पत्र है, क्या लिखा है—? काँपते हुए हाथों से खोला। साकेतिक लिपि मे दिनेश लिख रहा था—

"मैं फरार हूँ। होटल में प्रभुदयाल पर छुरे से आक्रमण किया गया। एक स्त्री का मामला था—बद्दल की शैतानी थी। मेला से भुलावा देकर एक लडकी लायी गयी। अच्छी स्वासी गोरी और भोलीभाली। मैंने खुद देखा था—बहुत ही हसीन थी। बद्दल ने तो पहिले उसे पलटू की आंखों से बचाना चाहा, पर वह असफल हुआ। पलटू और बद्दल मे गजमच्छप सग्राम हुआ, अन्त मे पलटू के पक्ष में विजयश्री रही। सिर के बाल पकड कर घसीटते हुए पलटू उस लडकी को अपने घर मे ले गये। एक तो ६।७ दिनों से उस अभागी युवती ने उपवास किया था, रात-दिन रोते रहने के कारण वह अधमरी सी हो रही थी। पलटू ने जो एक नर पशु है, उसे अपने अनुकूल बनाने के लिये खूब पीटा था, लोहे की

मलाख. से आग मे लाल करके, उसकी पीठ दागी गयी थी और हाथ के नाखूनों के नीचे आलपीनें ठोकी गयी थीं। वह कैसे जी रही थी, यही आश्चर्य की बात है। खैर, पलटू घसीटते हुए अपने घर मे ले आये और बदल पेंच ताव खाकर चुप लगा गया। पलटू ने उस अभागी के साथ कैसा व्यवहार किया यह बतलाना असम्भव है। हृदय दहल जाता है—सोच कर।

अन्त में प्रभुदयाल के हाथ वह दो सौ रुपये मे बेच डाली गयी। सुना है कि प्रभुदयाल के कहने पर बदल ने यह कर्म किया था। प्रभुदयाल ने उसे एक किराये के घर मे रक्खा—यत्न और दवा से वह तीन-चार मास मे आराम हुई। सारा शरीर जख्मों से भरा हुआ था, मुँह से खून निकल पड़ता था—खाँसते ही।

बदल को जब यह समाचार मिला तो वह गुर्रा उठा और इस घात में रहने लगा कि प्रभुदयाल और उस छोकरी को एक ही समय मौत के घाट उतार दिया जाय। दो तीन दिनों के बाद होटल में उसने प्रभुदयाल पर आक्रमण कर दिया। मैं भी दुर्घटना के समय उपस्थित था—प्रभुदयाल की सूरत देखते ही मेरा हृदय भी प्रतिहिंसा की आग से झुलस गया। बदल को जोश मे आकर मैंने कहा—"ले जाने न पावे।" प्रभुदयाल ने लौटकर मेरी ओर देखा और इतने ही में बदल ने आक्रमण कर दिया। चोट खा कर फर्श पर प्रभुदयाल लोटने लगा और हम चलते बने। रात अधिक बीत गयी थी—भीड़ भी ज्यादा नहीं थी। भाग चले पर प्रभुदयाल ने अपने अन्तिम बयान मे केवल मेरा ही नाम लिया। बदल राम का चर्चा ही उसने नहीं की। पता लगते ही मैं भाग निकला। अब तक पुलिस ने छापा मार कर मेरे घर से बहुत सी पुस्तके और

कुछ नक्शे वगैरह ले गयी—कुछ भयंकर अस्त्र भी पुलिस के हाथ लगे और एक गिरोह का ही उसने पता लगा लिया। अब मेरे पीछे पुलिस पड़ी हुई है। मैं २ दिनों से भागा हुआ हूँ और दूसरे साथी भी भाग खड़े हुए हैं। कई डकैती और खून का प्रमाण पुलिस को मेरे घर में मिला है। होटल में ताले डाल दिये गये हैं—मैनेजर बेचारा हवालात में है।

"यह तो हुआ, पर मैं व्यवस्था कर रहा हूँ, तुम भी बाहर चले आओ—कल या परसों एक लड़का तुम्हारे पास आयेगा तो उससे सभी बातों का पता चलेगा।"

पत्र पढ़कर मैं सन्नाटे में आ गया—अरे प्रभुदयाल भागा गया। वह मर गया या अभी जीवित है, यह दिनेश ने कुछ नहीं लिखा। वह लड़की कहाँ की थी यह भी पता नहीं। दिनेश ऐसा अधूरा पत्र क्यों लिखता है। जब लिखने ही बैठा तो साफ-साफ लिखना चाहिये। और—और परसों दिनेश का दूत मेरे पास कैसे पहुँच जायगा। खैर, देखना चाहिये। क्या रहस्य है।

इसी उधेड़बुन में एक दिन समाप्त हो गया और दूसरे दिन मैं इस गुफा से बाहर निकाला गया। बाहर निकलकर मैंने अकथनीय स्फूर्ति का अनुभव किया। ताजी हवा, सुनहली धूप और नीले आकाश ने मेरे मन को मानो आनन्द-विभोर कर दिया। मैं प्रसन्नता के मारे थिरक उठा। ऐसा जी चाहता था कि प्राणों की प्रत्येक पंखुड़ी खोलकर स्वच्छ वायु, धूप और आकाश को किसी प्रकार अपने आप में एकाकार कर लूँ। जेल के हरे-भरे छोटे से मैदान में स्वच्छन्द भाव से दौड़ने और प्रत्येक वृक्ष को चूम लेने का जी चाहता था। यहाँ तक कि हेड जमादार की काल जैसी सूरत और छुरी-सी दाढ़ी वाला भी मुझे दर्शनीय जान पड़ने लगा। बहुत दिनों पर तो

मनुष्य की सूरत देखी थी मैंने—! भूखी आँखों ने किसी तरह अपने आपको तृप्त कर लिया।

---

(२६)

परसों भी आज बनकर आ गया। मैं प्रत्येक नूतन कैदी को गौर से देखने लगा—सम्भवत इन्हीं में कोई दिनेश का दूत न हो। दिन भर बड़ी बेकली मे व्यतीत हुई। मुझे और प्रकाश को मजदूरी का काम मिला—सुर्खी, चूना ढोने का। जेल के भीतर ही एक नयी इमारत बन रही थी। सभ्यता ने जहाँ प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति का चमत्कार दिखलाया है वहाँ जेलों की भी आशातीत वृद्धि हुई है। काबुल या नेपाल जैसे एक राज्य में जितने मनुष्यों का निवास है सम्भवत: उतने मनुष्य या उससे कम हमारे यहाँ जेलों मे ही बने रहते हैं।

मैंने अनुभव किया है कि जेलों में अपराधी सुधार की दृष्टि से नहीं भेजे जाते। बल्कि मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि बदले की भावना ही अधिक काम करती है। प्रकाश जो एक सीधा-सादा लड़का था, केवल झूठी गवाहियों के बल पर जेल भेजा गया और यहाँ उसे इस कदर पीटा गया कि वह अपनी बची-खुची मनुष्यता को भी अपने स्वास्थ्य के साथ खो बैठा। वर्षों के जलील जीवन से हम कैदियों का स्वाभिमान लोप हो जाता है और जब स्वाभिमान ही शेष नहीं रहता तो फिर गन्दे कामों की ओर से हमे कौन हटा सकता है।

प्रकाश—सुन्दर, चपल, नवयुवक, अध्ययन-शील, गम्भीर और निडर प्रकाश—आज चोरी का अभ्यास कर रहा है। उसके दोनो श्वेत गुर उसे गले मे रुपये रखने का

अभ्यास करा रहे हैं। दो गोल-गोल गोलियाँ शायद राँगे की—न जाने किस तिकड़म से मँगवाई गई हैं। प्रकाश मुँह मे रुपये रखने का घर बना रहा है। क्या जेल चोरी-पाकटमारी सिखलाने की पाठशाला है ? एक दिन प्रकाश ने मुझे बतलाया कि "अमुक व्यक्ति के पास ऐसी चीज है कि ।" मैंने उसका मुँह बन्द कर दिया—"अबे चुप ! फाँसी पड़ेगा क्या ?" प्रकाश बोला—"नहीं भैया, वह बड़ा बहादुर आदमी है। वह कहता है कि चन्द दिनों मे ही हम जेल से बाहर हो जायँगे। जेल मे कष्ट पहुँचाने के कारण जेलर हम से क्षमा माँगने आवेंगे। वह पागल नहीं है। गीता के श्लोक पढ़ता है और वार्डरों पर हुकूमतें करता रहता है। अधिक समय वह अकेले मे व्यतीत करता है। तुम देखते नहीं उसके जेल के दरवाजे पर बन्दूक से पहरा पड़ता है।"

मैंने कहा—"तो तुमने कैसे उससे बातें की ?"

प्रकाश—"मन्तरी के सामने। वह कल न जाने किधर भेज दिया गया। होता तो तुम्हें भी दिखला देता।"

प्रकाश और महा दब्बू गोविन्द—दोनों धीरे-धीरे गुमराह होते हुए दिखलाई पड़ते थे। डकैतों के साथ रहने से इन्हें अपनी स्वाभाविकता से परे हटना पड़ा। गरीबी के कारण जिसका जी ऊब उठा है वह धन की ओर तीर की तरह दौड़ता हो भले ही, उसकी इस चेष्टा का परिणाम दु[illegible]न्त होता है।

जो हो, एक दिन बाद मैंने हठात् एक ऐसे लड़के को देखा जो सड़कों पर आवारों की तरह घूमता हुआ दिखलाई पड़ता था। मैं समझता था कि वह या तो पाकिटमार है या "कोकिन" फरोश ! जेल मे उसकी सूरत देखते ही मैं चौंक उठा। वह धीरे-धीरे मेरे पास आया और हाथ के इशारे से दूसरी ओर ले गया। जिस ओर फाँसी-घर था हम धीरे धीरे टहलते हुए

चले गये। मेरा हृदय धड़क रहा था। इधर-उधर देख कर वह लडका बोला—दिनेश बाबू फरार हैं। खून के अपराधी हैं। प्रभुदयाल कभी मरा नहीं है। जो हो पर उसका जीवन कठिन है। वह लडकी भी मार डाली गयी। बद्दल ने खून कर दिया। चौवीस घण्टे के अन्दर दो-दो खून! रायसाहब दिनेश की खोज मे व्याकुल है। उनके घर पर पुलिस का एक दल भेजा गया है पर किसका मजाल जो दिनेश की छाया भी छू ले।" इतना कहते-कहते वह लड़का वीर दर्प से तन कर खडा हो गया।

मैंने पूछा—"अरे, वह लडकी कहाँ की थी—कुछ है मालूम ?"

"नहीं भैया"—वह लडका बोला—"पुलिस ने जब बयान लेना चाहा तो वह बोली कि मैं अपना परिचय देकर अपने पितृकुल या पतिकुल के मुँह मे कालिख लगाना नहीं चाहती। आप इतना ही सुन ले कि मुझे उसी व्यक्ति ने मारा है जो मेले से मुझे भगा लाया था—मैं किसी का नाम नहीं जानती।

बस, इतना ही बयान दिया उसने। ऐसी नेक औरत—! भैया, ठीक तुम्हारी ही तरह गोरी-गोरी थी। क्या रूप पाया था उसने। जान पडती थी जैसे रानी हो। भरा हुआ शरीर, छलकता हुआ पगला यौवन!" मैं तन्मय हो कर उस छोकड़े की बातें सुन रहा था। कुछ देर ठहर कर वह बोला—"सुनो भैया, मै तुम से एक बात कहने के लिये ही आया हूँ। जानते हो मुझे जान-बूझ कर चोवेन बेचते-बेचते अपने को गिरफ्तार करवा देना पडा। अपराध स्वीकार करने पर एक मास की सजा हुई—तब तुम्हारे पास आ सका। बिना मरे पितृलोक मे प्रवेश असम्भव है।"

हाँ, तो दिनेश को यह पक्का पता चला है कि अगले

अभ्यास करा रहे हैं। दो गोल-गोल गोलियाँ शायद राँगे की— न जाने किस तिकड़म से मँगवाई गई है। प्रकाश मुँह मे रुपये रखने का घर बना रहा है। क्या जेल चोरी-पाकटमारी सिखलाने की पाठशाला है? एक दिन प्रकाश ने मुझे बतलाया कि "अमुक व्यक्ति के पास ऐसी चीज है कि · ।" मैंने उसका मुँह बन्द कर दिया—"अबे चुप्प! फाँसी पड़ेगा क्या?" प्रकाश बोला—"नहीं भैया, वह बड़ा बहादुर आदमी है। वह कहता है कि चन्द दिनों मे ही हम जेल से बाहर हो जायँगे। जेल में कष्ट पहुँचाने के कारण जेलर हम से क्षमा माँगने आवेंगे। वह पागल नहीं है। गीता के श्लोक पढ़ता है और वार्डरों पर हुकूमतें करता रहता है। अधिक समय वह अकेले मे व्यतीत करता है। तुम देखते नहीं उसके जेल के दरवाजे पर बन्दूक से पहरा पड़ता है।"

मैंने कहा—"तो तुमने कैसे उससे बातें की?"

प्रकाश—"सन्तरी के सामने। वह कल न जाने किधर भेज दिया गया। होता तो तुम्हें भी दिखला देता।"

प्रकाश और महा दब्बू गोबिन्द—दोनो धीरे-धीरे गुमराह होते हुए दिखलाई पड़ते थे। डकैतों के साथ रहने से इन्हें अपनी स्वाभाविकता से परे हटना पड़ा। गरीबी के कारण जिसका जी ऊब उठा है वह धन की ओर तीर की तरह दौड़ता हो भले ही, उसकी इस चेष्टा का परिणाम दु खान्त होता है।

जो हो, एक दिन बाद मैंने हठात् एक ऐसे लड़के को देखा जो सड़कों पर आवारों की तरह घूमता हुआ दिखलाई पड़ता था। मैं समझता था कि वह या तो पाकेटमार है या "कोकेन" फरोश! जेल मे उसकी सूरत देखते ही मैं चौंक उठा। वह धीरे-धीरे मेरे पास आया और हाथ के इशारे से दूसरी ओर ले गया। जिस ओर फाँसी-घर था हम धीरे-धीरे टहलते हुए

चले गये। मेरा हृदय धडक रहा था। इधर-उधर देख कर वह लडका बोला—दिनेश बाबू फरार हैं। खून के अपराधी हैं। प्रभुदयाल कभी मरा नहीं है। जो हो पर उसका जीवन कठिन है। वह लडकी भी मार डाली गयी। बद्दल ने खून कर दिया। चौबीस घण्टे के अन्दर दो-दो खून। रायसाहब दिनेश की खोज मे व्याकुल है। उनके घर पर पुलिस का एक दल भेजा गया है पर किसका मजाल जो दिनेश की छाया भी छू ले।" इतना कहते-कहते वह लड़का वीर दर्प से तन कर खड़ा हो गया।

मैंने पूछा—"अरे, वह लडकी कहाँ की थी—कुछ है मालूम ?"

"नहीं भैया"—वह लडका बोला— "पुलिस ने जब बयान लेना चाहा तो वह बोली कि मैं अपना परिचय देकर अपने पितृकुल या पतिकुल के मुँह मे कालिख लगाना नहीं चाहती। आप इतना ही सुन ले कि मुझे उसी व्यक्ति ने मारा है जो मेले से मुझे भगा लाया था—मैं किसी का नाम नहीं जानती। बस, इतना ही बयान दिया उसने। ऐसी नेक औरत—! भैया, ठीक तुम्हारी ही तरह गोरी-गोरी थी। क्या रूप पाया था उसने। जान पडती थी जैसे रानी हो। भरा हुआ शरीर, छलकता हुआ पगला यौवन।" मैं तन्मय हो कर उस छोकड़े की बाते सुन रहा था। कुछ देर ठहर कर वह बोला—"सुनो भैया, मै तुम से एक बात कहने के लिये ही आया हूँ। जानते हो मुझे जान बूझ कर कोकेन बेचते-बेचते अपने को गिरफ्तार करवा देना पडा। अपराध स्वीकार करने पर एक मास की सजा हुई—तब तुम्हारे पास आ सका। बिना मरे पितृलोक के सवेरा असम्भव है।"

हाँ, तो दिनेश को यह पक्का पता चला है कि अगले

महीने की तीसरी तारीख को तीन कैदियों के साथ तुम्हारा तबादला दूसरी जेल में हो जायगा। दिनेश की यह इच्छा है कि तुमने २, ३॥ साल तक जेल की हवा खा ली। अपराध के अनुपात से १०, १२ साल की सजा बहुत अधिक है इसीलिये अब तुम जेल से छुटकारा पाने के अधिकारी हो।"

मैं बोला—"क्या ऐसी भी कोई बात है।"

उसने कहा—"नहीं जी! हम कानून-वानून नहीं जानते। हमारे कानून अलग छपते हैं। मैं क्या कह रहा था—हाँ, तो तुम्हें जेल से छूट जाना चाहिये। सो, यह तै किया गया है कि जिस गाड़ी से तुम भेजे जाओगे, उस गाड़ी मे हमारा दल भी चलेगा और सून-सान रात को किसी जगल मे गाड़ी रोक ली जायगी तथा तुम्हें आराम से छुड़ा लिया जायगा। मोटर पहिले से प्रस्तुत रहेगी, बस नौ-दो ग्यारह!"

कितनी स्वाभाविक रीति से उस छोकड़े ने इतनी बात कह दी, मानो कबड्डी-खेलने का प्रोग्राम बना रहा हो। मैं तो यही सोच कर चकित था कि दिनेश ने इतना पता कैसे लगा दिया। १०।१२ साल तक लगातार चोर-डाकुओं का साथ करके भी मुझे यह पता नहीं लगा कि इनके संगठन की जड़ जमीन मे कहाँ तक गयी है। मैं केवल इतना ही पता लगा सका हूँ कि इस दल में ३।३ प्रकार के जीव रहते हैं। एक पढ़े लिखे बेकार—भूखों मर-मरकर वे अन्त में घृणित जीवन व्यतीत करना आरम्भ करते हैं। और दूसरे अमीरों के कुसङ्ग मे पड़कर आवारे बने हुए व्यक्ति! जैसे—मैं, दिनेश आदि। तीसरे प्रतिक्रियावादी सताये हुए किसान, मजदूर आदि, जिन्हें प्राय. जीवन की प्रत्येक घडी खून के आँसू पीकर समाप्त करने को बाध्य होना पड़ता है। किसी मानसिक झुँझलाहट को लेकर हम चोरों के या डकैतों के गिरोह मे प्रवेश

करते हैं, पर फिर जीवन का नक्शा ही बदल जाता है और चोरी डकैती करते रहना ही पसन्द करते हैं हालांकि फिर इस तरह के जीवन व्यतीत करने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। धन के लिये डाके डाले। काफी रुपये मिल भी गये। गरीबी मिट गयी पर डकैती करते रहने की जो लत लग गयी वह कब पीछे हटने देती है।

मैं कभी तो अपनी मुक्ति के विषय में सोचता था और कभी उस अभागी युवती की बात सोचता था। जो तारीख मुझे बतलायी गयी थी वह आज से १४ वें दिन पड़ती थी—चौदह साल की तरह यह १४ दिन मेरी कल्पना की आँखों के सामने फैले हुए दिखलाई पड़ते थे—मानो सहारा का रेगिस्तान।

मैं चाहता था कि प्रकाश भी मेरे साथ मुक्ति पा जाय, खुली हवा मे पहुँच जाय। पर अपने अधिकार की कोई बात नहीं थी—मैं तो यही सोचकर घबरा जाता था कि मेरी मुक्ति के लिये जो प्रयत्न किया जायगा वह कितना साहसिक और भयकर होगा। सम्भव है यदि हम इस बाजी को हार जायँ तो फिर वज्रपात ही नरसिंचे। कहीं खुलकर लड़ाई न हो जाय, दो चार खून न हो जाय।

वह छोकड़ा तितली की तरह जल्दी-जल्दी दूसरी ओर चला गया और मैं फाँसा देनेवाले चौतरे पर बैठ कर सोचने लगा।

इधर कई दिनों से कड़ाके की सर्दी पड़ रही है। आज रविवार होने के कारण छुट्टी है। मैं देख रहा हूँ कि जेल का मैदान हरी दूबों से भरा हुआ है। ऊँची ऊँची इमारतों के भीतर अनेक अभागे इधर उधर घूम रहे हैं। वार्डर वगैरह भी बैठे धूप खा रहे हैं और सर्वत्र एक प्रकार की शान्ति है। किसी का कोई अपना मिलने आया है—देखता हूँ एक बैठी तड़पना

हुआ जेल के फाटक की ओर जाता है और दूसरा अपनी अतृप्त मुलाकात समाप्त किये रोता—उदास मन लिये लौटता है।

मुलाकात करने के पहिले एक बन्दी के हृदय मे जो आग धधकती होती है, वह मुलाकात करने के बाद बुझने के स्थान पर और भडक उठती है।

मेरे पास आकर एक कैदी बैठ गया—थका-सा हारा-सा। वह अपनी स्त्री और बच्चे से मुलाकात करके आया था। उसने रोते हुए कहा—"बाबू जी, अब फिर मैं मुलाकात करने नहीं जाऊँगा। गरीब हूँ। मेरी स्त्री और लड़के के आने जाने मे १६) खर्च पडेंगे। किसी तरह बेचारी आई। पिछली बार पैसे के अभाव से आ न सकी--इस बार आयी। हाय, क्या यह मुलाकात है। इधर एक खिडकी से पाँच छ कैदी बन्दरों की तरह चिपके हुए है और बाहर चालिस-पचास आदमी एक साथ अपने अपने केदी भाई से बोल रहे हैं। ५ मिनट का समय एक दो शब्द सुनने या बोलने के साथ ही समाप्त हो हो जाता है। धक्कम-धक्का मे मेरी स्त्री दूर ही खडी रही। मैंने ही चिल्लाकर कहा—'वहीं ठहरो। मैं सकुशल हूँ। फिर मुलाकात करने न आना। वह बेचारी न जाने क्या बोलना चाहती थी कि एक लम्बे से आदमी उसके सामने आकर खडे हो गये। जब तक वे सज्जन कुलकलक हटे हटे तब तक मुलाकात का समय समाप्त। यह कैसी विडम्बना है। मैं समझता हूँ कि 'मुलाकात' के नियम भी कैदी को सताने के ही ख्याल से बनाये गये हैं।

एक बार प्रभुदयाल आया था। जेलर के कमरे मे—शायद विशेप प्रबन्ध किया गया होगा। फिर एक—दो बार पिता जी आये। मैंने मिलने से इकार कर दिया। मैं नहीं चाहता कि

दो चार मिन्टों के लिये मुलाकात करके हफ्तों महीनों हृदय को तड़पने के लिये निर्जनता की गोद में छोड़ दूँ। प्रभुदयाल के जाने के बाद मैं कितना रोया, कितना व्याकुल हुआ, कितनी बेकली से दिन गुजारे, यह कोई मेरे हृदय से पूछ सकता है। मैं दूसरी मुलाकात के लिये हिम्मत ही नहीं कर सका—फलत मुझे मुलाकात करने से इंकार कर देना पड़ा। यह मेरी कमजोरी थी। जेल जीवन की कटुता का ध्यान जब-जब मेरे हृदय मे आता है, मैं सिहर उठता हूँ। मै देखता हूँ कि मेरे अनेक साथी जो पहिले पाप से, कष्ट से, धर्म से ईश्वर से डरते थे, क्षमा, शान्ति आदि को पसन्द करते थे, वे जेल के कोड़े खा लेने के बाद उद्धत, निर्दय, दु साहसी, खूँख्वार बन बैठे हैं। जेल की हवा ने उनके भीतर के रहे सहे थोड़े से सुगुणों को भी उड़ा दिया, तितर-बितर कर दिया। साल-दो साल जलील जीवन व्यतीत कर जब वे जेल से निकले तो पूरे नरपशु बनकर, पूरे कमीना बन कर!

---

(३०)

मै अपने विषय मे जब सोचने बैठता हूँ तो मेरे सामने ऐसी अनेक मूर्तियाँ खड़ी हो जाती हैं और ऐसी अनेक घटनाये उपस्थित हो जाती हैं कि जिन्हें बाद देकर आगे विचार करना कठिन हो जाता है। रायसाहब रामप्रसाद को ही लीजिये। एक सीधा सादा, पुराने तरीके के, धर्मी, ईमानदार, लम्पट, मनहूस, कमीना आदमी है। सद्गुणों और दुर्गुणों के सम्मिश्रण से रायसाहब एक विचित्र मनुष्य के रूप में संसार में विचरण ही नहीं कर रहे हैं, बल्कि एक समाज विशेष का प्रतिनिधित्व

घर रहे हैं। वह समाज है, अमीरों का समाज जिसे इस बात का गुमान है कि वह उन करोड़ों मनुष्यों से अधिक सुसंस्कृत हैं जो गरीबी की मार से अधमरे हो रहे हैं। अमीरी यदि सुसंस्कार की जननी है और गरीबी यदि समस्त अवगुणों की जड़ है तो मैं कहूँगा कि शराब और जुआखाने के अनेक अध्यक्ष भी सुसस्कृत है जो लाखों कमाते है, औरतों और बच्चियों को फुसला कर उनका जीवन नष्ट करनेवाले भी सुसस्कृत हैं। मैं इस प्रश्न पर बहस करना नहीं चाहा, पर मैं देखता हूँ कि खुद मेरा ही जीवन आज जो मटियामेट हो चुका है, उसका कारणरूप कौन है। क्या मैंने अपनी इच्छा से पापो की ओर कदम बढ़ाया है। क्या दिनेश ने स्वेच्छया नरक की आग को भड़काया है या और दूसरे गुमराह साथी जान-बूझकर सुख-शान्ति के शत्रु बने बैठे हैं। हजारो की तादाद मे जो कालेपानी और फाँसी की ओर खिसक रहे हैं, उनमे कितने ऐसे हैं, जिनके जीवन का इतिहास अत्याचारों और विपदाओं का इतिहास नहीं कहा जा सकता।

खैर, मैं नहीं चाहता था कि दिनेश खून के जुर्म मे फरार हो और प्रभुदयाल मृत्यु के द्वार पर खड़ा हो। प्रभुदयाल अपने भाई से एक दम भिन्न है। प्रभुदयाल का बड़ा भाई भी आवारा है, पर वह अपने पिता की तरह ही आवारा है। जो कुछ उसने अपने घर मे सीखा, वह आवारापन के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है। सभाओ मे लम्बे-लम्बे लेक्चर झाड कर सदाचार की दोहाई देनेवालों के निजी जीवन को मैं अत्यन्त निकट से देख चुका हूँ और देख चुका हूँ, उन धर्मध्वजियो को जो बात-बात मे हरि स्मरण करते रहते हैं। ईश्वर को भी अपने पाप छिपाने के साधन बनाने वाले पुरुषपुगवों को देख लेने के बाद मैंने यही सोचा कि ईश्वर एक उपयोगी वस्तु है। इस

जन्म और पर जन्म में एक प्रकार से ही वह संसार के पतितों की रक्षा करता है। दान देने वाले और धर्म-कर्म के बड़े-बड़े उत्सवों मे सोत्साह भाग लेने वाले जिन जिन अमीरो को मैंने निकट से देखा है उनमे से अधिकांश मुझे प्रवंचक ही जँचे। मैं एक प्रकार से ससार से ऐसा ऊब उठा था कि यदि मेरा वश चलता तो मैं क्षण भर मे ही महाप्रलय उपस्थित कर देता। पल भर मे ही विधाता का यह प्रपच जाल तोड-फोड़कर समाप्त कर देता। मैं जेल से छूटकर या भागकर समाज मे रहना नहीं चाहता था। मैं नहीं चाहता था कि अपने जीवन का अन्त मैं उस समाज का एक सदस्य रहते हुए होने दूं जिसने मनुष्यता के स्थान पर पशुता को, सत्य के स्थान पर प्रवचना को, धर्म के स्थान पर अनाचार को, ईश्वर के स्थान पर शैतान को प्रतिष्ठित किया है।

मेरी आत्मा के भीतर नरक की आग धधक रही थी और मैं चाहता था कि जेल मे ही अपने जलील जीवन का खात्मा हो जाने दूं। यहाँ जितने कैदी हैं उनमे अधिकांश छिपे हुए नहीं स्पष्ट रूप मे हैं। चोर-चोर के रूप मे यहाँ है, खूनी-खूनी के रूप में, पापी-पापी के रूप मे, डकैत डकैत के रूप मे, धोखेबाज-धोखेबाज के ही रूप मे यहाँ बन्द हैं—सजा भोग रहा है। और जेल से बाहर—? मत पूछिये, वहाँ तो यह पहचानना कठिन हो जाता है कौन कैसा है। किस मोटर पर खूनी जा रहा है और किसी सोने-चाँदी की दुकान पर दगाबाज बैठा हुआ है यह बतलाना कठिन है। किस मन्दिर मे छापा तिलक वाला कौन पाजी है यह भी आप पता लगा नहीं सकते। ऐसे बहुरूपिया समाज मे कोई रहकर क्या करे?

एक बार तो जी मे आया कि दिनेश को अपने विचार लिख दूं—उसे साफ शब्दों मे बतला दूं कि मैं जेल मे ही

मर जाना चाहता हूँ। मैं नहीं चाहता कि छद्मभेष धारी पापी मेरी मृत देह का स्पर्श करें। फिर तत्काल मन ने पहलू बदल दिया। जेल की हवा ने मेरे मन को इतना विषाक्त बना दिया था कि मैं किसी तरह भी इसके बाहर निकल भागने के लिये उद्यत था। मैं जानता था कि मेरा पलायन मेरे जीवन को कितना कटकाकीर्ण बना डालेगा, पर यों भी तो मैंने समाज से अपनी प्रतिष्ठा गँवा डाली थी। वर्षों जेल की चक्कियाँ चला कर मैं बाहर भी निकलता तो मेरे कलंकित मुँह को देखना कौन पसन्द करता। पिता का स्नेह, माता का मोह यह सभी मैं खो चुका हूँ। मेरा घर बरबाद हो चुका है, गाँव मे मेरा अपना कोई नहीं रहा। प्रभुदयाल का भी अन्त हो चुका है और दिनेश भी आज मुँह छिपाता फिरता है। होटल भी समाप्त हो चुका है। अब मेरा भावी-जीवन किस रूप मे व्यतीत होगा, यह मैं सहज ही सोच सकता हूँ। न नौकरी की आशा और न खेती का सहारा। रोजगार के लिये जिस छल-छन्द की आवश्यकता है वह भी होने की नहीं है। एक चोर, डकैत, उपद्रवी को जिसने १०।१२ साल जेल की धूल फाँकी है, कौन अपनी शरण देगा। पुलिस का भय मेरे जैसे व्यक्ति को शरण देने के लिये किसी को भी उत्साहित नहीं कर सकता। तो व ? अब तो मेरे लिये एक ही द्वार खुला हुआ है और वह विनाश का द्वार। जब तक छिपता हुआ, भागता हुआ, अपने को बचाता हुआ जी सकूँगा जी लूँगा, नहीं तो फिर यही जेल या फाँसी की चिकनी और मजबूत रस्सी!

सोचते-सोचते मेरा सिर चकराने लगा, मैंने देखा कि बाहर घना अन्धकार छाया हुआ है। बरामदे मे एक मन्द लालटेन जल रही है और पहरेदार के भारी जूतों की चरमराहट प्रत्येक

स्वर सुनाई पडती है। प्रकाश खिसकता हुआ मेरे पास आया और बोला—"भैया, गजाधर के गले मे १६ गिन्नियाँ है।"

मैं अनमना-सा होकर बोला—"तुम्हें इससे मतलब ?"

"वाह मतलब क्यों नहीं है"—प्रकाश बोला—"मैं जन्म-भर सत्य और धर्म की लीक पर चलता रहा और पर स्त्री, पर द्रव्य से सदा दूर भागता रहा, पर इसका फल क्या हुआ ? उपहास, गरीबी, अपमान, जेल—बस, यही न ? और ये चोर हमसे बहुत ही अच्छे हैं। दो-चार मास, साल-दो साल मे जेल में रहना पडता है और तीसो-दिन माल मारा करते है।

गजाधर कहता है कि उसने एक हजार रुपया लूट लिया था। परिणाम यह हुआ कि आज उसके दरवाजे पर चार-चार गऊ बँधी हैं और पचासों बीघे खेत बारहों महीने लहलहाते रहते हैं। इधर मेरी दशा देखो। माँ जलील-जीवन व्यतीत कर रही है, विधवा बहन है उसका हाल तुम जानते ही हो और मैं आज तुम्हारे साथ नरक भोग रहा हूँ। तीन मास में गजाधर अपने घर जायगा पर यहाँ तो अभी पाँच-सात की खबर है। जीवन का कोई ठिकाना है ?"

मैं चुपचाप प्रकाश की बाते ध्यान से सुनता रहा। इस अपरिपक्व बुद्धि के नवयुवक के मानसिक झुकाव को देखते हुए मैं अकचका गया। क्या प्रकाश भी चोरी डकैती करना पसन्द करेगा ? क्या यह भी किसी दिन कालेपानी या फाँसी के पथ पर नजर आयेगा। क्या यह बात सच है कि गरीबी समस्त दोषों की जड है। आखिर ऐसे समाज की स्थिति कब तक रहेगी जब प्रत्येक दिन उसे छोड-छोड कर सत्यानीत होनहार प्रतिभावान व्यक्ति भाग रहे हैं। मैं सारी रात इसी उधेडबुन में पडा रहा। मैंने देखा—धीरे-धीरे छत से लटकने वाली लालटेन का मन्द प्रकाश फीका पडने लगा। बाहर का मैदान

ज़रा जरा दिखलाई पड़ने लगा। हवा के शीतल झोंके आने लगे। मच्छरों की भनभनाहट मिटने लगी और भोर होने की सूचना दूसरे कैदियों की अँगड़ाइयो और जँभाइयों से मिलने लगी।

जेल का प्रभात कोयल की कूक या मन्द-मलयानिल से नहीं शुरू होता। गाली-गलौज, शोर-गुल से यहाँ प्रभात का स्वागत किया जाता है। घंटे पर घंटे घनघनाने लगते हैं और कैदियों में भी झुँझलाहट मिश्रित चेतना की लहर फैलने लगती है। कोई कैदी मच्छरों को गालियाँ देता उठता है तो कोई ठण्डी हवा या कम्बलों मे रेंगने वाली जूँ को गालियाँ देता हुआ करवटें बदलता है। जिस बैरेक में मैं था उसमे ४० कैदियो के लिये स्थान था—चौतरे बने थे।

मैं सारी रात जागता रहा था, इसीलिये शरीर मे काफी आलस्य था, काफी थकान थी, काफी सुस्ती थी। लाचार उठ बैठा और नित्य के कर्म में जुट पडा।

---

(३१)

दिन जाते देर नहीं लगती। उँगलियों पर गिनते-गिनते एक मास समाप्त हो गया और मुझे एक दिन यह पता चला कि आज मैं दूसरी जेल मे बदल दिया जाऊँगा—मेरी आत्मा फड़क उठी। तीन साल से न तो मैंने सडक देखी थी और न मोटर, गाड़ी, ताँगा, ट्रेन या दूसरी ऐसी चीजे जो जेल के बाहर होती हैं। मैंने इतने दिनो मे एक बार भी बच्चे का रोना नहीं सुना था और न किसी स्त्री को ही देखा था। मैं रह-रहकर पुलकित हो उठता था। सोचता था, कब वह समय आयेगा, जब

मैं इस फाटक से निकल कर खुली सडक पर आऊँगा और एक बार स्वच्छ हवा में जी भर कर साँस लूँगा। देखते देखते दिन समाप्त हो गया और सध्या समय मुझे तैयार हो जाने की आज्ञा दी गयी। प्रकाश की ओर जब मैंने देखा तो उसे बच्चों की तरह रोते पाया—वह मानो बलपूर्वक मेरे साथ ही जाना चाहता था। गम्भीर प्रकाश आज चुपचाप अपनी आँखों से असफल आँसू के मोती पिरो रहा है। मेरा हृदय भी भर गया। हर्ष और शोक का यह मेल मेरे लिये एक विचित्र अनुभव था। मैंने उसे धीरज बँधाने की गरज से हृदय से लगा लेना चाहा, पर मेरे हाथों में हथकड़ियाँ डाल दी गयी थीं हृदय लगाता तो कैसे! खैर, किसी-किसी तरह उसे समझा कर शान्त किया—और पहरेदारों के साथ जेलर साहब के आफिस को ओर चल पडा। कभी-कभी तो यह जी चाहता था कि मैं जाने से साफ इकार कर दूँ, पर मेरी स्वीकृति या अस्वीकृति का वहाँ क्या मूल्य आँका जाता। आवश्यक कर्म पूरे किये जाने के बाद तीन और दूसरे अपरिचित कैदियों के साथ मैं जेल के फाटक से निकला। तीन साल के बाद मैंने अपने आपको खुली सडक पर खड़ा पाया। मैं इधर-उधर अकचका कर देख रहा था—मानो किसी नयी जगह को देख रहा हूँ—तो मेरी नजर एक ऐसे फकीर पर पड़ी जो एक वृक्ष के नीचे बैठा कुछ खा रहा था। मैं तत्काल उस फकीर को पहचान गया—न जाने क्यों मेरा हृदय धड़क उठा। वह दिनेश का प्रधान सहचर गणेश था, जो एम० ए० का और बी० एस० का किसी समय विद्यार्थी था। अपने कालेज में यह सदा सर्व प्रथम रहा और स्वर्णपदक प्राप्त किया, पर हाय, उस स्वर्णपदक से इसकी रोटी का सवाल हल नहीं हो सका। पिता की मृत्यु के बाद इसने अपनी स्त्री और बच्चों के भार से विकल हो कर

आवारागर्दी का रास्ता पकड़ा। आज उसकी खोज में पुलिस खाक छानती फिरती है और वह आये दिन मोटी-मोटी रकमों पर हाथ साफ किया करता है। मैं यह सोचकर दहल गया कि कहीं इसी समय गणेश पकड़ा जाय तो—? कालेपानी में भी इतनी ताकत नहीं है जो इस नरक की आग को पचा सके। बस, सीधे फाँसी—! उफ् कितना सरल और सच्चा व्यक्ति है, यह ! मैंने देखा है, इसका बडा लडका स्कूल मे पढ रहा है और एक नौकर दोपहर का नाश्ता लेकर जाता है। कई मकान हैं—काफी किराया आता है। देहात मे जमीन है। इतना होने पर भी गणेश अब दीन-दुनिया से बाहर तो है ही, पर कानून की रक्षा से भी बाहर है। इसके सिर पर तलावार लटक रही है, पर बहादुर मस्त घूमता रहता है। कभी जैन्टिलमैन, कभी फकीर, कभी फेरीवाला। यह भी कोई जीवन है, यह भी कोई जीना है, पर उपाय !

मैं चाहता था कि कुछ देर ठहरूँ, पर चलने की आज्ञा हुई। मैं डर रहा था कि कहीं गाड़ी पर न जाना पड़े, पर ३ कैदी और ४ पुलिस के लिये गाड़ी की व्यवस्था व्यर्थ समझी गई। हम अपने-अपने कम्बल-तसली वगैरह लिये हथकड़ियाँ पहने चल पड़े। शहर के बीच से होकर स्टेशन जाने का रास्ता था। मैं अपनी परिचित सडकों से होता हुआ वहाँ पर पहुँचा, जहाँ मैंने होटल खोला था—देखा होटल के दरवाजे पर बड़ा-सा ताला लटक रहा है और एक पुलिस पहरा दे रही है। दूर से प्रभुदयाल का फाटक भी नजर आया जो देखने में उदास और मनहूस-सा नजर आता था। राहगीर और परिचित दुकानदार आँखे फाड-फाड कर मेरी ओर देख रहे थे। शर्म से कभी-कभी मेरी आँखे झुक पडती थीं, पर फिर बेहयाई

को शर्म पर विजय प्राप्त करने के लिये उत्साहित करता हुआ मुस्करा देता था।

प्रभुदयाल के खिदमतगार को मैंने देखा। वह उदास और अनमना-सा खडा था। उसकी मुखाकृति यह साफ-साफ बतला रही थी कि—कुशल खतरे मे है। उसने मुझे देखा और पुराने अभ्यासानुसार सिर झुकाकर नमस्कार भी किया, पर उसे यह मालूम हो गया कि वह अनुचित काम कर रहा है क्योंकि कैदी से वार्तालाप करना जुर्म है। हम आगे बढ़े। मैं इधर-उधर ऐसी उत्सुकता से देखता जाता मानो जीवन मे पहिली बार मैंने सडकों और बाजारों की झाँकी की है—और शायद अन्तिम। बार भी एक स्थान पर कुछ मैले चीथडे लटकाये भिखमगे मिले। कोलाहल करते हुए ये भिखारी एक सुन्दर और ऊँचे से फाटक की ओर दौड रहे थे और फिर पीछे की ओर हटते थे—बडा कोलाहल था। भिखमगिने भी थीं और उनकी गोद मे रोगी और निरन्तर रोते रहनेवाले बच्चे भी थे, जिनका बडा-सा सिर कमजोरी के कारण एक ओर लटकता-सा दिखलाई पडता था। किसी सेठ जी के यहाँ सदाव्रत मिलता था—यह उसी की भीड थी। मनुष्य एक दूसरे मनुष्य को किसी रूप मे पहुँचा देता है—यह आश्चर्य की बात है। मैंने देखा दरवाजे पर कुछ व्यक्ति मुट्ठी मुट्ठी अन्न बाँट रहे हैं और दो-चार दरवान छडी से पीट पीट कर भिखमगो को हटा रहे हैं। मैंने देखा कि छडी से अपनी गोद के बच्चे की रक्षा करने मे एक गरीबनी के हाथ मे चोट आ गयी—खून छलछला आया। वह हाथ झाडती हुई दूसरी ओर भाग रही है।

कुछ देर के बाद हवा मे मिले हुए—पत्थर कोयले के—धुएँ की गन्ध ने हमे यह बतला दिया कि स्टेशन के निकट हम

पहुँच गये। सामने विशाल मैदान, दुकानों की जगमग कतारें, कुलियों की भीड़, आनेवाले मुसाफिरों की दौड़-धूप—रह-रह कर सीटी की आवाज शंटिङ्ग मे इधर उधर दौड़ने वाली इञ्जनों का भक-भक साफ दिखलाई पडने लगा। मैं इसलिये मन ही मन झल्ला उठा कि इतनी जल्दी रास्ता कैसे समाप्त हो गया। यदि सप्ताह दो सप्ताह मास दो मास चलना पडता तो सम्भवत मेरी आत्मा को अकथनीय सुख-शान्ति मिलती, बहुत ही राहत मिलती।

प्लेटफार्म पर हमे एक ओर बैठा दिया गया। इधर-उधर टहलनेवाले हमारी ओर देख देखकर मुस्करा दिया करते थे। मैंने देखा—एक अधेड़ यात्री है, कीमती कपडे पहने हुए हैं, बायीं कलाई पर सोने की घड़ी है और कीमती साल कन्धे पर—लापरवाही से पड़ा है। यह अधेड़ एक गाडी के आगे टहल रहा है। गाड़ी के एक जनाना डब्बे मे २।३ स्त्रियाँ बैठी हुई हैं। इन्हीं स्त्रियों को लक्ष्य करके अधेड महाशय टहल रहे हैं—आपका प्रत्येक काम उसी डब्बे के सामने होता है। उसी डब्बे के सामने आपने अखबार खरीदा, वह भी कोई दस मिनट मे, उसी डब्बे के सामने आपने पान खरीदा, जर्दा, सोपारी, चूना और न जाने क्या-क्या लेते देते पाँच सात मिनट ठहरे, इसके बाद फलवाले को खडा किया। मैंने यह समझ लिया कि स्त्रियों से इनका कोई परिचय नहीं है क्योंकि गाडी मे जो स्त्रियाँ बैठी थीं वे मारवाड़ या पञ्जाब प्रान्त की थीं और ये सज्जन थे मेरी ओर के—। लोकोट्रेन होने के कारण प्लेटफार्म पर ही २।३ घटे खडी रहती थी जिस पर अपनी सुविधानुसार यात्री आ आकर बैठते जाते थे।

मैंने देखा दो तीन एग्लोइडियन लड़कियों को। एक प्रोफेसर साहब भी पीछे-पीछे जा रहे थे। मैं प्रोफेसर साहब को जानता

हूँ—आप "श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री राधारानी संकीर्तन मंडली के प्रधान और सिर पर आरती रखकर जिस समय कीर्तन मे नाचने लगते हैं उस समय—लोगों का कहना है कि—इन पर राधारानी का आवेश आ जाता है। आप भावावेश मे घण्टों मूर्छित भी रहते हैं। स्थानीय कालेज मे प्रोफेसर हैं—१५०) मासिक पाते हैं। अभी क्वाँरे हैं, पेट की चिन्ता नहीं है, इसीसे राधारानी का आवेश आप पर आ जाता है। "लक्ष्मीरानी' की दया जिस पर रहती है उस पर तैंतीसकोटि देवताओं की छाया रहती है—अकेले राधारानी की क्या गणना है। मैंने देखा कि ठीक भेड़िया जिस तरह घात लगाकर झाड़ियों मे छिपता-छिपता शिकार का पीछा कर करता है, उसी तरह प्रोफेसर साहब उन मिसों की ओर लपके चले जा रहे हैं जो यौवन मदोन्मत्ता बनीं प्लेटफार्म पर घूम रही हैं, आपस मे ठठोलियाँ कर रही हैं। मैंने पहचाना कि उनमे से एक स्थानीय अस्पताल मे नर्स का काम करती है।

एक दूसरे सज्जन 'ह्वीलर" के "बुकस्टाल' पर खड़े-खड़े कुछ किताबों से खेल रहे हैं, पर कनखियों से ताक रहे हैं तितलियों के झुंड की ओर—मैं सच कहता हूँ—यदि आँखों मे, जिसे देखें उस पर दो छोटे-छोटे काले दाग लगा देने की क्षमता होती तो इन तीनों मिसों का सारा शरीर काले दागों से भर जाता। जिस समय मिसों ने प्लेटफार्म पर प्रवेश किया उस समय मुझे तो ऐसा जान पड़ा कि रौनक की रोशनी फैल गयी, एक जीवन सा फैल गया, कुछ सनसनी सी फैल गयी।

(३२)

आखिर वह समय भी आ गया जब हम ट्रेन के डब्बे के भीतर पहुँचाये गये। मैंने प्लेटफार्म पर देखा था कि दिनेश के दल के कोई २५।३० आदमी नाना रूप में इसी ट्रेन से जा रहे हैं। प्रत्येक डब्बे में २।३ व्यक्ति चढ़े। कोई हींग बेचने वाला खान के रूप में, तो कोई, देहाती, महाजन, वकील और साधारण व्यापारी और साहबबहादुर की सूरत में। मेरा दिल आनन्द और परिणाम सोचकर शंका से रह रहकर धड़क उठता था—ऐसा जान पड़ता था कि मानो कलेजा उछलता हुआ मुँह को आने वाला है। मैं चुपचाप बैठा बैठा देख रहा था कि लोग २।३ घण्टे बाद ही क्या करने वाले हैं। इस ट्रेन का कोई भी व्यक्ति जिसका सम्बन्ध हमारे दल से नहीं है, यह सोच भी नहीं रहा होगा कि २।३ घण्टों के बाद क्या होने वाला है—एक अभूतपूर्व घटना घटित होने वाली है, यह सम्भवत किसी ने सोचा भी नहीं होगा। जिस डब्बे में मैं बिठलाया गया उसमें दिनेश के दल के १०।१२ आदमी थे। उनका बहुरूपियापन देख कर मैं चकित था—हँसी से पेट फटा जाता था। गणेश, जो जेल के पास मिला था, इस डब्बे में भी मौजूद है और गाँजे की दम लगाने के लिये दिया सलाई खोज रहा है। गणेश एम० ए०, बी० एल० की यह दशा—आश्चर्य। एक देहाती के बच्चे को जिसे ज्वर लगा हुआ है गणेश ने "जन्तर" दिया और)॥ प्राप्त कर लिये। मेरी ओर उसने एक बार भी नहीं देखा, पर मैं टकटकी बाँधे देख रहा हूँ। अपने साथियों को मैंने धीरे धीरे पहचान लिया। पैरों में चीथड़े लपेटे एक साथी कोढ़ी बना आया। यह भी एम० एस-सी० का विद्यार्थी था। पानी में घर द्वार नष्ट

गया। नौकरी नहीं मिली। शहर में जिसके यहाँ डेरा था और जो इसके रक्षक थे उन्होंने ही कर्ज दे देकर इसकी बची-खुची जायदाद को भी उदरस्थ कर लिया—लाचार बेचारा चोरी करके पेट पालता है। हाँ, यह बात है कि साधारण चोरों से इन एम०ए० बी० ए० चोरों की चोरियाँ कुछ विशेषतापूर्ण होती हैं। ये चोरी के लिये जिन तरीकों को काम में लाते हैं, वे भयंकर और आतंक फैलाने वाले होते हैं। जंगल के शेर को पकड़ कर यदि आप अपने बागीचे में छुट्टा घूमने के लिये छोड़ देंगे तो आप अपनी खैर कभी भी मत समझिये। समाज ने यही खतरा अपने सिर पर लिया है। शिक्षितों की बेकारी ने ही आज हमें इस स्थिति पर पहुँचा दिया है कि जलील से जलील कर्म करते हुये भी हम पीछे पैर नहीं देना चाहते बशर्ते कि उस काम को पूरा करने से कुछ लाभ हो। मानवता के स्थान पर हम पैसे की पूजा करते हैं। देवी के स्थान पर चुड़ैल की पूजा करने का जो फल होना चाहिये, वही हो रहा है।

मैंने प्रसन्न होकर देखा कि जिस डब्बे में मैं बैठा था उसमें आवश्यकता से अधिक बदमाशों का दल भर गया। नाना रूप और नाना भेष में ये थे, पर दिनेश की सूरत नहीं दिखी और न पलटू या बदलू को कहीं पाया। हम एक बेंच पर बैठे हुए थे। हमारे दोनों साथी जो आजन्म कैद की सजा भुगत रहे थे, एक प्रकार से मृतप्राय से थे। पुलिसवाले भी कुछ कम परेशान न थे। ४१९ जवान आपस में बातें करते और टाप्सरेट की पाकेट से सुरती-चूना निकाल-निकाल कर एक दूसरे का सत्कार करते जाते थे। मैंने प्लेटफार्म पर देखा कि मुसाफिर के झुण्ड लोग दौड़ रहे हैं। कोई गोद में बच्चा लिये था कोई सिर पर पोटली रक्खे। हमारा डब्बा गार्ड के डब्बे से सटा हुआ था इसीलिये इधर भीड़ नहीं आती थी।

दो-चार सुन्दर-सुन्दर अंग्रेज-बच्चे भी प्लेटफार्म पर घूमते नजर आये। नीली आँखें और भूरे बाल बड़े ही भले मालूम पड़ते थे। एक दाई पीछे-पीछे चल रही थी और बच्चे बड़ी ही स्वच्छन्दतापूर्वक इधर उधर उछल रहे थे—मानों तितली!

मैंने जमादार से कहा—"हुजुर! कृपा करके अब तो हथकड़ी खोल दीजिये।"

उसने कहा—"चुपचाप बैठो।"

मैं—"तकलीफ होती है जनाब! भाग कर कहाँ जायँगे।"

जमादार—"साला, तेरे लिये फाँसी पड़ें। तेरा क्या ठौर ठेकाना है। गाड़ी से कूद पड़ा तो।"

मैंने कहा—"सरकार, चिड़िया तो नहीं हूं जो उड़ जाऊँगा। इतने आदमियों के रहते कैसे भाग सकता हूं।"

एक सिपाही ने कहा—"एक हाथ को खोल कर दूसरे कैदी के साथ जोड़ दीजिये। कहाँ भागेगा ससुरा! जान का डर नहीं है।"

जमादार ने कहा—"तुम नहीं जानते। फत्तन खाँ सब-इन्सपेक्टर मेरे अपने मौसे के ससुर के चचेरे बहनोई थे। एक डकैत के साथ लाहौर से चले। पेशाब घर में उसे जाने दिया गया। साला वहाँ की खिड़की तोड़ कर पंजाब मेल में कूद पड़ा। गार्डों की घबड़ाहट में पता ही नहीं चला कि क्या मामला है। वह एक मशहूर डकैत था। पकड़ने पर २०००) इनाम मिलता। इनाम-इकराम तो गया जहन्नुम में, मुश्किल-मुश्किल करके उनकी नौकरी बची, पर तीन कान्स्टबलों के नाम कट गये और एक जमादार छः महीने के लिये मोअत्तिल कर दिया गया। ये साले पहले सिरे के शरारती होते हैं। पलक मारते ही साले सिर पर पहाड़ धकेल देंगे।"

गाड़ी धीरे-धीरे प्लेटफार्म छोड़ कर आगे बढ़ी और मैंने

देखा कि उधर सूर्यदेव पहाड़ियों के पीछे छिपने लगे। खट्-खट् लाइन बदली और साँप की तरह टेढ़ी हो कर गाड़ी शहर के किनारे किनारे आगे बढ़ी। लाइन के आस-पास के घरों के दरवाजों पर बच्चे उछलते नजर आये—कहीं ताँगा खड़ा नजर आया तो चरागाह से लौटने वाली अल्हड़ गउओं को कान-पूँछ खड़ी करके ट्रेन की ओर चौंक-चौंक कर देखते देखा। गाड़ी की चाल तेज हुई। खुले मैदान का दृश्य सामने आया। लाइन के किनारे किनारे जो टेलीग्राफ के तार लगे होते हैं, उन पर बैठी हुई चिड़ियों को झूला-सा झूलते देख कर मेरे मन का अवसाद कुछ-कुछ मिट गया। गाँव, खेत, मैदान को पीछे छोड़ती हुई ट्रेन शेर की तरह दौड़ने लगी। सामने का भू भाग घूमता हुआ-सा जान पड़ता था और ऐसा जान पड़ता था कि मानो गाड़ी दूरी को निगलती हुई आगे दौड़ती जा रही है। धीरे-धीरे मैदानों पर गोधूलि की धूमिल छाया पड़ी। हवा ठंडी थी इसीलिये खिड़कियों के शीशे चढ़ा दिये गये—गाड़ी के भीतर रोशनी जल गयी। सभी यात्री चुप थे। नरेश झोली में से बाँसुरी निकाल कर बजा रहा था और मन्त्र-मुग्ध की नाईं सभी यात्री सुन रहे थे। मैं भी अपने आपको निसार कर उसी की स्वर लहरी में अपने आपको बह जाने दिया।

दिखलाई पड़ने लगती है और विश्व-प्रपञ्च के प्रति मेरे हृदय मे मोह का सचार हो जाता है। मैं हूँ विनाश पथ का एक पथिक जिसके चारों ओर हाहाकार, अतृप्ति, विभीषिका क्षुधा, अपमान, दरिद्रता ताडव-नृत्य कर रहे हों। मैं कष्टों के पत्थरों से मार-मार कर चुटीला कर दिया गया हूँ। मेरी इन अभागी आँखों ने माँ की गोद से उतरने के बाद कभी भी सौन्दर्य की झाँकी नहीं की, कभी भी तृप्ति को नहीं देखा। जो मेरे इन कानों ने अम्मा के चुमकार के बाद कभी भी प्रिय बात नहीं सुनी, कभी भी शुभसम्वाद नहीं सुना, कभी भी आनन्द के तराने नहीं सुने और मेरे ये पैर—! उफ्—आज तक सदा विपथ पर ही चले हैं। पाप के ही कँटीले पथ पर चलते रहने वाले मेरे ये पैर सुमन बिछे हुए पथों का सुख नहीं जानते। मैं क्या जानूँ सङ्गीत का सुख और क्या जानूँ कला का आनन्द। मेरे लिये ससार भूतों का डेरा है, जीवन एक विभीषिका है और मृत्यु सुख की खान है।

गणेश ने वशी बजा कर मुझे विकलन्मा कर दिया—यदि मेरे हाथ खुले होते तो मैं वशी छीन कर दौडती हुई ट्रेन के बाहर फेंक देता और वशी बजाने वाले के गाल पर एक चाँटा रसीद कर देता।

स्टेशन पर स्टेशन निगलती हुई एक्सप्रेस आँधी की तरह उड़ी जा रही थी और हम कई प्राणी चुपचाप बैठे हिल-डोल रहे थे। चिंघाडती हुई इजन का गर्जन हमारे कान के परदों पर टकरा-टकरा कर अस्थिर कर रहा था।

वशी स्वर रुक गया। श्रोताओं की तन्द्रा मिटी। एक पुलिस का जवान बोला—"अरे बाबा जी, चुप क्यों हो गया? गाँजा चाहिये—ले।"

गणेश खिसक कर पुलिस के निकट आ गया। एक-दो

और गँजेड़ी यात्री सचेत हो कर बैठ गये। किसी ने सुरती दी और किसी ने झोले से निकाल कर चिलम। गणेश ने एक दूसरे यात्री के हाथ मे गाँजे की पुड़िया दे कर, बंशी बजाना आरम्भ किया। बंशी की मधुर ध्वनि गाड़ी मे मायाजाल फैलाने लगी। सभी श्रोता मस्त से झूमने लगे। मेरा मन भी व्याकुल हो गया। स्नेह और मोह की भावना जाग गयी—मधुरागिनी की कोमल स्मृति आँखो के आगे नाच उठी। एक-एक करके घर की, माँ की, बहिन और पिता की याद आयी। अपने बाधा बन्धनहीन स्वच्छन्द जीवन की तथा लड़कपन की याद ने मुझे रुला दिया। मुझे याद है कि इस जीवन मे मैंने बड़े-बड़े कष्ट झेले है, बड़ी-बड़ी आपदाओं ने आँख-मिचौनियाँ खेली हैं। कितनी बार सिर के ऊपर से सन-सन करती हुई जानेवाली गोलियो के नीचे खड़ा रहा हूँ और कितनी बार दो-चार नहीं दस-बीस हथियार बन्दो के बीच मे बिजली की तरह झपट कर निकल भागा हूँ—चोट खायी है और बहुतो को मिट्टी में मिला दिया है, पर न तो कभी दया ने मेरे हृदय को पिघलाया और न कभी करुणा ने, याद नहीं है—याद नहीं है कितनी बार बिलखती हुई औरतो की नगी पीठ पर कोड़े मारे है—गहने उतारे और माल बतलाने के लिये कितने निरपराधो को जलती मशाल से झुलस दिया है, पर रोया नही। अपने १०।१४ साल के पापमय जीवन की कितनी गाथा गाऊँ, कितनी कहानी कहूँ, पर आज गणेश की बंशी ने मेरे चट्टान जैसे दिल को पिघला कर पानी पानी कर दिया। मेरी आँखों से—मेरे पापी हृदय को धोते हुए—गरम आँसुओं की धारा बह चली। कैसा करुण स्वर था, कैसा हृदय द्रावक राग था। निर्जीव बंशी के भीतर से मानो संसार भर की करुणा बैठ कर बिलख रही थी। यदि मेरा बस चलता तो मै उस कलाकार को जिसने ऐसे मर्मभेदी

नाग की सृष्टि की थी, इस वंशी का निर्माण किया था, गोली मार देता—हाँ गोली मार देता। मैं अपना धर्म खो चुका—यदि मेरा उद्धार न होता तो मैं जेल में पहुँचते न पहुँचते आत्म-हत्या कर लेता। मेरा यह दिल पिघल कर पानी बन चुका था, जिसने जेल की कठिनाइयों को फूल समझ कर चूम लिया था, प्यार किया था, बर्दाश्त किया था।

---

(३३)

रात आधी व्यतीत हो चुकी थी। गाड़ी पूरी तेजी से दौड़ रही थी—मेरा हृदय पीपल के पत्ते की तरह काँप रहा था। एक सिपाही जाग कर पहरा दे रहा था और बाकी अपने कम्बल से लिपटे कभी सो जाते थे और कभी अचानक चौंककर हमारी ओर देख लेते थे। जमादार भी एक कोने में सिकुड़ा हुआ सो रहा था। कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था। गाड़ी के भीतर मानो पाला बरस रहा हो।

अचानक गाड़ी की रफ्तार कम हो गयी। एक जोरदार झटका लगा और धमधम धम धम आवाज के साथ ट्रेन ठहर गयी। मैंने समझा वह समय हो गया—अब इस पार या उस पार। जमादार और दूसरे मुसाफिर चौंक उठे। तत्काल मैंने देखा कि गणेश और दूसरे करीब १२। १३ आदमी हाथों में तमचा लिये अपने अपने कम्बल फेंक कर उठ खड़े हुए यह एक अजीब नजारा था। गणेश ने कड़कती हुई आवाज में कहा—"हैंड्स अप—हाथ ऊपर उठाओ।"

बाकी मुसाफिरों ने घबराकर आज्ञापालन किया। मैं एक झटके के साथ उठ खड़ा हुआ। गणेश ने फिर फौजी तरीके

से आज्ञा दी—"हथकड़ी की चाभी कहाँ है।" घबराया हुआ सिपाही-दल शून्य दृष्टि से इधर उधर देखने लगा। एक साथ १०।१२ बार खट-खट आवाज हुई—तमचों के घोडे चढ गये। यह एक आतंकपूर्ण दृश्य था—शेष कैदी चुप थे। अब जमादार का कंठ फूटा—"मेरी·· जे···ब · मे है· · मैं मैं ·बे ·कु· ·सू·र·हूँ।'

गणेश ने जेब से चाभी निकाली और मेरी हथकडी खोल डाली गयी।

बाहर से बन्दूक चलने की आवाज आयी। मैंने देखा कि दिनेश दरवाजा खोलकर भीतर घुस रहा है। हाथ में भरी हुई रायफल और सैनिकों सी वर्दी। सूखा हुआ चेहरा आँखें सुर्ख। पलक मारते यह सब हो गया। हम खुले हुए दरवाजे से कूद पड़े—२।३ आदमी तमचा ताने पीछे हटते हुए दरवाजे तक आये और बिजली के अंटो से को गोली मार कर वे भी गाड़ी नीचे कूद पडे। गाडी मे अन्धकार छा गया—घबराहट सी थी ही।

अब हम जंगल की ओर फायर करते हुए भागे। मैंने देखा कि कोई १०।१५ आदमी हमारे साथ थे। दो आदमियों ने हमारा पीछा किया, जिन्हें दिनेश ने दो फायर करके लेटा दिया। दूर-दूर पहुँचकर हमने गाडी के पास होनेवाले शोर को सुना—दो चार फायरों की गूँजती हुई आवाजें भी आयीं पर हम लगातार भागते ही जा रहे थे। कभी-कभी मैं ठोकर खाकर गिर सा पड़ता था और झाड़ियों से उलझ जाता था। फिर गाड़ी को जाते हुए देखा———।

गणेश ने कहा— दिनेश जरा कपडे तो बदल डालो। अब यहाँ कौन आवेगा। अगला जंक्शन ४० मील पर है। बीच के छोटे-छोटे जंगली स्टेशनों पर गाड़ी रुकेगी भी नहीं रुकी भी तो

फोन करेंगे—पुलिस आवेगी तब तक तो अपने राम सैंकडों मील की लम्बी उड़ान मारेंगे। चलो जान बची दादा—।"

सामने चार मोटरें खड़ी थीं—सभी ने कपड़े बदले। गणेश खासा साहब बन गया और मैं बन गया चपरासी। बाकी भिन्न-भिन्न रूपों में परिवर्तित हो गये। खुली हवा में आकर साँस लेने से मेरी आत्मा को जो शान्ति मिली, उसका वर्णन अकथ-नीय है। चारों ओर घना वन। शेरों की दहाड़ की आवाजें आ रही हैं। सामने विशाल पहाड़ अन्धकार में दैत्य की तरह खड़ा है। झाड़ियाँ रह रहकर खड़खड़ा उठती हैं। अब यह सोचा जाने लगा कि यहाँ से किधर चलना अच्छा होगा। दिनेश ने कहा कि—"एक मोटर तो शहर की ओर जाय और बाकी इधर उधर—जिधर चाहे पर ··· स्थान पर हम अगले रविवार को एकत्रित हो जायँ।"

बात तै हो गयी। दिनेश ने शहर की ओर मोटर दौडायी-६० मील पर शहर था और घड़ी से पता लगा कि दो बज चुका है। कड़ाके की सर्दी। हवा में मानो बर्फ के फवे उड रहे हों—निर्जन स्थान और जंगली रास्ता। कहीं चट्टान और कहीं गहरी खाई। दिनेश स्वयम मोटर चला रहा था। एक कुशल ड्राइवर की तरह ऊँचे खाले से बचती हुई मोटर दौड़ने लगी। मैं चुपचाप बैठा था। आज सवेरे मैं कहाँ था और इस समय कहा हूँ—और प्रकाश! वह अपनी कोठरी में पडा होगा। मैंने उसे बतलाया ही नहीं था कि आज क्या होने जा रहा है। कितना सीधा लडका है वह। नाना तरह की भावनायें जुगनू की तरह मेरे दिमाग में चक्कर काट रही थीं और मोटर सीधे शहर की ओर दौडती जा रही थी। पक्की सड़क पर पहुँच कर दिनेश ने कहा—"भाई, भाग्य को सराहो कि हम फिर

मिल सके। मैं आनन्द-विभोर हो कर बोला—"सचमुच! तुमने कमाल कर दिखलाया।"

"तुम्हें मालूम है बच्चू"—दिनेश ने कहा—"पार्टी के चार हजार रुपये खर्च हुए हैं, इस काम में। कलकत्ते से मोटरें मँगवाई गई हैं। रंग बदलवाया गया। यह मोटर भी रंग बदल कर काम में लायी गयी है। कल फिर इसका रंग बदलवाया जायगा। बाकी ३ मोटरें सीधी कलकत्ते गयीं और हम दूसरी ओर चले। ३ मास के अथक प्रयत्न से इतना कर सका हूँ। अब मैं सुखी हुआ।'

मैंने कहा—"भला तुमने मेरे लिये इतना सिरदर्द क्यों मोल लिया—मुझे जेल में ही गलने देते।'

दिनेश धीरे से बोला—'मैंने ऐसा क्या किया यह तुम्हारे समझने की बात नहीं है। मेरा हृदय यदि बोलता और तुम्हारा हृदय यदि सुनता तो सब बातें तुम्हें मालूम हो जातीं।

मेरी आँखें फिर छलछला गयीं—कितना महान है यह—उफ्। मैं कुछ बोल न सका।

पूर्व की ओर लाली छा गयी। भोर की तरह—धूलि उड़ाती हुई—मोटर सड़क पर दौड़ने लगी। बीच में एक स्थान पर रोक कर तेल डाला गया—बस। दूर-दूर के गाँव झुरमुटों के भीतर से सुन्दर चित्र की तरह दिखलाई पड़ते थे—जाड़े का प्रभात कुछ अजीब उदास-सा हो रहा है। ठंडी हवा से कांपते हुए गलों से दो चार मोरे नाच-गोद करते इधर-उधर नजर आये।

दूर पर हमें शहर की ऊँची-ऊँची इमारतें दिखलाई पड़ने लगीं। दिन चढ़ गया। हमारी मोटर शहर के भीतर घुसी। चहल-पहल वाली सी सड़क ने हमारा स्वागत किया। सड़कें खाली-सी-मिलीं। एकाद मोटर ऐसी भी मिली जिस पर मोटा कोट

पहने एक दो सज्जन वायु सेवन के निमित्त जाते हुए नजर आते थे। शहर की सड़को पर चक्कर काटते हुए हमारी गाडी एक बडी विशाल इमारत के भीतर घुसी। दिनेश ने मुझे समझा दिया कि मै उसे मि० टण्डन कहूँ और चपरासी के ढङ्ग से सलाम भी किया करूँ। मोटर छोड कर हम भीतर घुसे। कई कमरो के बाद हम ऐसी जगह पहुँचे जहाँ एक मोटे से सज्जन बैठे चाय पी रहे थे। दिनेश हैट फेंक कर मोटे सज्जन से लिपट गया। बोला—"भैया, यह सुरेश हाजिर है।"

× × ×

जिस इमारत मे हम ठहरे वह एक व्यापारी की कोठी थी। व्यापारी पजाबी था और डकैतों का सरदार। लाखो का कार-बार करता था और स्थानीय म्युनिसिपलेटी का चेयर-मैन भी था। चोरो की रक्षा करना और चोरी का माल पचाना इसका प्रधान पेशा था। औरतो और बच्चियो का व्यापार कर के इसने लाखो की पूँजी बढाई—खूब माल मारा ५, ५, सौ कोस पर होने वाली डकैतियो का माल इसके पास सीधे पहुँच जाता था। इसका नाम था जयरामसिंह और रहने वाला था पजाब का। जयरामसिंह की धाक सभी धनी-मानी सज्जनो पर है। कई मोटरें कलकत्ते मे चलती है—सडको का ठेका है—सब [illegible]जने मे बसे दौडती है। जयरामसिंह एक रूखा-सूखा [illegible]भीर प्रकृति का आदमी है, पर है सच्चा और बहादुर। [illegible] जीवन काफी मात्रा मे है जिससे वह सदा अक्खडपन को पसन्द करता है। मेरी सूरत देखते ही बोला—"ओहो यही है सुरेश—अच्छा, आराम करो।"

कोठी के पिछले हिस्से मे हमने डेरा डाला और जी भर कर निद्रा-देवी की दया का सुख लूटा। कोई दो सप्ताह तक इसी कोठी मे आराम किया और चित्त का अवसाद मिटाया

अब एक दिन जयरामसिंह ने कहा—"तुम्हें एक स्थान पर रहना ठीक नहीं है। यह अच्छा हो कि मेरे इलाके पर चले जाओ। मोटर तैयार है—वहाँ और भी दो-चार व्यक्ति हैं। फिर जब अवसर देखना लौट कर आ जाना और अपना काम चालू रखना—पलटू पकड़ा गया। कल खबर आयी तो मैं इस चिन्ता में पड़ गया कि कहीं साला, तुम्हें भी न ले बीते। अब उसका उद्धार कठिन है। कई जुर्मों में पकड़ा गया है। उसके साथ—१२ व्यक्ति और पकड़े गये पर चिन्ता नहीं। पलटू अच्छा आदमी था—खैर!"

---

(३४)

देहात में पहुँच कर मन को बड़ी शान्ति मिली। यह गाँव पहाड़ की दुर्गम-घाटियों के भीतर बसा हुआ था—जयरामसिंह ने इलाका लिया था तो सोच समझ कर। पहाड़ और जङ्गलों का ऐसा सिलसिला था कि दिन को भी भूल जाने का भय बना रहता था। सब से निकट जो स्टेशन था वह था १६ मील पर और पक्की सड़क थी १६ मील की दूरी पर—इसी से आप अनुमान लगाइये कि कैसी जगह थी—कैसा विचित्र स्थान था। १६।१७ घर की बस्ती थी। जङ्गली जातियों का गाँव था—छोटे छोटे मिट्टी के घर इधर-उधर बसे हुए थे—भयङ्कर पहाड़ों की कतारें मीलों चली गयी थीं और जङ्गल तो ऐसा घना था कि एक बार भीतर पहुँच जाने पर दिग्भ्रम हो जाता था—झरने और जङ्गली फल बहुतायत से मिलते थे। पहाड़ झाड़ियों से भरा हुआ था और बड़ा ही दुर्गम था—दिन को भी पहाड़ पर दौड़ते हुए विशाल-काय शेर नजर आते थे। और रात की बात तो अलग ही रही।

हमने यहाँ पहुँच कर अपना रूप बदल कर देहातियों का सा रूप बनाया और एक झोंपड़े में रह गया—कभी-कभी जी में तो यही आता था कि पाप-पथ से हट कर अब आराम की जिन्दगी यहीं बिताई जाय, पर हमारा सम्बन्ध ऐसे सुगठित-दल से हो गया था जिसका काम ही पापाचार को प्रश्रय देना था। बड़े-बड़े विद्वान् पर भुक्ख-मरे हमारे दल में थे—दल के साथ बँध जाने पर आवश्यकता न रहने पर भी हाथ को खून से रँगना ही पडता था। दिनेश अकेला था और मेरा भी अपना कौन है—फिर चोरी डकैती करना व्यर्थ ही था, पर क्या करता। लाचार साथियों का साथ देना पड़ता था। कोई एक सप्ताह यहाँ पडा रहा। इसी बीच मे शहर से दो चार भगोड़े आये और फिर भाग गये, पर हमने अपना स्थान नहीं छोड़ा। चिड़ियों की चहचहाहट से सुबह आँखे खुलती थीं और शेरो की डकार सुनता-सुनता सो जाता था। दिनेश पुस्तकों के लिये व्याकुल रहता था—वह कभी-कभी पहाड़ पर चला जाता था और घण्टों इधर-उधर घूम कर न जाने क्या देखता था। पूछने पर उसने मुझे बतलाया कि इस गाँव से सुन्दर स्थान है पहाड़ के पिछले हिस्से मे। मैं समझता हूँ कि आज तक मनुष्य [illegible]म-धारी जीव कभी भी उस ओर नहीं गया है। एक पगडडी [illegible]क नहीं है।

मैंने भी देखा—वृक्षों की लटकती हुई डालों में लटक कर जाना पडा। अगर डाल टूट जाती या हाथ छूट जाता तो पाँच सौ या हजार फीट नीचे। सुन्दर स्थान था। एक गुफा और उसके आगे थोडी सी जगह। वृक्षों और झाड़ियों से घिरा हुआ। पानी का झरना। पर वहाँ रह कर मैं क्या करता। साधु बन कर ईश्वर को खुश तो करना ही न था। नरक की

आग को नित्य धधकाने का जिसने निश्चय कर लिया है उसके लिये सुख कहाँ, शान्ति कहाँ, आराम कहाँ।

मैंने दिनेश से पूछा—"भाई, प्रभुदयाल का क्या हुआ?"

"ओ सुरेश"—दिनेश ने कहा—"वह मर गया। बुरी मौत मरा—बेचारा।'

मुझे यह सुन कर बड़ा दुःख हुआ कि बेचारे का अन्त भरी जवानी में हो गया और वह भी एक मामूली कारण के चलते। मेरे मन में यह उत्सुकता रह-रह कर पैदा हो जाती थी कि वह लड़की कौन थी। दिनेश कहता था कि—मैंने उसे नहीं देखा था। वह अच्छी थी या बुरी, यह मैं नहीं जानता। केवल सुना कि वह सुन्दरी थी. नौजवान थी, सम्भवत भले घर की ही रही हो। मरते समय उसने जो बयान दिया था उससे कुछ भी स्पष्ट नहीं होता। प्रभुदयाल की खास हिदायत पर वह लायी गयी थी। यों तो कई नौ-जवान लड़कियों का अपहरण प्रभुदयाल ने कराया पर यह उसके यहाँ महा-मृत्यु बन कर गयी। महा-नाश की दूती बन कर गयी। प्रभुदयाल का अन्त हुआ और उसके परिवार में भी भयानक उपद्रव पैदा हो गया है। रामप्रसाद और बड़े लड़के में मुकदमे-बाजी चल रही है। रायसाहब कहते हैं कि मेरा लड़का आवारा है और लड़का कहता है कि मेरा बूढ़ा बाप आवारा है। मैं कहता हूँ कि दोनों आवारे हैं, दोनों पतित हैं, दोनों कमीने हैं। इस्टेट का बँटवारा होने वाला है।

इसके बाद मैं अपने घर की बात जानने को उत्सुक हुआ। दिनेश ने कहा— खत में जो कुछ लिख दिया था उससे अधिक कोई बात मुझे मालूम नहीं है। मेरे घर का हाल भी दयनीय है। पिता जी कब्र में पैर लटकाये बैठे हैं और मामा का राज्य है। नन्नू बाबा के यहाँ एक बार गया था तो दूर से आ

घर देखा था। तुम्हारे पिता भी मिले थे—तुम जेल मे ही थे। उन्हीं दिनों सोबरन का मामला चल रहा था। तुम्हारे पिता जी को मैंने अत्यन्त मर्माहत देखा। पीला चेहरा और तेजहीन आँखें—मैंने तो उसी समय सोच लिया था कि अब ये चन्द दिनों के मेहमान हैं। तुम्हारे वियोग और सोबरन के मुकदमे ने उन्हें अधमरा बना दिया। तुम्हारे चाचा तो उनके हृदय को और भी छलनी बनाने का कारण रूप बन बैठे। चारों ओर से आघात-प्रत्याघात सहते-सहते उनका वृद्ध शरीर एक बार जो खाट पर गिरा सो फिर सदा के लिये ज्यों का त्यों रह गया। जमींदार ने तो ऐसा उत्पात शुरू किया कि बहुत से किसान गाँव छोड़-छोड कर दूसरे के हलके मे चले गये—आधा गाँव उजाड हो गया है। जितने नौजवान थे, वे या तो झरिया की खानों मे काम करने चले गये या कलकत्ते मे मोट-ढोने भाग गये। पिछले साल गाँव मे अचानक आग लग गयी। खलियान की हालत क्या कहूँ दिनेश—लका की तरह गल्ले का ढेर जलता था। विपत्ति पर विपत्ति आती गयी और जमींदार ने मानों उस गाँव को मिट्टी मे मिलाने की कसम ही खा ली है। यह तो समाचार है जिसे सुनकर तुम कभी भी प्रसन्न नहीं हो सकते।'

× × ×

दोपहर को २।३ साइकिल सवार आये। ये भी हमारी ही तरह भगोडे थे—इनसे पुराना परिचय भी था। इनके पास समाचार-पत्र देखा। मैंने कोई ३, ३॥ साल पर समाचार-पत्र को स्पर्श किया था। नवागत मित्र ने कहा—"१० वें पृष्ठ पर देखो। कैसा वर्णन है।"

मैंने पढना आरम्भ किया—

"भयंकर हत्याकांड"
दो व्यक्ति मारे गये—कई घायल
डाकू अपने साथी को चलती ट्रेन से
पुलिस के हाथों से छीन कर ले गये"

समाचार से ऐसा जान पड़ता था कि इस दुर्घटना को सन-सनीदार बनाने के लिये राज-नैतिक रूप दिया जा रहा है। समाचार-पत्र वालों को सत्य-मिथ्या से उतना सम्बन्ध नहीं है जितना समाचार की भयकरता से मुहब्बत रहती है। जहाँ गाडी खडी करके और कैदियों को छुडाने का वर्णन था, वहाँ ऐसा जान पडता था कि सम्वाद-दाता गद्य-काव्य लिख रहा है। प्रत्यक्षदर्शी की तरह घटनाओं का हाल मुक्त-कठ से कहा गया था।

आने वाले मित्रों से यह पता चला कि बड़ी सर-गर्मी के साथ मामले की छान-बीन की जा रही है। आस-पास के गावों मे आतङ्क छाया हुआ है—बडी सनसनी फैली हुई है। खोज, धर-पकड बड़े पैमाने पर जारी है—पचीसों युवक पकड़ पकड़ कर जेल मे बन्द किये जा चुके हैं। कालेज और स्कूलों पर खास तौर से निगरानी रक्खी जा रही है। गरीब भोले-भाले नवयुवक केवल अपनी गठती हुई जवानी के अपराध में पकड़ कर कैद किये जा रहे हैं। सुना है कि मुखविर बनाने के लिये जो जो व्यवहार अभागे लडकों के साथ किया जा रहा है वह अकथनीय है—मैं तो इसलिये प्रसन्न हूँ कि उन पच्चीस-तीस लडकों मे से दो-चार अवश्य हमारे दल मे आ जायँगे, क्योंकि उनका हृदय बेरहमी के साथ कुचल डाला गया है।

मैं चुपचाप यह कहानी सुनता था। यों तो यहाँ का निवास इतना बुरा नहीं कहा जा सकता, पर एक स्थान पर